तुम्हारी रोशनी में

गोविन्द मिश्र

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

मछली-मछली कितना पानी

वह जा रही थी सामने, मेरे आगे-आगे, काले रंग का कोट पहने हुए। पूरा कोट··· नीचे तक उतरता हुआ। साड़ी ··कोट के भीतर, सिर्फ पैरों पर थोड़ी-सी दिखायी देती थी। चाल तेज – सामने की तरफ भरे जाते हुए बड़े-बड़े डग, जैसे कोई किश्ती गहरे-गहरे खेयी जा रही हो। तेजी से आगे-आगे जाती किश्ती, पीछे छूटते पानी के गड्ढे···भँवरों की भरोड़ों से कुलबुलाते।

गोरा रंग गर्दन पर बालों और कोट के कालेपन के बीच या फिर झूलती-चलती हथेलियों से झलक-झलक जाता था। कन्धे तक कटे बाल, दो उठी-उठी-सी चोटियों में रबरबैण्ड से बँधे थे···स्कूली लड़कियोंवाली छुटकी चोटियाँ।

इमारत की जड़ पर पहुँचकर उसने साड़ी थोड़ा ऊपर की और सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। ऊपर बायीं तरफ नारियल के लाल कार्पेट पर चर्र···मर्र···फिर कोने का एक हॉल जिसमे सरसराते तीर की तरह वह घुस गयी। पीछे-पीछे मैं, लुढ़कते हुए ···जैसे – दूर से फेंका गया एक पत्थर, अपने वेग के अन्तिम दबाव पर। मुझे भी उसी बैठक में पहुँचना था।

एक गोल-गोल वातानुकूलित हॉल। रंगीन पर्दे···रोशनी में झिलिर-मिलिर। बैठक मे शामिल होने के लिए सब तरफ से पहुँचते हुए लोग। आगे बड़ी हस्तियों के लिए कुर्सियाँ, पीछे उनके सहायको के लिए, उसके पीछे अन्यो के लिए। बैठक के अखाड़िये आते जा रहे थे। जो आ चुके थे, वे स्वयं को इधर-उधर बातचीत मे व्यस्त दिखाकर जैसे अपने और होनेवाली बैठक—दोनों की महत्ता बढ़ाने में लगे हुए थे।

बैठक के शुरू होने के पहले की अस्तव्यस्तता! इधर-उधर उछलते आदमी-औरतें···अपनी जगह पर बैठते कि एकाएक मेंढक की तरह उचाक लगाकर फिर किसी के पास पहुँचते हुए। मिला-जुला जो शोर उठ रहा था, उससे मुझे अपने कस्बे का एक तालाब याद आ गया—एक पोखरा, गर्मी में सूखा पड़ा रहता है। तह की जमीन पहले गीली कीचड़-सी, बाद मे दरारों मे चटक जाती है। उस समय एक

मामूली गड्ढे के अलावा कुछ और नहीं होता वह। यही बरसात का पानी पाकर ज्यों-ज्यों भरता है तो इस हाल की तरह सज उठता है, शोखी में इतराता दिखता है। कितने जीव-जन्तु, जाने कहाँ-कहाँ से वहाँ पहुँच जाते हैं ···पर सबसे ज्यादा मेंढक, उछल-उछलकर भद्द-भद्द गिरते हुए। तालाब एक अनवरत टर्र-टर्र से गुंजायमान···

वहाँ उसके होने की कल्पना नहीं की जा सकती थी, लेकिन वह थी···चिलकती हुई रोशनी की लहर-सी, तिरती हुई···

अपनी कुर्सी से उठकर बीच की गोलमेज पर कार्य-वृत्त की एक प्रति उठाने के लिए वह गयी तो रास्ते में कहीं मैं भी पड़ गया···जैसे रोशनी के ठीक सामने। मैं इतना सामने आ गया कि एक पल ठहरकर उसे देखना ही पड़ा। तब भी उसने शायद मुझे नहीं, सिर्फ अपने रास्ते को देखा और अगले ही क्षण बिना आँख उठाये ही जैसे किसी रोड़े से बचती हुई वह अपनी जगह पहुँच गयी।

अब हम अपने अलग-अलग कोनों में थे, मैं उससे करीब पाँच गज के फासले पर एकदम दूसरी पंक्ति में। वहाँ, उसके कोने की तरफ रोशनी हो रही थी, देखने का मन करता था···चौंध का खयाल भी आता था। रुक-रुक करके कई बार देखा, फिर भी रूप-पुंज-जैसे दृष्टि से फिसल-फिसल जाता था। गोरा रंग···लालिमा की तरह झुका हुआ, आनुपातिक नाक-नक्श···थोड़ा पैनापन लिये हुए, आँखें···चंचल और गहरी। सबके ऊपर पखा-सा झलती हुई उम्र की ताजगी। बयार···जो उससे फूटकर आर-पार जाती थी। खूबसूरती से जो-जो जोड़ा जाता है, सभी कुछ था वहाँ···और खूबसूरत होने का अहसास भी। उसके बगल में एक अधेड़ बैठा था, पान से भरे पिलपिल मुँहवाला। अधेड़ ने एक बार कुछ पूछने के लिए उसे टोका। वह कन्धे उचकाकर टाल गयी। उसकी तरफ देखा भी नहीं···कुछ-कुछ वैसा ही जैसे रास्ते में पड़ जाने पर मेरे साथ किया था।

अगली बार उधर मेरा ध्यान गया तो जैसे उसकी जगह कोई और ही थी। ऊपर उठी पलकें, नजरें इधर-से-उधर चक्कर काटती हुई···लाइट हाउस की घूमती रोशनी की तरह कहीं न ठहरती हुई, फिर भी जैसे सबको उकेरती हुई। उड़ी-उड़ी नजरों से वह सबकुछ देख रही थी। चेहरा जो अब तक खिंचा-खिंचा-सा रहा था, अब पिघल आया था···जैसे आँखों से भरती हुई कोमलता की फुहार चेहरे पर हल्के-हल्के बरस रही थी।

झूमती हुई रोशनी का एक स्पर्श मुझ तक भी आया···मुलायम-मुलायम स्पर्श. खरोंचों को चिकनाहट में बदलता हुआ। हवा के एक छोटे झोंके ने जैसे पर्दे को थोड़ा-सा खिसकाया था। स्नान के बाद शान्त मन···ठण्ड से सिकुड़ी हरी घास को सेंक देती सुबह की नरम-नरम धूप···पहाड़ी जमीन में उठता हुआ सोंधी-सोंधी गन्ध का फव्वारा···बारिश की पहली बौछार से झुलसी हुई धरती से उठती महक···मैं

कहाँ-कहाँ डूबने-उतराने लगा था, उस एक क्षण।

उसकी नजरें अब कहीं और थी, लेकिन चेहरा वैसा ही था—मुलायम-मुलायम। अब नाक-नक्श तीखे नहीं कोमल दिखते थे, एक मासूमियत में बँधे हुए···मासूमियत जो उम्र से नहीं करुणा से चेहरे पर आ बिछती है। यह वह खूबसूरती थी, जो आस-पास को धुंधलाती नहीं, बल्कि उसे एक नयी चमक में खड़ा करती है।

एक पहाड़ी नदी ··मामूली-से किसी पहाड़ की अनजान खोह से झरझराकर नीचे मैदान से उतरती है और कुछ गाँवों को बाहर-बाहर से सींचती हुई एक बड़ी नदी से जा मिलती है। छोटा-सा सफर, लेकिन कितनी मुद्राएँ! कहीं बाँध के छेद से बाहर निकलती जलधारा-सी झलल-झलल, कहीं झरने की तरह बहती हुई, कहीं सरोवर की तरह बँधी-थमी। खूब साफ और मीठा पानी। गर्मियों में पानी का रंग एकदम सफेद, वहीं जाड़े में नीला हो जाता है—गर्मियों में अपनत्व-भरा, जाड़े में थोड़ा डरावना। एक जगह हाथीडुबाऊ तो एक ऐसी भी जगह जहाँ सिर्फ घुटनों पानी···नीचे रेत के एक-एक कण दिखते हुए। कितनी भी गन्दगी मचाओ तो अगले क्षण फिर साफ···छलल-छलल बहता पानी।

जाड़े और गर्मियों में, एक पतली और बँधी हुई धारा, वही बरसात में ऐसा चढ़ती है कि बस्ती के द्वार पर आकर थपेड़े मारने लगती है। आर-पार फैला पानी—कहीं पीला, कहीं लाल, कहीं मटमैला। बहता हुआ कूड़ा-करकट, घास-फूस। सड़े-गले छप्पर-चौखट, मवेशियों के शरीर के टुकड़े और कभी-कभार हिचकोले खाती बहती कोई लाश भी···जैसे दुनिया-भर की गन्दगी को धो-धोकर बहा ले जाने पर आमादा हो। जहाँ-तहाँ घूमती हुई चक्करदार भँवरें···कहीं इकहरी तो कहीं भयंकर लपेटदार, जिसमें कोई अगर फँसा तो पता नहीं कहाँ पहुँचे···

घुटनों पानीवाली जगह कहीं खो जाती है उस लावारिस विस्तार में।

बैठक खत्म होने पर विशिष्ट हस्तियों के उठने तक तो लोगों में धीरज रहा, बाद में सबकुछ किचिर-पिचिर हो गया—आदमी, कुर्सियाँ, फाइलें! कोई कुर्सी टेढ़ी कर उठ रहा था, कोई धकियाता हुआ जा रहा था, कोई बतिया रहा था, कोई पान-सिगरेट कर रहा था, तो कोई सिर्फ बैठा था! हॉल में छोटी-मोटी भीड़ उतरा आयी थी···जैसे पोखरे के थमे हुए पानी में नीचे से उचटती मिट्टी की गन्दगी ऊपर आने लगी हो।

चलते-चलते एक बार फिर मैं उसके रास्ते आ गया—इस बार जानबूझकर, पर उसे आँख उठाने की भी जरूरत नहीं पड़ी। जैसे वह एक परिचित रास्ते पर थी, जहाँ रोड़े-पत्थर, धूल-धक्कड़, अटकाव···सब जाने-पहचाने थे। नजरें सामने किये हुए, साड़ी को हल्के-से उठा वह एक तरफ से निकल गयी।

उसे भीड़ में खो जाने देता···

एक चहरा'' दिलकश, भीड़ मे कही से प्रकट हो गया, भरे बादल की तरह, दिल-ओ-दिमाग पर छाता चला गया और अगले ही चन्द क्षणो मे हम उसे गायब होते हुए भी देखते रहे। वह जब्ब हो गया, आँखों के सामने ही···भीड का कोई टुकड़ा, सड़क का कोई मोड़, कोई सवारी···या कोई गली। शायद अब दोबारा कभी देखने को ही न मिले···

उसे इस तरह नही जाने दिया जा सकता था।

कोई मुझे ढकेलता रहा···आगे की तरफ, उसकी तरफ···वह जहाँ भी थी। तहकीकात, पूछताछ, खोजबीन ··सुराग पर सुराग बैठाता हुआ मैं आखिर पहुँच गया। एक दफ्तर को छ:मंजिला इमारत में, दर्वों से चिपके हुए कमरे जिनमे एक उसके लिए। कमरे में मेज के पार वह।

हल्के हरे रग की शाल ओढ़ रखी थी उसने। उजला-उजला चेहरा, पीछे जलते हुए हीटर की आँच से सुर्ख। चारो तरफ ठण्ड की सिकुड़न ··बीच कही ऊपर उठती हुई ज्योति···जीवन ज्वाला···आओ हाथ सेंक लो!

'मैं अनन्त'' ' नाम के बाद आगे का परिचय, मेरे अपने ही मुँह से···सम्प्रेषण सस्थान में हूँ, कभी-कभी अखबारों मे लिखता भी हूँ···क्या वाकई मेरा परिचय··· या कि मात्र उन साँचों का जिनके भीतर मैं फिट या फिलहाल बन्द था। दफ्तर, पद वगैरह आदमी को बयान कर सकते हैं, पर किस हद तक? कोई दिलचस्पी नही उगी उसमें। यही तो वह कौम थी, जिससे रोज ही घूम-फिरकर मिलना होता था उसका। उसने पहले कही मुझे देखा था, कुछ दिनो पहले ही, इस अहसास का भी कोई टुकड़ा कही नही।

मैं सुवर्णा···उसे कहने की जरूरत नही थी, दफ्तर के बाहर नेमप्लेट लटकी ही थी—श्रीमती सुवर्णा चौधरी।

कॉफ़ी? उसकी तरफ से औपचारिकता, मेरी तरफ से सहज हाँ—थोड़ी देर वहाँ और रुके रहने का बहाना।

चेहरा तब पीछे हट गया था, अब आँखें थी—वही उड़ती-उड़ती आँखें। उनके भीतर उमड़-उमड़ पड़ते सैकड़ों रंग···उजले, हल्के, धुंधले रग'' एक के बाद एक, कभी एक साथ बराबरी से। उन आँखो मे अन्धड़ और तूफान भी थे, उस बिन्दु पर अटके हुए जहाँ जैसे उनकी गति पर काबू पा लिया गया हो। लगता था जैसे उन दो सीपियो मे विश्राम करती जीवन-शक्ति हो···शक्ति जो खूंख्वार बाढ़ को मोड़कर एक शान्त पतली धारा मे बदलकर रख दे सकती है···उसी वक्त।

वे आँखें कितना कुछ कहती थी···और उससे भी ज्यादा समेटे हुए थी। कोई अगर उन्हें पढ़ पाता तो दुनिया के श्रेष्ठ साहित्य को एक ही जगह उँगलियों से सीधे-सीधे छू सकता था।

"आप हमारे संस्थान में आकर सम्प्रेषण की समस्या पर एक व्याख्यान दीजिए।" अपने आने को एक प्रयोजन दिया मैंने।

"मैं!"

फिर वही उड़ती-उड़ती-सी आँखें···आसमान में उतराती दो चिड़ियाँ···सब जगह और किसी खास जगह नही!

"हाँ, क्यों···?"

"मेरा मतलब मैं क्या बोलूँगी···ठीक से खड़ी भी नही हो सकती।"

आँखो ने अपना विस्तार एक पल के लिए खोला···कितनी खूबसूरत। डोर जो उस क्षण उग आयी, उसका सहारा लिये हुए मैं बढ़ने लगा···उस विस्तार की तरफ। बीच रास्ते मे कही नम्रता में वे आँखें झँपी और जैसे फिर से सीपियाँ बन गयी। तब अहसास हुआ उसकी उठी हुई नाक का···आदर्श, जिस तक उठने की कोशिश ही होती है, उसे पा लेने का दम्भ कभी तुम्हारा नही हो सकता।

मैं लौट आया, समुद्र के विस्तार से मस्त तिनके की तरह। दूसरी बार और वह भी इतने पास से देखने पर उसके चेहरे पर पुरानापन बिछना तो दूर···कितने नये कोण वहाँ झलक-झलक गये थे।

"कोशिश करिए···भाषण देना क्या मुश्किल चीज है, खासकर हमारे देश मे।"

मैं थोड़ा हँसा। बराबरी से वह हँसी नही, बस अजूबी नजरो से मेरी तरफ देखती रही।

"शुरू में थोडी घबराहट लगती है···बस यह याद रखिए कि जो सामने बैठे सुन रहे है, वे उल्लू हैं। फिर मैं तो रहूँगा ही पास··"

वह मेरी तरफ नही देख रही थी। पता नही कहाँ देख रही थी, कमरे में थी भी क्या···

"या ऐसा करिए···लिख डालिए।"

खूबसूरत गर्दन ने खुद को एक झटका दिया।

"क्यो··आप सोचते हैं, मैं वाकई नही बोल सकती?"

"नही···इसलिए भी कि हमारे लिए एक लिखित प्रति जरूरी होगी।"

वह आश्वस्त-सी हुई, इधर-उधर देखने लगी। कुर्सी मे हिलोरें उठ रही थीं, किसी तग खोह मे फँसे निर्मल जल की।

"वायदा नही करती। कभी लिखा नही, न ही बोला। सोचूँगी।"

"मुझे तो लगता है, आप तैयार हो जायेंगी।"

"क्यो लगता है?"

"बस, लगता है।"

वह सामने बैठे आदमी को देखने लगी—कैसा है यह? तर्क के रास्ते सीढ़ी-तुम्हारी रोशनी मे!

दर-सीढी चलते हुए किसी नतीजे पर पहुँचने के बजाय ठक्क-से पहुँच जाता है ऊपर '''और फिर वही पहुँचा रहता है'''अजीब !

"मैं अभी कुछ नही कह सकती ।"

"कोई बात नही, कल पूछ लूँगा फोन पर'''"

और अनन्त सही निकला । अगले दिन सुवर्णा ने खुद को व्याख्यान देने के लिए तैयार पाया । बेशक वजहे अलग और उसकी अपनी थी—उसे अपनी झिझक तोड़ने का अभ्यास करना चाहिए, एक मौका था, कुछ वह करने का जो पहले कभी नही किया, अपने मे कुछ नया खोजने का । वैसे भी आज के वक्त बोलना भी आना चाहिए—पता नही कब जरूरत पड जाये । इससे व्यक्तित्व तो असरदार बनता ही है । उसने फोन पर अपनी मंजूरी दे दी ।

व्याख्यान के बाद चाय मेरे कमरे में । सिर्फ वह और मैं । मैंने उसे बधाई दी । तारीफ में उसे कोई दिलचस्पी नही थी'''जैसे कि जानती हो कि मैं तो तारीफ करूंगा-ही-करूंगा'' पर वह वाकई अच्छा बोली थी । एक-दो बार मैं भी हस्तक्षेप करते हुए उसकी बात मे कुछ जोडता हुआ बोला, उसे आश्वस्त करने के खयाल से '''जो उसे बहुत पसन्द नही आया था । यह उसने जाहिर भी कर दिया था । उस समय अपनी तारीफ सुनते हुए भी उसकी कुछ-कुछ वही मुद्रा बन गयी थी । इसलिए मैं विषय पर सरक गया ।

"बुनियादी सवाल यह है कि शब्द का अर्थ वह होता है, जिसमे उसे बोलने या लिखनेवाला इस्तेमाल कर रहा है'''या कि वह जिसमे उसे सुनने या पढनेवाला ले रहा है ।" मैंने पूछा ।

"मेरे विचार से कुछ-कुछ दोनो'''तभी तो एक बात यहाँ से वहाँ जा पाती है ।"

"बात पहुँच भी जाये'''तो फिर शब्द की शक्ति की बात रह ही जायेगी । शब्द को शक्ति कहनेवाले से मिलती है या कि ग्रहण करनेवाले से ?"

"मै फिर कहूँगी दोनो से'''भाषा एक इकाई की तो चीज ही नही है ।"

"बात भाषा की नही सम्प्रेषण की है और सम्प्रेषण की समस्या सबसे पहले अपने स्तर पर उठती है । पहले हम अपनी बात खुद तक तो पहुँचा लें, तभी तो दूसरे तक पहुँचा पायेंगे ।"

"मेरे खयाल में यह बात को और पेंचीदा बनाना है'''" उसने कहा, "यह भी तो हो सकता है कि हमने दूसरे तक अपनी बात पहुँचाने का सोचा नही कि वह खुद को भी साफ होने लगती है । दरअसल साफ होना ही तभी शुरू होती है । अगर दूसरे तक पहुँचाना न हो तो सम्प्रेषण की जरूरत ही नही, यह कोई समस्या ही नही ।"

"क्या हम दावा कर सकते हैं कि जो हम कहते होते हैं उसे हम स्वयं ही ठीक

उसी रूप में मानते या समझते हैं ?"

"ज्यादातर। जिस समझ की आप बात कर रहे हैं, उसका सवाल उठता होगा, लेकिन बड़े ऊँचे मसलो'''विचार या दर्शन के मामलो मे। आमतौर पर हम ठीक-ठीक समझते होते हैं जो कहना चाहते है।"

"आप यह नही मानती कि जो हम कहना चाहते है, उसे भाषा काफी दूषित कर देती है ?"

"कभी-कभी, हमेशा नही !"

"लेकिन हमे अपनी सबसे कीमती बातें, भावनाओ को व्यक्त करने के लिए भाषा के अलावा किसी दूसरे माध्यम का सहारा लेना पड़ता है'''नही ?"

मैं उसकी आँखो मे देख रहा था। वह मेरी शरारत समझ गयी थी क्योकि तब *उसकी आँखों मे हँसी की एक पतली रेखा उभरने को हो आयी, जिसे उसने तुरन्त* ही दबा दिया।

"होगा'''फिर भी आदमी ने अब तक सम्प्रेषण के जो तरीके ढूँढ़े हैं, उनमें भाषा सबसे ज्यादा ताकतवर और 'साइण्टिफिक' है।"

वह न केवल तार्किक ढंग से सोचती थी, अपनी बात को वैसे कहना भी जानती थी। तर्क के इर्द-गिर्द होना उसे अच्छा लगता था वह खूबी जिसे लोग आदमियो से ही जोड़ते हैं। विषय मे गहरे उतरकर बात करना उसे भाता था। जो वह नही जानती थी, उसे जानने को उत्सुक थी और जो जानती थी, उसे और परखना चाहती थी। हम काफी देर तक बातें करते रहे।

"पता नही," आखिर मैंने कहा, "मैं क्या महसूस कर रहा हूँ'' मुझे तो अक्सर यही समझ मे नही आता। दूसरे तक अपनी बात पहुँचाने मे तो एकदम नाकामयाब रहता हूँ।"

"अरे! आप तो अपनी बात काफी आसानी से कह लेते हैं।"

वह हँसी, मुझे आश्वस्त-सा करती हुई। वह चेहरा उकसाता था'''जैसे वही वह कोना हो जिसे आप ढूँढ रहे हो, अपना सबकुछ उँड़ेलकर रख देने के लिए!

"मेरा बचपन गाँव और छोटे कस्बों मे बीता है'''जहाँ हमारा सोचना काफी कुछ अवरुद्ध रहा आता है—थोड़ा बहुत हमारा महसूसना'''हमारे विश्वास भी। भाषा मे या तो बात कही नही जा सकेगी, बेबाकी की कोशिश करें तो फूहड़ हो जायेगी। अंग्रेजी शिक्षा मुझे खुलेपन की तरफ घसीटती रही लेकिन अब मुझे लगता है कि जब्त करना, दबाये रखना ठीक नही तो एकदम खुला होना भी ठीक नही! वह नगा हो जाता है। थोड़ा पर्दा'''अवगुण्ठन, खूबसूरती के लिए जरूरी है, जैसे भावनाओ की शक्ति बँधे होने मे है। बस, दोनो तरफ की हवा लगी तो कुछ उलझ गया।"

"क्या उलझ गया ?"

"मैं खुद ही…!"

"आप तो एकदम ठीक-ठाक दिखते हैं।"

"अच्छा…अंग्रेजी की तरफ थोड़ा खुल लेने से यह फायदा तो हुआ ही कि अब अपने यहाँ की चीजों की अहमियत ज्यादा समझ सकता हूँ।"

"यह भी तो हो सकता है कि अंग्रेजी शिक्षा के बाद आप कुछ ज्यादा जोर से ही अपने देश की चीजों से चिपक गये।"

"अगर यही है तो भी क्या बुरा है…क्योंकि जो मेरे भीतर था ही, उसे और गहराई से महसूस करके मैं ज्यादा शक्ति पा सकूँगा…बाहर से कोई चीज लाकर अपने में रोपने के बजाय। मेरे सन्दर्भ में शायद यही ठीक हो। वैसे ज्यादा सही मुझे अपने बारे में यह लगता है कि मैं अब भी खुला हूँ…और ऐसे ही बह रहा हूँ। निकम्मा भी हो गया इसके चलते। जीवन में अब तक वही हुआ जो होता गया, मेरे बावजूद। पढ़ने भेजा गया तो पढ़ता गया—पहले गाँव में फिर छोटे कस्बे में…फिर एक शहरनुमा कस्बे में। बी. ए. में पहली बार जब चौड़ी डामर की सड़क देखी तो अचम्भित रह गया था। एम. ए. में पहुँचकर ही पैण्ट पहनना शुरू किया। फिर सब लड़कों की तरह नौकरी के लिए मैं भी प्रयत्नशील हो गया। नौकरी पा ली तो इस पटरी पर घिसटने लगा। विवाह भी कोई कर देता तो हो जाता, उस लाइन पर चल पड़ता। नहीं हुआ तो अब इस घिसट में पड़ गया…"

"माँ…बाप?"

"माँ पहले ही जा चुकी थीं, पिता, जब मैं एम. ए. में था, तब चले गये। चाचा हैं…पिता ने अपने जीते-जी एक जमीन बेचकर रुपये मेरे नाम शहर में जमा कर दिये थे। उसी से पढ़ाई पूरी की। नौकरी लगी तब से एक के बाद एक शहर…और फिर यह बड़ा शहर, महानगर…।"

"शादी क्यों नहीं की?"

"बस यूँ ही! चाचा-लोग सोचते थे कि मैं शहरी हूँ तो अपनी पसन्द की ही करूँगा। मुझे कोई मिली नहीं…जो मिली उनसे मामला कुछ सालों तक भी नहीं खिंच सका, शादी और जिन्दगी-भर साथ रहने की बात तो दूर। फिर इस बीच जो पढ़ा, यहाँ और विदेश में जो देखा-सुना, उसका प्रभाव, कुप्रभाव कहिए…वह भी जुड़ गया। सोचने लगा कि विवाह न करके ही हम वह कर सकते हैं जो करना चाहते हैं।"

"क्या करना चाहते हैं आप?"

"वह तो पता नहीं अभी तक, लेकिन लगता है कुछ भी विवाह से तो बेहतर ही होगा।"

"हम विवाहितों की खिल्ली उड़ा रहे हैं?"

"नहीं, मेरा मतलब कि विवाह के बाद बच्चे…उन्हें बड़ा करना, पढ़ाना…"

उन्हें जमाना···फिर यही जीवन का मुख्य उद्देश्य हो जाता है। इतने लोग तो कर रहे हैं वह। मैं यूँ जो थोड़ा-बहुत करूँगा, उससे हटकर तो होगा ही।"

"कोई जरूरी है कि आप कुछ कर सकें···अभी तक कर पाये कुछ?"

"कुछ करने की कोशिश···खोज तो रही है, विवाह कर लेता तो वह भी जाती रहती।"

वह खामोश होकर देखने लगी···सीधा मेरी तरफ, पहली बार इस तरह··· गहरे। वे आँखें गौरैयों की तरह पंख फड़फड़ाती उड़ती रहती थी, पर थमकर भीतर भी पैठ सकती थी।

"अपनी खोज की यात्रा मैं डायरी में लिखता रहता हूँ। इस तरह अपने लिए चीजें साफ होती चलती हैं···लेकिन यह सब सही बात पर मुलम्मा चढाना ही है। दरअसल ··बस ऐसा हो गया कि विवाह नही हुआ। अब उम्र ही निकल गयी।"

"अच्छा···पचास के तो हो ही गये होंगे आप?" वह फिर खिलवाड पर उतर आयी थी।

"तीस···तो भी आधी जिन्दगी तो गयी···आदमी सोचने लगता है जैसे इतनी गयी वैसे बाकी भी सरक जायेगी।"

मैं कैसे···कब अपनी व्यक्तिगत बातो पर उतर आया था, बिना यह परवाह किये कि उसे, जिससे अभी ठीक से परिचय भी नही हुआ, उन बातों में क्या दिलचस्पी हो सकती है? वह सुन रही थी जैसे कोई समझदार व्यक्ति किसी नादान बातूनी की बकवास को धीरज से सुनता रहता है, उन पर न हँसकर अपना बड़प्पन निबाहता है। मै अपने बारे मे और भी काफी कुछ बताता चला गया जैसे कि अगर न बताता तो वे आँखें उकेरकर रख ही देतीं आखिर। वे मेरे अस्फुट स्वरों, अस्पष्ट बातो पर जीभ-सी फेरती थी, जैसे कि जो मैं महसूस करता था उसको···उससे भी आगे बहुत कुछ समझती थी, समझकर समेट भी चुकी थी।

उसके सामने बैठे हुए खूबसूरती की चौंध नहीं, बल्कि स्नेह महसूस कर रहा था मैं। हर खूबसूरती प्रेम का यह दबा-दबा अहसास कराती हुई ही क्यों आती है? यह देखनेवाले की असहायता होती है या खूबसूरती का एक और आयाम···क्या पता, दोनों हो। प्रेम की स्निग्धता ही तो खूबसूरती है।

"आपके पास अपनापन महसूस होता है···"

"अच्छा···?"

जो खुशी, अचम्भा और सवाल एक साथ था—मुस्कुराहट में हिलगा हुआ निकला और हँसी मे जाकर कही गुम हो गया। हँसी वही तक खिची जहाँ तक वह 'अच्छा' को ओझल नही कर आयी। साथ ही उठ खड़ी हुई वह।

"चलूँगी अब।"

"मैं खुद ही···!"

"आप तो एकदम ठीक-ठाक दिखते हैं।"

"अच्छा···अंग्रेजी की तरफ थोड़ा खुल लेने से यह फायदा तो हुआ ही कि अब अपने यहाँ की चीजो की अहमियत ज्यादा समझ सकता हूँ।"

"यह भी तो हो सकता है कि अंग्रेजी शिक्षा के बाद आप कुछ ज्यादा जोर से ही अपने देश की चीजो से चिपक गये।"

"अगर यही है तो भी क्या बुरा है···क्योंकि जो मेरे भीतर था ही, उसे और गहराई से महसूस करके मैं ज्यादा शक्ति पा सकूँगा···बाहर से कोई चीज लाकर अपने में रोपने के बजाय। मेरे सन्दर्भ मे शायद यही ठीक हो। वैसे ज्यादा सही मुझे अपने बारे में यह लगता है कि मैं अब भी खुला हूँ···और ऐसे ही बह रहा हूँ। निकम्मा भी हो गया इसके चलते। जीवन मे अब तक वही हुआ जो होता गया, मेरे बावजूद। पढने भेजा गया तो पढता गया—पहले गाँव में फिर छोटे कस्बे मे···फिर एक शहरनुमा कस्बे मे। बी. ए. मे पहली बार जब चौड़ी डामर की सड़क देखी तो अचम्भित रह गया था। एम. ए. मे पहुँचकर ही पैण्ट पहनना शुरू किया। फिर सब लड़कों की तरह नौकरी के लिए मैं भी प्रयत्नशील हो गया। नौकरी पा ली तो इस पटरी पर घिसटने लगा। विवाह भी कोई कर देता तो हो जाता, उस लाइन पर चल पड़ता। नही हुआ तो अब इस घिसट मे पड़ गया···"

"माँ···बाप?"

"माँ पहले ही जा चुकी थी, पिता, जब मैं एम. ए. मे था, तब चले गये। चाचा हैं···पिता ने अपने जीते-जी एक जमीन बेचकर रपये मेरे नाम शहर मे जमा कर दिये थे। उसी से पढ़ाई पूरी की। नौकरी लगी तब से एक के बाद एक शहर···और फिर यह बड़ा शहर, महानगर···।"

"शादी क्यो नही की?"

"बस यूँ ही! चाचा-लोग सोचते थे कि मैं शहरी हूँ तो अपनी पसन्द की ही करूँगा। मुझे कोई मिली नही···जो मिली उनसे मामला कुछ सालो तक भी नही खिंच सका, शादी और जिन्दगी-भर साथ रहने की बात तो दूर। फिर इस बीच जो पढ़ा, यहाँ और विदेश मे जो देखा-सुना, उसका प्रभाव, कुप्रभाव कहिए···वह भी जुड़ गया। सोचने लगा कि विवाह न करके ही हम वह कर सकते हैं जो करना चाहते हैं।"

"क्या करना चाहते हैं आप?"

"वह तो पता नही अभी तक, लेकिन लगता है कुछ भी विवाह से तो बेहतर ही होगा।"

"हम विवाहितो की खिल्ली उड़ा रहे हैं?"

"नही, मेरा मतलब कि विवाह के बाद बच्चे···उन्हें बड़ा करना, पढ़ाना···

उन्हें जमाना···फिर यही जीवन का मुख्य उद्देश्य हो जाता है। इतने लोग तो कर रहे हैं वह। मैं यूं जो थोड़ा-बहुत करूँगा, उससे हटकर तो होगा ही।"

"कोई जरूरी है कि आप कुछ कर सकें अभी तक कर पाये कुछ?"

"कुछ करने की कोशिश···खोज तो रही है, विवाह कर लेता तो वह भी जाती रहती।"

वह खामोश होकर देखने लगी···सीधा मेरी तरफ, पहली बार इस तरह··· गहरे। वे आँखें गौरैयों की तरह पंख फड़फड़ाती उड़ती रहती थीं, पर थमकर भीतर भी पैठ सकती थी।

"अपनी खोज की यात्रा में डायरी में लिखता रहता हूँ। इस तरह अपने लिए चीजें साफ होती चलती हैं···लेकिन यह सब सही बात पर मुलम्मा चढाना ही है। दरअसल···बस ऐसा हो गया कि विवाह नही हुआ। अब उम्र ही निकल गयी।"

"अच्छा···पचास के तो हो ही गये होंगे आप?" वह फिर खिलवाड़ पर उतर आयी थी।

"तीस···तो भी आधी जिन्दगी तो गयी···आदमी सोचने लगता है जैसे इतनी गयी वैसे बाकी भी सरक जायेगी।"

मैं कैसे···कब अपनी व्यक्तिगत बातों पर उतर आया था, बिना यह परवाह किये कि उसे, जिससे अभी ठीक से परिचय भी नही हुआ, उन बातों मे क्या दिलचस्पी हो सकती है? वह सुन रही थी जैसे कोई समझदार व्यक्ति किसी नादान बातूनी की बकवास को धीरज से सुनता रहता है, उन पर न हँसकर अपना बड़प्पन निबाहता है। मैं अपने बारे मे और भी काफी कुछ बताता चला गया जैसे कि अगर न बताता तो वे आँखें उकेरकर रख ही देती आखिर। वे मेरे अस्फुट स्वरों, अस्पष्ट बातों पर जीभ-सी फेरती थी, जैसे कि जो मैं महसूस करता था उसको···उससे भी आगे बहुत कुछ समझती थी, समझकर समेट भी चुकी थी।

उसके सामने बैठे हुए खूबसूरती की चौंध नही, बल्कि स्नेह महसूस कर रहा था मैं। हर खूबसूरती प्रेम का यह दबा-दबा अहसास कराती हुई ही क्यों आती है? यह देखनेवाले की असहायता होती है या खूबसूरती का एक और आयाम···क्या पता, दोनो हो। प्रेम की स्निग्धता ही तो खूबसूरती है।

"आपके पास अपनापन महसूस होता है···"

"अच्छा···?"

जो खुशी, अचम्भा और सवाल एक साथ था—मुस्कुराहट मे हिलता हुआ निकला और हँसी मे जाकर कही गुम हो गया। हँसी वही तक खिची जहाँ तक वह 'अच्छा' को ओझल नही कर आयी। साथ ही उठ खडी हुई वह।

"चलूँगी अब।"

"बैठिए न, थोड़ी देर और !"

"नहीं, दफ्तर मे काम इकट्ठा हो गया होगा।"

27 दिसम्बर, 1976

पतंगो की दुनिया मे जैसे खीच।

ऊपर तनी एक पतंग···स्थिर, अपने में मुस्कुराती हुई, नीचे की पतंगों की लहरबाजियों से बहुत ऊपर, निर्विकार···एकाएक उसने गोता मारा, नीचे की एक पतंग को नीचे से लिया और खीचा मारती, सनसनाती दूसरी तरफ ले गयी। वो काटा ! काटना-भर नही, उलझाकर अपने साथ ले भी उड़ना···

जो मैं हूँ उससे एकदम विपरीत कोटि के गुण पुंजीभूत सामने है ··सुन्दर छवि में एकाकार। इस वर्ग के किसी परिवार से कभी अन्तरंगता नही हुई पर यह भी नही कि पहले इन गुणो से साक्षात्कार ही न हुआ हो, देखता-सुनता तो रहा ही हूँ ···पर इस तरह एक ही जगह, ऐसी खूबसूरती में लिपटे···जैसे उन सभी गुणो के सुपरिणाम इकट्ठे होकर स्वतः सज उठे हों।

वह खीचती नहीं दिखती पर मैं खिंचा जा रहा हूँ।

मैं जिस तरह पहले गाँव फिर कस्बे में बड़ा हुआ, पढ़ा-लिखा···उसने क्या दिया मुझे ? ढीलापन, सुस्ती···पस्ती का भाव। जो सामने है उसे दार्शनिकता मे बराबर ओट करते रहना···करते-करते खो देना, पाने की खुशी जैसे कोई पाप··· गँवाने मे ही सतत खुश ! आगे कभी नही आना···हमेशा पीछे रहना। आदमी पर भरोसा कम, ईश्वर पर ज्यादा, हर चीज ईश्वर पर टालना···आत्मविश्वास शून्य के बराबर। इर्द-गिर्द उदासी, धुन्ध। इधर-से-उधर हिचकोले खाते फिरना और असमय मे ही बूढ़े होकर मर जाना।

और यहाँ वह—जिजीविषा ने ही जैसे शरीर धारण किया हो। ऊष्मा उबल-उबल पड़ती हुई, पोर-पोर में आत्मविश्वास सहकता हुआ···जैसे एकदम साफ हो कि उसे यह चाहिए और उसे पकड़कर अपनी तरफ खीच लेने के अपने सामर्थ्य के प्रति भी सचेत। चुस्ती···फुर्ती, हर जगह आगे। अपने होने मे खुश और उस खुशी का अहसास दूसरे तक भी पहुँचाते हुए। हमेशा खुश···उदासी की छाया दूर-दूर तक नही। जो सामने है वही असल है। बुद्धि की वह चमक कि आसपास के अँधेरे को छाँटती हुई लकीर की तरह ऊपर उठे और वही स्थिर हो जाये···जो नहीं है उसकी अटकलों में भटकते फिरने की बजाय जो है उसे जीना···सिर्फ जीना !

वह एक रोशनी की तरह जलती है···कैसे उजले-उजले रंग, कैसी सुगन्ध !

क्या मैं अपने आपसे भाग रहा हूँ ? नहीं, अपने अकेलेपन का मैं अभ्यस्त हो चुका हूँ, इतना ही नहीं···इसमे रस मिलने लगा है मुझे। मेरे पास, मेरा काम है

जिसमें मन लगता है, कभी कुछ लिख-लिखाकर एक उन्नत किस्म की अनुभूति का सुख भी पा लेता हूँ। दो-चार दोस्त हैं, किताबों का साथ है जो कोई खालीपन महसूस नहीं होने देता। पलायन अगर है तो मेरा यह क्वाँरापन, मेरा अपना यह छोटा सिलसिला ही। बाहर कितनी झझटें हैं मैं जानता हूँ, इसलिए अपनी दुनिया में खासा सन्तुष्ट, दुबका बैठा रहता हूँ। कोई चीज आसानी से मुझे अपने इस घोंसले से बाहर नहीं निकाल पाती···पर यह जो सामने है वह, ऐसा लगता है यह एक अलग पक्ष है···उसे जानना चाहिए···

जानने की प्यास···बस ? नहीं, इसके अलावा भी बहुत कुछ।···क्या ?··· यही नहीं मालूम···

उदास राजकुमारी

वह उस जाड़े की पहली बारिश थी। फरफराती हवा में इधर से उधर तैरती हुई धुन्ध। दिन-भर सड़कों पर मटमैली सफेदी-भरा अँधेरा उतराता रहा था। भीतर-बाहर, सभी तरफ एक मरियल-सा झीनापन। हाथ डालो तो न बादल ही, न पानी ही…जैसे सृष्टि का मायावीपन सड़कों, पेड़ों के इर्द-गिर्द, इमारतों के ऊपर…हर तरफ भटक रहा था।

"नुमाइश चलेंगे, आखिरी तीन दिन हैं…?" चाय के बाद उसने पूछा।

"चलिए !"

उसके साथ जाने को मिल रहा था, वह भी सिर्फ तीसरी मुलाकात में। वह क्या सबसे ही इतनी जल्दी अन्तरंग हो जाती होगी कि ऐसे मौसम में साथ बाहर चली जाये…वह भी तब जब जल्दी ही गाढ़ा अँधेरा उतरनेवाला हो।

"कितनी देर घूमियेगा ?"

"चाहे जितनी देर…क्यों, क्या जल्दी जाना है ?"

"नहीं, मुझे नहीं… मैं आपके बारे में सोच रहा था, आपको घर पहुँचना होगा न ?"

"तो क्या नुमाइश में खो जाऊँगी, घर तो पहुँचूँगी ही।"

"मेरा मतलब आपके पति इन्तजार करेंगे न ?"

"ओह !" वह हँसी…"बड़ा ख्याल रखते हैं आप…फिकर न करिए, वे चिन्ता नहीं करेंगे, क्योंकि हमारे साथ ही होंगे। आ रहे हैं।"

हमें अलग-अलग जाना था—वह और पति एक साथ, मैं अलग। मैं पहले चल दिया। नुमाइश के दरवाजे पर मिलने की बात तय हुई। वहीं उसने पति से परिचय कराया—रमेश…जैसा सामान्य नाम वैसा ही एक चुस्त-दुरुस्त, साधारण, निर्दोष-सा दिखता व्यक्ति। नुमाइश से तटस्थ…जैसे हर चीज से तटस्थ, शायद पत्नी का मन रखने के लिए आ गया था। हाथ मिलाते वक्त औपचारिकता से आगे एक अंश भी गरमाहट नहीं, न ही उपेक्षा…बस तटस्थता। शुरू-शुरू में जरूर मेरी तरफ

बढ़ते हुए, नजरों मे थोड़ी उत्सुकता उतरा आयी थी, पर वह बड़ी जल्दी ओट भी हो गयी।

सुवर्णा काले रंग के पुलोवर मे थी। बाल वैसे ही दो चोटियों मे बँधे हुए—लेकिन रबर-बैण्ड की जगह लाल रिबन। लाल फीतो मे बँधी छोटी-छोटी दो चोटियाँ चेहरे को एक अपनी ही तरह के कसाव में बाँधती थी, फीते का लाल रग पीछे से अपनी आभा फेंकता हुआ। अक्सर उसकी बराबरी पर चलते हुए मैं खूबसूरती और प्रेम, दोनो की आँच से सट जाना चाहता। कभी काफी करीब आ भी जाता, लहरें भीतर उठने लगती। खुनक···आलाप को जगानेवाली पहली स्वरलहरी-सी। तभी वह आगे निकल जाती थी।

वह इधर-से-उधर करीब-करीब उचकते हुए दौड़ रही थी···आँखो में कौतूहल और आश्चर्य के मिले-जुले रंग। अपनी हुलफुलाहट मे एकाएक हम दोनो को ही पीछे छोड़ काफी आगे चली जाती। कही भीड़ मे करीब-करीब घुस जाती, तमाशा देखने को उत्सुक किसी बच्चे की तरह। तब आदमियो के उस झुण्ड में एकाएक रोशनी हो जाती। लोग उसे घूरने लग जाते—पहले उसे पता ही न चलता पर अहसास होते ही वह अचकचाकर लौट आती···खूबसूरत होना भी गुनाह है इस देश मे!

"अरे! इधर देखो बच्चों की किताबें···चलो, कुछ खरीदें।"

वह रमेश को खीच रही थी। जितना ही वह बच्चा उतना ही रमेश बुजुर्ग, अनमना-सा दुकान की तरफ चला गया उसके पीछे-पीछे। काफी देर तक वे दोनो वहाँ बच्चो के लिए किताबे देखते रहे। इधर-उधर से वह किताबें छाँटकर लाती थी, रमेश की हामी चाहती···वह उसकी तरफ देखकर हाँ कर देता, जैसे कि उसकी अपनी कोई राय ही न हो उस मामले में। जब किताबें इकट्ठी हो गयी तो रमेश ने चुपचाप पैसे निकालकर दे दिये।

इधर-उधर घूमते हुए उसके साथ कभी मैं होता, कभी रमेश, कभी वह सिर्फ अकेली···भीड मे से हम दोनों मे से किसी को खोजती हुई, एक खोये बच्चे की तरह। कोई एक दिखा नो दौड़कर आ जाती थी। कभी वह खो ही जाती और मैं उसे ढूँढ़ने लग जाता। रमेश यह नही करता था, एक किनारे खड़ा चुपचाप इन्तजार करता था, इत्मीनान से···और वह घूम-फिरकर उसके पास पहुँच ही जाती थी आखिर।

"इतवार को क्या करते हैं?" चलते समय उसने मुझसे पूछा। रमेश अब भी पहले की तरह खामोश···दूर-दूर।

"कुछ खास तो नही।"

"तो फिर घर आइए किसी दिन, बातें करेंगे।"

बातें करेंगे···कौन, किससे और क्या बातें? फिर वही बातें, बातों की प्यास!

"रमेश भी होंगे···क्यो?" उसने रमेश से पूछा, या कि उसकी तरफ देखते

हुए कहा, सिर्फ कहा। रमेश ने औपचारिक-सी हामी भर दी। "आने से पहले फोन कर लीजियेगा।"

मैंने उन्हें विदा किया। पहले उन्हें साथ बैठे देखा, फिर साथ जाते हुए और फिर खुद को पीछे छूटते हुए।

सुवर्णा का घर, एकमंजिला। बाहर लॉन, चारो तरफ फूलो के पौधे, पीछे किचिन-गार्डेन। बरामदे मे पड़ा एक बड़ा-सा झूला बच्चो और बड़ों दोनो के लिए। किनारे-वाले खम्भे पर चिपकी चमेली की एक घनी बेल ऊपर छत की तरफ चली गयी थी।

दरख्तो के बीच सिमटी वह छोटी इमारत बाहर से खासी रहस्यमय लगती थी'' जैसे कोई छोटी-मोटी 'कासिल' हो। तीन तरफ हरियाली, एक तरफ बजरी का लाल-लाल उजला-सा रास्ता जिस पर से होकर मैं आया था।

कोई नहीं दिखायी दिया'''आसपास आदमी न होने की वजह से हरियाली का फैलाव भी वीरान दिखता था। बरामदे मे पहुँचकर मैंने घण्टी टटोली'''घण्टी ने एक चिड़िया-जैसी आवाज की - टिन ''टुन ' टिन ! भीतर एक हरकत उठी, सरकती हुई बाहर की तरफ आयी। नौकर ने दरवाजा खोला। मुझे अन्दर किया, फिर एक खास जगह बैठने के लिए दिखायी और निःशब्द भीतर गायब हो गया।

ड्राइंगरूम---सोफो पर रंगीन कवर, खिड़कियो पर टँगे पर्दों के झीने अँधेरे मे और भी चटख लगते हुए। दीवारो पर सजावट'''सौम्य---कुछ कपड़ों के टुकड़ो पर चित्र, कुछ मढ़ी हुई तस्वीरें, एकाध पेण्टिग भी, अमूर्त्त शैली की। करीब-करीब सभी सुविधाओं के नमूने थे वहाँ---सर्दी के लिए हीटर और गर्मी के लिए खिड़की पर लगा कूलर, एक कोने को आड़ देता एक बड़ा-सा फ्रिज। जैसे सारा कुछ नाप-तौल और सोच-विचारकर जमा किया और लगाया गया था। जो चीज जहाँ थी उसकी वही जगह थी। इसी तरह जो चीज जिस अनुपात या मात्रा मे होना चाहिए उसी में'''न ज्यादा, न कम ''सोफे के छः अदद हीं, बाकी दो स्टूल। साइड-टेबिल सिर्फ चार। एक किनारे से लगा टोस्टर तो दूसरी तरफ रिकॉर्ड-प्लेयर। खाने की मेज के पास ही शीशे की आलमारी मे चमकती हुई क्रोकरी। रिकॉर्ड-प्लेयर की तरफ की आलमारी में कुछ किताबें'''ज्यादातर अंग्रेजी की।

हर तरफ अनुपात, सन्तुलन, सुरुचि'''कहीं कुछ उल्टा-सीधा, ऊबड़-खाबड़ नहीं। एक तरफ रैक पर सजे दो फोटो---एक मे वह और रमेश, दूसरे में दो बच्चे हँसते हुए'''

एक शहरी घर का परिवेश। चारो ओर उच्च मध्यवर्गीय सुरक्षा का किला। अन्दर चुन-चुनकर जुटायी गयी सारी जरूरी सुविधाएँ ''कि सारे इत्मीनान से उनमे

ऊपर-नीचे झूलते रहा जा सकता था, जब-कब थोड़ी बहुत कमी पूरा करते हुए या एकाध नयी चीजों का इजाफ़ा करते हुए।

दीवाली, दशहरा-जैसे त्योहार भी एक ही तरह से मनाये जाकर औपचारिकता की एक लम्बी कड़ी मे पिरो दिये गये होंगे। होली फूहड़पन होगा···इतने साफ-साफ माहौल में। पूजा रोज के दस्तूर मे गुँथी हुई, जैसे स्कूल मे पी. टी.। जिनमे वाकई जोश आता होगा, वे मौके थे—बर्थ-डे, न्यू इयर्स ईव···तो साल मे कितने? बचे अखबार, बौद्धिक होने का भ्रम पाले रखने के लिए कुछ अंग्रेजी पत्रिकाएँ जिनमे पढने का कम देखने का ज्यादा हो, पार्टियाँ और कुछ सगीत के रिकोर्ड्स। कभी-कभार दफ्तर की कोई बात जैसे एक का दूसरे काम पर स्थानान्तरण, तरक्की या ऐसी ही कोई चीज···एक घटना की तरह आती होगी तो वह भी दूसरे दिन ही आम हो जाती होगी।

मै कहाँ बैठूँगा···यह भी करीब-करीब तय था वहाँ···शायद इस रख-रखाव मे नयों की भी कल्पना है। वे आयें हवा के कुछ ताजे झोंके कुछ दिनों के लिए अन्दर फेंक जाने को, बशर्ते···

भीतर उसकी आवाज। वह बुला रही थी···नौकर को, रमेश को···

फिर रमेश और वह दोनो आ गये, मेरे पास बैठ गये। बातचीत चल पड़ी··· मेरे पद से शुरू करके, कुछ जानकारियाँ इधर-से-उधर जाती हुई, कुछ तर्क-वितर्क बीच-बीच चलते हुए। मैं अविवाहित ··यह भी बीच मे कही उग आया ··रमेश के लिए वह भी एक मामूली-सी सूचनामात्र, हालाँकि ऐसा नही होना चाहिए था क्योंकि पहली मुलाकात में वह नही जान पाया था···और पहले-पहल जानने पर यह हल्के ताज्जुब की बात तो बन ही जाती है मेरे सन्दर्भ में।

रमेश उखड़ने लगा, क्योंकि बातचीत नौकरी की पटरी से खिसकने लगी थी·· हमेशा ऐसा ही होता है, वह जानती है। रमेश ऐसा ही बना है—जहाँ तक बातें ठोस-ठोस मुद्दों पर हुईं वहाँ तक वह साथ देगा, जहाँ वे इधर-उधर सरकी, कि वह पीछे छूटने लगता है। और बातों का भी कुछ ऐसा है कि धीरे-धीरे बारीक होती जाती हैं···'एब्स्ट्रैक्ट' की ही तरफ बढती हैं, तह में जाने के लिए रास्ता ही वही है···

रमेश उठ जाता है—बातें और बातें···फिजूल की बातें। क्या रस होता है इनमें···जैसे कि बाहर के किसी आदमी मे भी ऐसा क्या है, कितना नयापन···कि इतना डूबकर बातें करते रहा जाये? सोशल-काल्स या एक परिवार का दूसरे परिवार की खोज-खबर लेते रहना समझ मे आता है, लेकिन यह बातो के इर्द-गिर्द बँधना···डूब जाना? बुरा नही है कि लोगो के आने-जाने की थोड़ी बहुत हरकत होती चले, वर्ना उसका परिवार क्या अपने-आपमें पूरा नही है? घर के काम, दफ्तर के तनाव···ये ही असल हैं और इतने काफी कि दूसरी चीजों के लिए समय

कैसे निकाल सकते हैं लोग। शायद इन हवाई बातों का भी एक नशा होता है, अफीम की तरह···

बातें फिर वे दो ही करते रहे। सुवर्णा सोचती भी थी। कभी-कभी उसका बोलना एकदम बौद्धिकों की तरह होता था। सभी तरह की चीजों के लिए दिलचस्पी और उनकी एक स्तर की समझ थी उसमें ···आगे जानने की उत्सुकता भी। दरअसल घर के वातावरण में एक उसकी बातें ही थी जो कहीं से मेल नहीं खाती थीं, वर्ना उसके आनुपातिक नाक-नक्श भी जैसे उस घर की सजावट का हिस्सा थे। ये बातें न होतीं तो उस घर में वह एक मामूली गृहस्थिन से ज्यादा कुछ मुश्किल से ही लगती।

"आपने तो घर बहुत ही ढंग से रखा है।"

"गृहस्थिन होना गर्व की बात है मेरे लिए···" उसने मुस्कुराते हुए कहा। "यहाँ भी अपना काम मुझे उतना ही अच्छा लगता है, जितना दफ्तर का काम। जैसे मैं दफ्तर में सफल होना चाहती हूँ वैसे ही घर में भी। वहाँ मैं किसी आदमी से पिछड़ी नहीं रहना चाहती, यहाँ किसी औरत से नहीं। पूरी कोशिश करती हूँ— बच्चों की देखभाल, घर का इन्तजाम, रमेश का खयाल···"

वह वाकई करती है, रमेश का स्वभाव समझती है, उसे हर जगह आगे लाना चाहती है। कोशिश करती है कि वह किसी कोने से ऐसा महसूस न करे कि उसका खयाल नहीं रखा जा रहा। हर नये आदमी के सामने वह शुरू से ही रमेश को आगे बढ़ाती है। रमेश में मेल-मुलाकात के लिए कोई बहुत जोश नहीं जागता। वह जल्दी ही पीछे हट जाता है। ताज्जुब कि वह यह महसूस नहीं करता कि हर नये व्यक्ति को ढूंढना एक नये देश की सैर करना-जैसा है। कुछ यह भी है कि रमेश से कहीं ज्यादा वह लोगों को प्रभावित कर बैठती है, उसका व्यक्तित्व हावी हो जाता है··· फिर वह खास हो जाती है और रमेश गौण। ऐसा उन लोगों के साथ भी हुआ है, जिनके सम्बन्ध शुरू-शुरू में सिर्फ रमेश से ही थे। उसे उम्मीद है कि रमेश धीरे-धीरे आगे आने लगेगा। स्वभाव बदलते-बदलते वक्त लगता है। करते-करते इतना तो हो ही गया है कि रमेश अब यह मानने लगा है कि उसकी पत्नी का अपना एक अलग व्यक्तित्व है, उसके अपने परिचितों और दोस्तों का एक अलग दायरा हो सकता है। रमेश को भी उस सर्किल के बारे में जानना चाहिए···इसलिए भी वह रमेश को हमेशा अपने बीच लाती रहती है, वह नहीं चाहता तब भी।

"यह गलत है कि औरत कोई काम उसी कुशलता से नहीं कर सकती जैसे कि···पुरुष" ···वह कह रही थी···"आज की औरत यह साबित भी कर रही है।"

"इससे इन्कार कहाँ है, पर होड़ की बात भी तो नहीं उठना चाहिए। औरतों के मन में क्यों इस तरह की तुलनावाली बात उठे।"

"शुरूआत पुरुष ही करता है। वह बाहर के कामों में बेवजह अपने को बेहतर मानकर चलता है।"

"करते होंगे कुछ लोग ऐसा...लेकिन मैं तो यह मानता हूँ कि दोनों के कार्य-क्षेत्र अलग-अलग हैं।"

"नहीं, ऐसा नहीं है। वे एक हैं...एक हो सकते हैं।"

"घर?"

"अब यही...यह आदमी का फैसला है कि औरत का कार्य-क्षेत्र घर है। घर आदमी को भी उतना ही देखना चाहिए जितना औरत को।"

"आपके यहाँ क्या यह हो पाया?"

"काफी कुछ...रमेश को काफी घर की तरफ लायी हूँ। वह ज्यादा कुछ नही करता तो इसलिए कि मुझे घर मे बहुत दिलचस्पी है। यह मेरा घर है। इसलिए हर छोटी-से-छोटी चीज मैं खुद ही देखना चाहती हूँ। मुझे यह कुछ ज्यादा ही खयाल रहता है कि दफ्तर मे काम करने की वजह से मैं घर की किसी भी तरह से उपेक्षा न कर बैठूं।"

"आपकी घर में इतनी ज्यादा दिलचस्पी आपके स्वभाव की वजह से भी हो सकती है, नारी का मन घर मे बहुत रमता है।"

"यह मेरा स्वभाव है यह तो मैं मानती हूँ लेकिन औरत होने की वजह से है यह नही मानती। कितनी औरतों का घर मे मन नही लगता...और इस बात की भी कद्र होना चाहिए...जबकि उन्हें अजूबा की तरह देखा जाता है। मेरी राय मे हर औरत को बाहर भी कोई-न-कोई काम करना चाहिए। तभी उनका पूरा विकास हो पाता है। मुझे पैसों की जरूरत नही थी पर शादी के बाद मैंने नौकरी की जरूरत महसूस की।"

"पश्चिम मे जो आज इतने घर टूटने लगे हैं उसकी वजह यह बतायी जाती है कि दूसरे युद्ध के बाद औरतें बड़ी संख्या मे घर से बाहर काम करने को निकली।"

"घर क्या है...? अपने-आपमे वह आदमी या कि औरत की जिन्दगी से तो बड़ी चीज नही कि उसे बनाये रखने के लिए एक जिन्दगी को रौंदे रखा जाय। घर, घर ही तभी होता है जब दोनो के अन्दर बराबर की कशिश हो, वर्ना तो वह पहले से ही टूटा रखा है। हम हिन्दुस्तानी लोग खासतौर से, अक्सर घर के नाम पर एक कब्र को ही ताकते बैठे रहते हैं। पश्चिम के लोग ज्यादा ईमानदार हैं—घर है तो वाकई घर है, वर्ना नही है। अरे, मैं तो लेक्चर झाड़े जा रही हूँ।"

वह हँसी...अपने-आप पर हँस रही थी, या कि अपने-आपसे खुश थी। इस बीच चाय आ गयी और वह चाय बनाने मे लग गयी।

"बहुत बोल चुकी, अब आप कहिए...आपको क्या अच्छा लगता है?"

"पढ़ना...खूब पढ़ना।"

"हाउ नाइस ! मुझे भी पढने का बहुत शौक है। क्या पढ़ते हैं आप ?"

"ज्यादातर उपन्यास'''साहित्य, इतिहास, समाजशास्त्र भी। पर कोई बन्दिश नहीं है। जो भी मन हुआ या जो भी हाथ आ गया। आप क्यों पढ़ती हैं ?"

"अच्छा लगता है'''रात को सो नही सकती, जब तक कोई किताब हाथ मे न हो। आप''' ?"

"मैं पढ़ता हूँ इसलिए कि जीवन को समझ सकूँ'''जो हमारे पहले लोगों ने सोचा-समझा कुछ उसकी मदद से। जीवन को कितना कम समझते हैं हम ?"

सुवर्णा को एकाएक खामोशी ने बाँध लिया। सामने बैठा यह आदमी''' मामूली फिर भी खास। पहले भी लगा था कि यह दिमाग से कम मन से ज्यादा चलता है, इसीलिए शायद इसके यहाँ एक अपनी तरह की ताजगी है। पहले जो कुछ महसूस किया था वह जैसे अब कोई रहस्य बनने लगा था—जीवन'''जीवन को समझना !

वह'''खामोश, सामने देख रही थी—मुझे, मेरी तरफ'''नही, मेरे भी पार। खूब बोलते रहने के बाद उसका यों एकाएक चुप हो जाना'''जैसे हवा मे तैरती पतग एकाएक किसी दरख्त की फुनगियों में जा फँसी हो और वही फड़फड़ा रही हो।

सोचता हुआ वह चेहरा उदास-सा हो आया था। वह सजी-सँवरी दुनिया और उसकी वह पटरानी'''हीरे-मोतियों से चपेटे खेले। गहने बनवाये'''गहने तुड़वाये, फिर बनवाये। गुड़ियाँ बनाये और उन्हें फिर उधेड़े !

इस थोड़ा-थोड़ा सबकुछवाली दुनिया में ऐसा दिखता है कि रमेश तो एकरग हो गया है—वह शायद शुरू से ही ऐसा था, पर सुवर्णा'''? उस क्षण उस चेहरे पर घिरी उदासी देखकर लगा कि सुवर्णा अभी तक घिसाव के उस बिन्दु तक नहीं पहुँची थी जहाँ आदमी का ऊबना भी बन्द हो जाता है।

"चलूँगा अब'''" चाय खत्म करके मैंने कहा।

"आया करिए ! आपका घर तो पास है।"

यह तीसरी बार था जब उसने मुझे खींचा था'''दफ्तर से नुमाइश, नुमाइश से घर और अब घर से घर तक। शुरू मे उसे देखकर मैं कितना असहाय हो गया था—सामने खूबसूरती-ही-खूबसूरती'''दूर तक तिरता चला गया'''सामने कुछ और था ही नहीं जैसे। अब पार बहुत कुछ झलक रहा था—गहराइयाँ''अनजान, अदेखी इसलिए अथाह। काश, हम उन्हें छू सकते !

अगर हम एक-दूसरे को सिवाय एक ओढ़ी गयी हा-हा हू-हू और एक बेमकसद आवन-जावन के और कुछ नहीं दे सकते तो हमारा मिलना, न मिलना बराबर था। दोनों को ही इस घास-फूस की कमी नहीं है। इसके ऊपर कुछ'''उसके लिए हमें अपने लबादे उतारना पड़ेंगे—उसे अपना दफ्तर और घर, मुझे अपना दफ्तर और

पर्वारापन। उसे अपना शहरी तोष, मुझे अपनी कस्बई मसोस। हम विशुद्ध व्यक्ति भी नही बचते, अभिशप्त हैं, शायद इस सांचे या उस साँचे मे जीने के लिए।

उसने रमेश को भीतर से बुला लिया। वे दोनो बाहर तक छोड़ने आये। एक बँधा-बँधाया दस्तूर, जिस तरह कि ड्राइंगरूम की दीवार पर खिड़की के सामने एक तस्वीर लगना-ही-लगना है।

नमस्ते के लिए जुड़े हाथों के पार आँखें ··टिमटिमाते तारों की दूरी तक पहुँचने के लिए उठान लेती हुईं···बेचैन···नुमाइश में खोती और फिर आ मिलती बच्ची या जगल में भटकी हुई राजकुमारी···

कौन है वह ?

पगडण्डियाँ

"हलो···ओऽऽऽ"

खिचती हुई 'ओ' फोन पर, सवालिया पर सुरीली, कुछ-कुछ संगीतात्मक ··

सुवर्णा।

"क्या कर रहे हैं?"

"क्यों?"

"उस दिन आप यों ही बैठकर चले गये, अच्छा नहीं लगा।"

पिछली बार उसके दफ्तर की तरफ जाना हुआ था तो उसके कमरे में भी झांका था। कोई नहीं था। फिर भी थोड़ी देर बैठा, आखिर एक पर्चा मेज की दराज में डालकर चला आया था—एक पंक्ति में सूचना कि मैं आया और कुछ देर उसका इन्तजार किया।

"हाँ, सोचा था ··अब कब मिलेंगी?"

"जब आप कहें।"

"आज ही, अभी?"

कुछ पलों के लिए उधर चुप्पी का रेंगना, फिर हल्की, भरे-भरे बादलों के चलने की तरह कांपती-सी आवाज ···"कहाँ?"

"यहीं आ जाइए, आज मेरी तरफ।"

उसे इतना दूर बुलाने, तकलीफ देने का ख्याल एकदम नहीं था ··लेकिन वैसा हो गया। उसने फौरन मान भी लिया जैसे कि उस दिन मेरे इन्तजार करने का प्रतिकार करना चाहती हो ··जबकि दोष उसका कहाँ था!

लाल साड़ी, लाल ब्लाउज। साड़ी में जहाँ-तहाँ काली चिन्दियाँ। लाल कपड़ों में चेहरा और भी उजला हो आया था। मुस्कुराहट में झुकती आँखें। अल्हड़ बाल, स्प्रिंग-से·· हवा में उड़ते हुए।

"पानी पिऊँगी।" कमरे में घुसते ही हाँफते-हाँफते उसने कहा, "पहुँचने में ही इतना वक्त लग गया···फिर ये लोग···कैसे घूर-घूरकर देखते हैं उफ़!"

उसके पीछे किवाड़ अपने-आप वन्द हो गया'''डोर क्लोज़र। मैंने पानी का एक गिलास उसके सामने रखा। उसने पानी के दो वड़े-वड़े घूंट लिये और फिर गिलास को मेज पर घुमाने का खेल खेलने लग गयी।

मैं ग्लानि से भर आया था। भीड़-भाड़वाला अपना दफ्तर! खुद ही चला जाता उसके पास'''पर वह जल्दी ही सवकुछ एक तरफ सरकाकर बाहर निकल आयी। वह मुझसे मिलने आयी थी तो लोग क्यों बीच मे टँगे रहें, लेकिन मैं था कि उन्ही मे हिलगा हुआ था।

"यह जो लोगो का इस तरह घूरना है न, इसके पीछे उनकी दबी हुई यौन-कुण्ठाएँ तो हैं ही"—मैंने कहा—"शायद भारतीय ही इस कदर घूरते है'''पर मेरे खयाल में इससे भी ज्यादा यह सब उस उबास की वजह से है जो हम सभी किसी-न-किसी मात्रा मे ढोते हैं।"

"उबास तो भारत के बाहर योरुप मे भी है, और भी ज्यादा।"

"पर वहाँ उसका समाधान लोग सेक्स मे नही ढूंढते। सेक्स से भी ऊब चुके हैं वे, जबकि यहाँ वह अब भी खासी आकर्षण की चीज है।"

"जी नही, यह शुद्ध वदतमीजी है और कुछ नही। उबास है तो उससे निपटने के और भी तरीके हो सकते हैं, या कि किसी को इस तरह परेशान किया जाय।"

"लेकिन आपने कभी सोचा क्या कि उबास किस वजह से है?"

"किसी भी एक तरह के चलनेवाले सिलसिले में उबास तो आयेगी ही पर सिलसिले के वगैर भी तो नही चलता।"

"मतलब कोल्हू के वैल को कोल्हू के इर्द-गिर्द चक्कर खाने की आदत पड़ जाती है, वह फिर उसी में रस लेने लगता है।"

"यह तो हर चीज का खराव पक्ष ही देखने-जैसा हुआ। जीवन का इतना कुछ मिलता भी तो है इससे'''जैसे नौकरी से काम करने का सन्तोष, परिवार से देने-लेने का सुख।"

"तो फिर एक प्यास क्यों रही आती है जीवन मे?"

उसने अपना मुँह सामने रखे पानी के गिलास में डाल दिया, वडी-वड़ी आँखें सामने मेरी तरफ। जवाब था क्या उसके पास'''कुछ छटपटाहट तो है'''क्या देखने-महसूसने की, क्या कर गुजरने को'''क्या होने की? कुछ पल वैसे ही बैठी रही गिलास के इर्द-गिर्द, फिर उठकर खिड़की पर चली गयी।

खिड़की के वाहर हवा थी—सर्दी-गर्मी के वीच की। न इतनी तेज कि उड़ा ले जाये और न इतनी धीमी ही कि महसूस न हो। टूटते पत्ते हवा मे हिचकोलियाँ खाते हुए चले आते और अपने दरख्त से काफी दूर जाकर गिरते'''वहाँ से भी कलपइयाँ खाते हुए पता नही कहाँ पहुँचते थे। वरावरी से भीतर कुछ कलपता था'''पता नही क्या, क्यो'''वदलाव की लोटों में ऊपर-नीचे होता था मन।

पगडण्डियाँ

"हलो···ओऽऽऽ"

खिचती हुई 'ओ' फोन पर, सवालिया पर सुरीली, कुछ-कुछ सगीतात्मक··· सुवर्णा।

"क्या कर रहे हैं?"

"क्यों?"

"उस दिन आप यो ही बैठकर चले गये, अच्छा नही लगा।"

पिछली बार उसके दफ्तर की तरफ जाना हुआ था तो उसके कमरे में भी झांका था। कोई नही था। फिर भी थोड़ी देर बैठा, आखिर एक पर्चा मेज की दराज मे डालकर चला आया था—एक पक्ति मे सूचना कि मैं आया और कुछ देर उसका इन्तजार किया।

"हां, सोचा था ··अब कब मिलेंगी?"

"जब आप कहें।"

"आज ही, अभी?"

कुछ पलो के लिए उधर चुप्पी का रेंगना, फिर हल्की, भरे-भरे बादलो के चलने की तरह कांपती-सी आवाज ···"कहां?"

"यही आ जाइए, आज मेरी तरफ।"

उसे इतना दूर बुलाने, तकलीफ देने का ख्याल एकदम नही था···लेकिन वैसा हो गया। उसने फौरन मान भी लिया जैसे कि उस दिन मेरे इन्तजार करने का प्रतिकार करना चाहती हो ··जबकि दोष उसका कहां था!

लाल साड़ी, लाल ब्लाउज। साड़ी मे जहां-तहां काली चिन्दियां। लाल कपड़ो मे चेहरा और भी उजला हो आया था। मुस्कुराहट मे झुकती आंखें। अल्हड़ बाल, रूखे-रूखे·· हवा मे उड़ते हुए।

"पानी पिऊंगी।" कमरे मे घुसते ही हांफते-हांफते उसने कहा, "पहुंचने मे ही इतना वक्त लग गया···फिर ये लोग ··कैसे घूर-घूरकर देखते हैं···उफ!"

उसके पीछे किवाड़ अपने-आप बन्द हो गया···डोर क्लोजर। मैंने पानी का एक गिलास उसके सामने रखा। उसने पानी के दो बड़े-बड़े घूंट लिये और फिर गिलास को मेज पर घुमाने का खेल खेलने लग गयी।

मैं ग्लानि से भर आया था। भीड़-भाड़वाला अपना दफ्तर! खुद ही चला जाता उसके पास···पर वह जल्दी ही सबकुछ एक तरफ सरकाकर बाहर निकल आयी। वह मुझसे मिलने आयी थी तो लोग क्यों बीच में टँगे रहे, लेकिन मैं था कि उन्ही मे हिलगा हुआ था।

"यह जो लोगों का इस तरह घूरना है न, इसके पीछे उनकी दबी हुई यौन-कुण्ठाएँ तो हैं ही"—मैंने कहा—"शायद भारतीय ही इस क़दर घूरते है···पर मेरे खयाल में इससे भी ज्यादा यह सब उस उबास की वजह से है जो हम सभी किसी-न-किसी मात्रा मे ढोते है।"

"उबास तो भारत के बाहर योरुप मे भी है, और भी ज्यादा।"

"पर वहाँ उसका समाधान लोग सेक्स में नही ढूंढते। सेक्स से भी ऊब चुके हैं वे, जबकि यहाँ वह अब भी खासी आकर्षण की चीज है।"

"जी नही, यह शुद्ध बदतमीजी है' और कुछ नही। उबास है तो उससे निपटने के और भी तरीके हो सकते हैं, या कि किसी को इस तरह परेशान किया जाय।

"लेकिन आपने कभी सोचा क्या कि उबास किस वजह से है?"

"किसी भी एक तरह के चलनेवाले सिलसिले मे उबास तो आयेगी ही पर सिलसिले के बगैर भी तो नही चलता।"

"मतलब कोल्हू के बैल को कोल्हू के इर्द-गिर्द चक्कर खाने की आदत पड़ जाती है, वह फिर उसी मे रस लेने लगता है।"

"यह तो हर चीज का खराब पक्ष ही देखने-जैसा हुआ। जीवन का इतना कुछ मिलता भी तो है इससे···जैसे नौकरी से काम करने का सन्तोष, परिवार से देने-लेने का सुख।"

"तो फिर एक प्यास क्यो रही आती है जीवन मे?"

उसने अपना मुंह सामने रखे पानी के गिलास में डाल दिया, बड़ी-बड़ी आँखें सामने मेरी तरफ। जवाब था क्या उसके पास···कुछ छटपटाहट तो है···क्या देखने-महसूसने की, क्या कर गुजरने की·· क्या होने की? कुछ पल वैसे ही बैठी रही गिलास के इर्द-गिर्द, फिर उठकर खिड़की पर चली गयी।

खिड़की के बाहर हवा थी—सर्दी-गर्मी के बीच की। न इतनी तेज कि उडा ले जाये और न इतनी धीमी ही कि महसूस न हो। टूटते पत्ते हवा मे हिचकोलियाँ खाते हुए चले आते और अपने दरख्त से काफी दूर जाकर गिरते···वहाँ से भी कलपट्याँ खाते हुए पता नही कहाँ पहुँचते थे। बराबरी से भीतर कुछ कलपता था···पता नही क्या, क्यो···बदलाव की लोटो मे ऊपर-नीचे होता था मन।

जैसे बाहर की हवा हमारे भीतर उतरकर रेंग रही हो···हर रेंग में खुनक-भरी चुभन।

"आप अपने जीवन से सुखी हैं ?" कौफी बनाते हुए मैंने पूछा।

"आपको क्या लगता है ?"

"मुझे तो लगता है कि हैं।"

"तो हूँगी ही।" वह लौटी, अपनी जगह।

"नही, मतलब···"

"देखिए बड़ा मुश्किल होता है, इस पर निर्भर करता है कि आप सुख से क्या समझते है। मेरे पास एक अच्छी-खासी नौकरी है, पारिवारिक जीवन सुखी है, माँ-बाप, सास-ससुर सब अच्छे हैं···"

"आप भाग्यवान हैं !"

"अच्छा···" वह हँसी, "लेकिन आप कहाँ के अभागे हैं···जरा सुनूँ ?"

"नही, कुछ नही···कोई उस किस्म का दुर्भाग्य नही है। होता तो यह सब सोचने की फुर्सत ही न होती। शायद हमारी नियति ही हर हालत मे अपूर्ण रहने मे है। या तो आदमी रोजी-रोटी के चक्कर मे होगा, पैसेवाला हुआ तो इस बीमारी या उस बीमारी का शिकार होगा, अपने-जैसा बीच का हुआ—थोड़ा सोचने-समझने-वाला तो फिर सवालो के इर्द-गिर्द अशान्त मन लिये डोलता रहेगा···किसी भी तरह सुखी नहीं होगा। कहते हैं सन्तोष होना चाहिए···तो यह तो यही है कि यह मानकर चलिए कि सब ठीक-ठाक है, कुछ करने की जरूरत नही।"

"ऐसा ही मानकर चलें तो खराबी क्या है ?"

"खराबी क्या है, और एक दूसरे सन्दर्भ मे रामकृष्ण परमहंस ने कहा भी था—तुम दुनिया का न सोचो, क्योंकि वह तुमने नही बनायी···आप कहती हैं कि अपना भी न सोचो···"

"आप सोचते कुछ ज्यादा हैं, कौफ़ी पीजिए !"

कहते हुए वह हँसी · थोड़ी दूर तक वह हँसी खुनखुनाती चली गयी, हम दोनों ही झुनझुने के दो छोरों से बजते हुए···एकदम हल्के-फुल्के हो आये उस क्षण। आस-पास का सबकुछ साफ-सुथरा, कुछ-कुछ उजला-सा निकल आया था, जैसे वहां और कुछ नहीं, एक खुनकती हुई हँसी-भर थी · हम दोनो उसी मे जज्ब, उसका ही कोई हिस्सा।

कभी-कभी अनन्त वाकई बेकार ही कुरेदता है। अब अगर यही पूछने लगे कि मैं यहाँ क्यो आयी·· अरे, मन किया तो चली आयी या अनन्त ने कहा और उसने मान लिया···बात यहीं खत्म हो जाना चाहिए। दरअसल यह कोई सवाल ही नहीं बनना चाहिए···पर अनन्त ऐसा कुछ कुरेद देगा और वह कुरेद कुछ नोक-सी सुवर्णा के भीतर भी उठा देती है, जैसे सुई से उंगली में फँसे बहुत ही बारीक काँटे

को आखिर टटोल लिया जाय···

उसकी हँसी से बाहर निकलकर मैं एक और बात से हिलग गया। वह एक बिन्दु पर पहुँचकर किस मजे से बातों की धार को तोड़कर रख देती है कि वे साबुन के बुलबुलों की तरह हवा में ही फट्ट हो जायें, जैसे इससे ज्यादा उनकी कोई अहमियत ही न हो।

"आप जो सामने है, उसी में विश्वास करती हैं शायद।"

"विश्वास करें या न करें, हमारा कर्म तो उसी से तय होता है।"

"तो विश्वास?"

"जब करना उसी के अनुसार है तो बेहतर यही है कि वैसे ही विश्वास रखे जायें, वर्ना तो हम अपनी नजर में ही ढोंगी निकलेंगे।"

"या कोई विश्वास ही न रखे जायें···"

"उसमें भी क्या बुराई है।"

मैं चौंका! ऐसा कैसे हो सकता है? हम चाहें या नहीं, हमारे कुछ विश्वास बन बैठते हैं···हमारी मान्यताएँ, मूल्य···गलत या सही। वह ऐसे दिखाती है जैसे कि कुछ सोचती नहीं जबकि उसकी बातें बिल्कुल उलटी तरफ का इशारा करती हैं।

"अच्छा एक बात बताइए—इस समय हम क्या कर रहे हैं?"

"कॉफ़ी पी रहे हैं।"

"बस···?"

"साथ-साथ कुछ बातें कर रहे हैं।"

"और···?"

"और क्या···?"

"नहीं, कुछ सोच भी रहे हैं, बातों के साथ कभी उनके पार, उनसे एकदम कटी हुई चीज···देखिए कितनी पर्तें हैं—कॉफ़ी, बातें···फिर किस चीज पर बातें, सोचना और क्या सोचना। आप इन सबमें कॉफ़ी पीने-भर को मानने को कहती हैं जबकि महत्त्व की दृष्टि से वह सबसे पीछे आती है।"

उसने बात आगे नहीं बढ़ायी। मेज पर एक तरफ रखी पत्रिका को उठाकर उलटने-पलटने लगी। मैं थोड़ा बेचैन हो आया···वह इतनी दूर आयी और उसे बेकार ही गम्भीर-गम्भीर बातों में उलझा दिया। प्रभाव डालने की कुरेद मुझे तेज दौड़ा गयी थी, वर्ना मैं ही हमेशा ऐसी बातें करता हूँ क्या···दिखाना चाहता था उसे कि मैं बड़ा चिन्तक हूँ!

"बोर कर दिया आपको!"

"अरे···" वह चौंकी· "नहीं तो···"

"आप थक जाती हैं बातों से। सचमुच बातें—कैसी भी—थोड़ा पहले या बाद

में बेकार लगने लगती हैं।"

"नहीं, उनके महत्त्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। बातों के मार्फत ही तो हम एक-दूसरे के जीवन में हिस्सा ले सकते हैं।"

"सिर्फ बातों से ही नहीं···दूसरे तरीकों से हिस्सेदारी अच्छी होती है, बातों से तो सतही रह जाती है अक्सर···"

"आपके यहाँ कौन-कौन-सी पत्रिकाएँ आती हैं?"

हम दूसरी तरफ सरक गये। पत्रिकाओं के नाम, दफ्तर के ब्यौरे और अपने घरों में रखी किताबों की सूचनाओं का आदान-प्रदान चल पड़ा, साथ-साथ हर चीज पर अपनी-अपनी टिप्पणी भी।

उन बातों पर से गुजरते हुए भी मेरे भीतर एक चहक लगातार बज रही थी, जो उसके आते ही भीतर कहीं उग आयी थी। मुझे लगा कि पत्तों की बात करते हुए सबसे महत्त्वपूर्ण चीज को तो मैं गिनना ही भूल गया था। कॉफी, बातें, बातों के पीछे का सोच, बातों से असम्बद्ध सोच, अस्फुट-सा···पर हम इन सबसे परे थे। हममें कुछ हो भी रहा था और वही असल था।

"जाऊँगी···देर हो गयी।" उसने खुद को बटोरते हुए कहा।

कहने का स्वर कही हुई बात को काटता चला गया···पर फिर स्वर को भी काटती हुई वह उठ खड़ी हुई· खिलाफ-दर-खिलाफ!

"इतनी जल्दी?"

"अच्छा···जल्दी? पूरा एक घण्टा हो गया।"

"तो एक घण्टा ही तो···"

"अच्छा जनाब! यह कुछ नहीं होता क्या?"

"एक घण्टा इतनी जल्दी बीत गया, पता ही न चला।"

"मुझे भी नहीं।"

उसने पर्स उठा लिया था, पर वैसी ही खड़ी थी, अपनी जगह। मैं उठकर उसकी ही तरफ पहुँच गया उसे नीचे तक छोड़ आऊँगा। उसकी बराबरी से, एक-दम बगल में पहली बार खड़ा हुआ तो मेरा जीव जैसे पिघलकर बहने लगा··· उसकी तरफ। जो-जो भी कुछ मेरे 'मैं' नाम की चीज में था, वह जैसे टप-टप करके गिर रहा था, मोम के धब्बों की तरह। अब मैं नहीं मेरी जगह हवा का एक गुच्छा था। मेरा सिर उसके कन्धे पर सरक गया था।

गहराई! गर्दन और कन्धे के बीच वह गोरी गहराई···थमी···थमती हुई, मुझे सँभालती हुई! वहीं सैकड़ों कटे-छँटे तत्त्व मिलकर फिर मेरा जीव बन गये···पूरा जीव। गमकती हुई गरमाहट में आकार ग्रहण करता जीव, गर्भाशय में बच्चे में जान कुछ-कुछ इसी तरह आती होगी।

मरना-जीना एक साथ, इतनी जल्दी-जल्दी···बेत मोंटा सी सुगन्ध-ही-सुगन्ध।

वह निश्चेष्ट खड़ी थी'''अब भी, और मैं कहाँ-कहाँ डूब-उतरा आया था इस बीच, या क्या पता उसमें भी कुछ हुआ हो या हो रहा हो। मैंने सिर उठाया तो शान्ति में नम अपनी आँखें थी'''उपकृत। सामने वह निर्विकार, योगी!

क्षण-भर के लिए और रुकी वह, फिर आगे बढ़ी और अपने लिए दरवाजा खोल लिया। अब वह आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे, बाहर के शोरगुल के बीच लकीर-सी खींचती जाती हमारे कदमों की आवाज।

मैंने उसके लिए कार का दरवाजा खोला, वह बैठ गयी तो बन्द किया।

"बहुत अच्छा लगा, आप आयी आज "

उसकी आँखें एक महीन मुस्कुराहट में मुँदी एक बार। चेहरा खिले हल्के लाल कमल-सा, पानी की हिलोरों में फड़फड़ाता हुआ ''वह क्षण जब खूबसूरती स्वयं को लाँघ जाती है।

वह मेरी तरफ देख रही थी, मेरा वजूद उन सुन्दर आँखों मे उतर रहा था, जैसे किश्ती झील मे सरकती है ''आहिस्ता ''आहिस्ता'''

कोई दस्तक दे रहा है।

लोग उसे देखना चाहते हैं। वह कही थम जाये तो साथ चलना चाहते हैं। थोड़ा साथ चलो तो वे कुछ कहना चाहते हैं। सुनो, तो फिर वे दस्तक देने लगते हैं' खट'''खट'''खट'''खट'''

दफ्तर में वह सबसे मिलती है। कुछ से घुल-मिलकर बातें भी करती है। ऐसी कोई गाँठ नही पालना चाहती कि वह औरत है तो यह नही, वह नही। जब उसे नौकरी दी गयी तो यह तो नही सोचा गया था कि वह सजी-सँवरी बैठी रहेगी, सिकुड़ी-सिकुड़ी। अगर आदमी लोग खूब खुलकर बातें कर सकते हैं तो वह क्यों नही? कोई गलत समझता है तो समझा करे। दिक्कत वहाँ पैदा होनी है जब लोग खटखटाने लगते हैं'''

बचपन से ही उसे हर चीज आसानी से मिलती रही है। दो लड़कों के बाद माँ-बाप की इकलौती लड़की ''प्यार-ही-प्यार। शहर मे बड़ा घर, नौकर-चाकर। कार से स्कूल, स्कूल से घर। फ्राक के साथ-साथ उचकते बॉब-हेयर!

'जिंगिल बैल्स, जिंगिल बैल्स, जिंगिल आल दे वे
ओ व्हाट फन इट इज टु राइड इन ए वन होर्स ओपिन स्ले'

जरा आँख में आँसू आ जाते तो माँ-बाप सिखाते—'डोण्ट बी सैन्टीमैण्टल माय डियर, रीजन इट आउट'। विज्ञान की छात्रा बनने से पहले ही वह अक्ल और तर्क से काम लेना सीख गयी थी। आदमी जो चाहे हासिल कर सकता है। उसकी सबसे बड़ी ताकत अक्ल है'' जिसकी मदद से वह अपनी कमजोरियों के ऊपर उठ सकता है,

उन्हें ताकत में बदल सकता है, फायदा उठा सकता है। रोना बेवकूफी है, अक्ल की मदद से हमेशा खुश रहा जा सकता है···और तरक्की···वह तो सिर्फ अक्ल के रास्ते ही हासिल की जा सकती है।

कॉलेज में पहुँची तब भी घूम-फिरकर वही। सभी की नजरें उस पर। हर लड़का प्यार देने के लिए आतुर। वह जिस तरफ ही ज़रा-सा झुकती, वही कृतज्ञ हो जाता···बचकर निकल जाने की भी कला उसे आ गयी थी इस बीच। *सुन्दरता शायद अपने-आप सिखा देती है*···पर उससे भी आगे अंग्रेजी उपन्यासों ने मदद की होशियार बनाने में—'रिबैका', 'गौन विद द विण्ड'···और न जाने कितने उपन्यास। कैसे लड़कियाँ अक्ल के रास्ते चलकर अपनी सुन्दरता की ताकत चौगुना कर सकती हैं—प्यार करते हुए भी उसके ऊपर, पानी के नीचे सिर गया तो डूबे···

रमेश नसी के कॉलेज में था। एक सीधा-सादा, शर्मीला लड़का, सबसे दूर-दूर। उसने कभी ठीक से रमेश की तरफ देखा भी नहीं। चार-पाँच बरस बाद, एकाएक रमेश के घर से ही विवाह का प्रस्ताव आया। माँ-बाप ने उससे पूछा और उसने हाँ कर दी। कोई कमी नहीं दिखी उधर—घर ठीक-ठाक, रमेश पढ़ा-लिखा, चरित्रवान। एक अच्छी-खासी नौकरी भी पा चुका था इस बीच। सास-ससुर के यहाँ रुपये-पैसे भी···न ज्यादा, न कम, थोड़ी-बहुत जमीन-जायदाद भी। मना करने की कोई वजह ही नहीं दिखायी दी। वह किसी खास जगह करना चाहती थी—ऐसा कुछ भी नहीं था। बस···हो गया, वैसी ही आसानी से जैसे उसके साथ और भी कितनी ही चीजें हो जाती हैं।

कोई फिर खटखटा रहा है···

अनन्त···जाने किस खोज में बेचैन आँखें, गहरी उदास। हर पल कशमकश में टूटता हुआ···अनायास ही उसके कन्धे पर आ गिरा···जैसे डगाल से कोई फूल धप्प-से नीचे आ टपके आपके आँचल में। कन्धे पर किसी बेहद जीवित चीज के आ जुड़ने की सिहरन रेंग रही थी। कन्फ्यूजन···जैसे वह किसी दूसरे का सिर नहीं उसका अपना ही कोई हिस्सा था जो उसके अपने ही किसी 'गैप' को भरने चला आया था। अनन्त की आँखों की उदासी अक्सर अपनी-अपनी-सी लगती है, जबकि उदासी उसे एकदम पसन्द नहीं। वह तो हमेशा खुश रहना चाहती है···

फोन पर रंगीन नाखून।

"कैसे हैं?"

"ठीक! आप?"

"क्या कर रहे हैं?"

"बस···"

"आइयेगा···मैं यहीं हूँ?"

सिल्क की साड़ी-ब्लाउज, बादामी रंग के। पर्ने-पर्ने बाल·····हमेशा, हल्के होंठों

से इधर-उधर उड़-उड जाते हुए। मुझे देखते ही होंठ बारीक मुस्कान में थोड़ा फैल गये। हल्की लिपस्टिक।

"कैसे याद आ गयी अचानक ?"

"यो ही, मन किया···"

आँखो में उठते-गिरते तूफान। एक अपनी ही तरह की अस्तव्यस्तता वहाँ से निकलकर चेहरे पर बिछती थी, फिर शरीर में भी फैलती चली आती। शरीर में उठती हल्की-हल्की हिलोरें, कांपते रूखे बालो की तरह ही।

चाय के प्याले मे चम्मच को हिलाती उंगलियाँ···पतली-पतली उँगलियो की लम्बाई नाखूनो में और भी तनती हुई। दोनो हाथो की एक-एक उँगली मे अँगूठियाँ। एक मे मोती जड़ा हुआ, दूसरे मे डायमण्ड···मोती गोल, डायमण्ड आयताकार।

मोती की अँगूठी पास से देखने के बहाने मैंने हथेली अपनी तरफ ले ली, अपने दोनों हाथों मे। कमल की पखुडी को छूने-जैसा···फरफराहट मेरी गद्दियो को झुलसाती हुई। जल्दी ही उसने हाथ खीच लिया।

"मुझे मोती अच्छे लगते हैं, डायमण्ड से ज्यादा···" उसने कहा।

"आप पर फबते भी हैं।"

"पता नहीं।"

क्या यह महज़ इत्तफाक था कि मेरे हाथो में उसका मोती की अँगूठीवाला हाथ ही आया···मोती जो उसे ज्यादा पसन्द थे ?

"सोना भी तो खूब पहनती हैं आप।"

"हाँ···पर कोई खास नही।"

"वैसे अंग्रेजी स्कूलो में पढी लडकियो की रुचि गहनों में होती नही।"

"कोई जरूरी नही कि जो बात सबके साथ हो, वह मेरे साथ भी हो।"

मेरा अनुभव दूसरा था। एक दिन मेरे आगे कॉन्वेण्ट की कुछ लड़कियाँ चली जा रही थी, दस-बारह साल के आसपास की। सबकी बातचीत, भाषा, टोन, बोलने की लचक ठीक दूसरे-जैसी···इतनी कि यह फर्क करना मुश्किल था कि कौन बोल रही थी। मुझे अजीब लगा—यह शिक्षा हमे किस कदर एक-से साँचे में ढालती जाती है। बच्चो की वैयक्तीयता को उभारने की बजाय कैसे दबाती है! उनके हाव-भाव एकदम एक-से, कोई किसी से मिले तो हाय, बिछुड़े तो बाय। सब आदमी अंकल, सब औरतें आण्टी। पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका के बीच भी वही शब्द···हाय···बाय !

सुवर्णा अपनी कलाई पर पड़ी सोने की चूड़ियो को घुमाने मे लगी थी। उंगलियाँ घूम-फिरकर उसी चूड़ी को पकड लेतीं, जिसमें मोती जडे हुए थे। सोना और मोतियो मे खेलते हुए भी तब वह उनसे बहुत दूर थी। मुझे बुलाया था और जब मैं आ

गया तो जैसे मेरी उपस्थिति में भी कोई दिलचस्पी नहीं बची थी उसकी। पहले कभी उसे इस तरह नहीं देखा था 'खोई-खोई, बातों में जहाँ कहीं अटकने लग जाती, मैं कुछ पूछता तो चुप रह जाती'''इस बीच मेरा सवाल ही भूल गयी होती। अक्सर कुर्सी में नीचे और नीचे धँसती चली जाती'' जैसे अँगड़ाई लेने का मन हो और न ले पा रही हो।

"क्या हम किसी शाम बाहर नहीं मिल सकते ?" मैंने पूछा।

"कब ?"

"कभी भी।"

"तब पूछकर देखियेगा।"

"आप मना करेंगी ?"

"हो सकता है, तब पूछकर देखियेगा।"

"कल सोच रहा था कि आपकी तरफ सीधे क्यों नहीं देख पाता।"

"क्यों, मैं इतनी भयानक हूँ क्या ?"

"नहीं, मतलब सीधा आपकी आँखों में।"

"क्यों, इसमें क्या है' लीजिए देखिए। चौंध लगती हो तो चश्मा लगा लीजिए। मैं तो लगाती हूँ।"

"आपको भी क्या चौंध लगती है ?"

"सूरज की तो लगती ही है।"

"एक बात और—मैं अपने हमउम्र लोगों के साथ दूसरी मुलाकात में ही आपसे तुम पर उतर आता हूँ लेकिन आपके साथ ''शायद आपसे कुछ डर लगता है।"

"अरे'''क्यों'''?"

"पता नहीं।"

"हाँ'''मैं कभी बहुत नैस्टी भी हो सकती हूँ, पर मुझसे डरा न करिए।"

"अगर मैं कभी आपसे तुम पर उतर आऊँ ?"

"उतरकर देखिए।"

"यों कोशिश करके नहीं'''मतलब कुछ शब्द बड़े स्वाभाविक ढंग से कभी उग आते हैं हमारे बीच'''तभी।"

"वैसे, आप भी अच्छा शब्द है'''है न ?"

वह हमेशा की तरह उचकती हुई, उत्साह से भरी हुई नहीं थी। एक भारीपन था, जैसे पिछली रात पूरी नींद न सो पायी हो। कहीं कुछ बिखरा-बिखरा था''' अस्त-व्यस्त'''जैसे पानी बाँध तोड़ने के लिए सहलहाता हो—किधर भी शूनक-कर निकल जाने को बेचैन, पर हर बार इधर-उधर टकराकर लौट-लौट आता हो'''चक्करों में।

"चलना चाहिए···"। मैं उठा।

वह अनमनी-सी हो आयी। शरीर थोड़ा बैठे-बैठे ही हिल गया···किनारे पर बँधी नाव के पानी में उतरने का पहला कम्पन। आँखो मे लाल-लाल डोरे तिरने लगे थे···गुलाबों की पिसी हुई लाली जैसे उनमे गुलाल की तरह उड़ रही थी या फिर पन-छीटों से छरछराती आँखें थी वे···रक्तिम।

वह कुछ नही बोली, शायद कुछ नही सूझा था। मुझे दरवाजे की तरफ जाते हुए देखती रही। मैं दरवाजे तक पहुँचा, पलटकर उसे देखा तो फिर वापस खिंचता चला आया। मेज पर उसकी एक बाँह फैली थी—गोरी'' भरी-भरी बाँह, मुट्ठी मे स्वयं को कसती, तोड़ती हुई। मेरा हाथ उस बन्द मुट्ठी पर जा गिरा।

"जाने का मन तो नही करता···"

उसकी बन्द मुट्ठी खुली, मेरी हथेली उसमें तैर गयी। फड़फडाते दो पत्ते, एक-दूसरे को छूकर और भी फड़फड़ाते। हथेलियो के कटोरों मे उतराते दो जीव।

मेरी उँगलियाँ धीरे-धीरे छोड़ते हुए भी उसने आखिरी उँगली को अपनी तरफ खीचा, खीचकर फिर छोड़ दिया।

हम कही बाहर मिलें···मेरी यह माँग कब की थी। जब-तब उसके सामने मैं ऐसे या वैसे दोहरा देता था। उसके साथ दफ्तरी माहौल के बाहर होने का मन था। एक दिन जब मेरा आग्रह कुछ ज्यादा ही दिखा तो वह तैयार हो गयी। कहाँ चलें··· काफी देर हम यही सोचते रहे। एकाएक वह उचक पड़ी—'चलो, चिड़ियाघर चलते हैं।'

दिन फैलने लगे थे। पाँच-दस दिन और कि जाड़ा बहुत पीछे छूट चुका होगा। धूप मे चिलचिलाहट आती जा रही थी। पशु-पक्षियों में छाँह के लिए अकुलाहट साफ दिखायी देती थी। चिड़ियाघर के अन्दर आते ही सुवर्णा ने धूप का चश्मा लगा लिया था, कुछ गौर से देखने के लिए उतार लेती थी।

"यहाँ एक छोटी रेलगाड़ी चलायी गयी थी। गाड़ी पर चिड़ियाघर का चक्कर लगाना···यह शौक लोगो को खूब खीचता था। भीड़ बढ़ गयी ''लेकिन चिड़ियों की सख्या घटने लगी। रेल की आवाज से वे बिचक जाती थी ''आखिर रेल को बन्द करना पड़ा।"

किस्सा सुनकर उसे थोड़ा-सा ताज्जुब हुआ। "किले की दीवार यहाँ कितना अच्छा बैकग्राउण्ड बनाती है···" उसने कहा।

हम चल रहे थे···बातें करते हुए।

"वह देखो, झरोखे से एक आदमी झाँक रहा है।" मैंने ऊपर किले की तरफ इशारा किया।

"कहाँ···वह···उधर ? हटो, वह तो कपड़ा है।"

"नहीं, आदमी है।"

वह रुक गयी, टकटकी लगाये उसी तरफ देखती रही। थोड़ी देर में कपड़े-जैसी वह चीज हिली।

"हाँ, आदमी ही है···हिलता-डुलता तो था ही नहीं, आदमी कैसे लगता।"

"किले की भीतरी दीवार से सटे हुए कई कमरे बना दिये गये हैं, कई लोग रहते हैं उनमें।"

"अच्छा···? वैसे यह ठीक है, इमारतों का इस्तेमाल हो जाता है। रहने की इतनी किल्लत है इस शहर में···चलो, इधर से चलते हैं।"

हम उधर चल पड़े। सुवर्णा खूब उत्साह में थी। हर चीज को गौर करना और उस पर कोई-न-कोई टिप्पणी। मैं बाहर की चीजों को देखने से ज्यादा उसे देख रहा था। ताजी-ताजी गर्मी से उसका रंग सुर्ख हो आया था। धूप से बचने के लिए जब वह साड़ी का पल्लू सिर पर ले लेती तो उसके खूबसूरत नाक-नक्श जैसे किसी चौखटे में सिमट आते, वह और भी खूबसूरत दिखती।

सामने आइसक्रीम का ठेला दिखायी दिया।

"चलो, आइसक्रीम खायेंगे···ऑरेन्जबार।"

वह कितना आसानी से बच्ची हो जाती है, जब चाहे तभी ही···या कि है ही बच्ची। ऑरेन्जबार चाटते हुए हम लोग आगे बढ़ने लगे···मुँह लाल-लाल। मुझे तो मुद्दत हुई थी ऑरेन्जबार खाये, जबकि बचपन में तो आइसक्रीम के नाम पर ऐसी ही कोई चीज जानते थे।

"आओ, दौड़ लगायें···" जल्दी ही उसने दूसरा प्रस्ताव रखा।

हम दौड़ने लगे, आइसक्रीम चाटते हुए। हाँफ जाते तो रुक जाते, धीरे चलने लगते। खूब पैदल चले। जो रास्ते बहुत ही कम चले हुए दिखते वह उसी पर चलने को कहती। ऊपर चढ़ाई दिखती तो दौड़ती हुई चढ़ती। एक चटपरे की तरफ का रास्ता ऊबड़खाबड़ था। वह उस तरफ बढ़ गयी। सामने तार का जाल तानकर चिड़ियों के लिए एक घेरा-सा खड़ा किया गया था। हल्की चढ़ाई के पार जहाँ उतार शुरू होता था वहीं जाल के खूँटे गाड़े गये थे···नीचे गड्ढे-जैसा एक छोटा मैदान जाल से घिरा हुआ।

खूँटों के पास खड़े होकर वह नीचे बिछे जाल को देखने लगी। धूप से बचने के लिए उसने सिर ढक लिया था। उसके ठीक पीछे मैं था···उसे करीब-करीब छूता हुआ। खूबसूरती की गन्ध···झोंके नथुनों को भिगो रहे थे···सबकुछ भरा-भरा-सा हो आया था।

जाल के नीचेवाला छोटा मैदान खाली था, सिर्फ जहाँ-तहाँ उगी घास थी। कोने की छाँह में आखिर एक मोर नजर आया···अकेला और उदास।

"सुन्दर चिड़ियों के लिए होगा।" मैंने पीछे से कहा।

"क्यों लगाते हैं जाल वे ?"

"इसलिए कि भाग न जायें।"

"फिर सब चिड़ियों पर जाल क्यों नहीं लगाते ?"

"छोटी चिड़ियाँ तो खुलकर निकल ही जायेंगी···"

"क्यों, वैसा जाल भी बनाया जा सकता है···पर देखो, चिड़ियाघर में कितनी सारी छोटी-छोटी चिड़िएँ भी हैं, वे कैद नहीं हैं, मतलब, दूसरे तरीकों से भी उन्हें एक जगह रखा जा सकता है···"

"सुन्दर चिड़ियाँ ज्यादा कीमती होती हैं···इसलिए उन्हें बचाकर रखना पड़ता है।"

वह सामने देखने लगी। चिड़ियों को कैद में रखने की बात अच्छी नहीं लग रही थी उसे।

"यहीं-कहीं खूब सारी रंग-बिरंगी चिड़ियाँ हैं। इंग्लैण्ड में कार्डिफ के पास मैंने एक जगह बहुत ही सुन्दर बतखें देखी थीं···लाल, पीली, नीली चोंचोंवाली। कुछ-कुछ वैसी यहाँ भी हैं।" मैंने कुछ उत्साह में कहा।

"हाँ···? चलो, देखेंगे उन्हें···"

वह मीठी-सी जिद करते हुए मुड़ी, मुझसे टकराते-टकराते बची। रंगों की तलाश में हम फिर दूसरी तरफ चल पड़े। रास्ते में बन्दरों का इलाका पड़ा। उसे बन्दरों से नफरत थी···

"जाने कैसे देखते हैं और बेकार की हू-हू करते रहते हैं···" वह कह रही थी।

"हमारे पूर्वज हैं!"

"तभी तो आदमी भी···चीता कितना एलीगैण्ट होता है!"

"एलीगैण्ट कि चालाक···किस चालाकी से शिकार पर झपटता है।"

"वह तो सिर्फ शिकार की स्टाइल है। अपने-आपमें वह हमेशा एलीगैण्ट दिखता है। तुम्हें दिखाऊँगी।"

पानी पर तैरती तरह-तरह की बतखें···रंग-बिरंगी, कोई एकदम सफेद, कोई मिले-जुले रंगवाली। कुछ पानी के किनारे अलसायी-सी कुछ दरख्तों पर डैने फड़फड़ाती हुई। अब उसे अच्छा लग रहा था, कुछ देर पहले चेहरे पर जो एक मलिनता आ बिछी थी वह घुल गयी थी।

"कितने सारे रंग···सभी सुन्दर···एक-से-एक···लेकिन सफेद के आगे सब फीके दिखते हैं।" बतखों को देखते हुए मैंने कहा।

"मुझे तो ऐसा नहीं लगता···यह देखो पीला···लाल···और यह काला भी···हर रंग की अपनी कशिश है।"

"ये मुझे नकली लगते हैं। सफेद बड़ा है क्योंकि वह सबको पचा सकता है, मन

में विशुद्धता का भाव जगाता है···सादगी, कुछ-कुछ वैसी सुन्दरता जैसी हममें तब दिखायी देती है, जब हम बगैर कुछ ओढ़े, बिना किसी बनावटीपन के पूरी विनम्रता के साथ अपनी असलियत में खड़े होते हैं।"

मैंने बात को कुछ ज्यादा ही उलझा दिया था···कम-से-कम उसके चेहरे को देखकर तब ऐसा ही लगा।

"दूसरे रंगों में क्या नकली है? सब अपनी-अपनी जगह असली हैं।" उसने कहा।

"सफेद सादा है।"

"सादा···वह तो कोई रंग ही न हुआ। रंग के माने ही हैं गैर-सादा।"

"लेकिन सादा के बगैर हमारा काम चलता नहीं···"

"रंग जरूरी हैं। उनके बगैर क्या होगी यह दुनिया, सोचो। मेरा तो रंगों से जी ही नहीं भरता और कुदरत···हमेशा ही आसपास कोई ऐसा रंग मिल जायेगा जो आपने पहले कहीं नहीं देखा हो···इतने सारे रंग हैं कि पहचान के लिए ही एक जिन्दगी नाकाफी है।"

यह पहली मर्तबा नहीं था, जब वह मुझे बुद्धिमान लगी थी···लेकिन यह पहली बार महसूस हो रहा था कि बुद्धि उसकी सुन्दरता का कितना बड़ा हिस्सा थी।

उधर से हम चीते की तरफ बढ़ गये।

"देखो, किस शान से चलता है। यह है एलीगैन्स। काली पट्टियाँ इसकी खाल पर कितनी सुन्दर लगती हैं।" वह मुझे दिखाने लगी।

मैं उसकी बात मान गया। किसी जानवर को सिर्फ उसके एक काम···वह भी भोजन-जैसे जरूरी काम से ही चालाक मानना ज्यादती थी।

हमारे सामने फैली पड़ी प्रकृति की दुनिया, भले ही थोड़ा सजी-संवरी···उसके बीच इस तरह उचकते-कूदते हम कब से चल रहे थे। वह थक आयी थी।

"तुम्हें काफी पैदल चलना चाहिए।" अपने स्वर की आत्मीयता खुद मुझे चौंका गयी।

"तब से ही तो चल रही हूँ···" सहमाये बच्चे की तरह वह गुनगुनाते हुए बोली, उसे तब गोद में उठा लेने का मन हो आया था।

एक दरख्त के नीचे सीमेण्टवाली बेंच पर हम बैठ गये, उसकी असमिया सिल्क की साड़ी गन्दी हो जायेगी···इसकी उसे रत्ती-भर भी चिन्ता नहीं थी। उसने बताया—वह कभी नाचती थी, अच्छा-खासा सीख लिया था, 'शो' भी कई शहरों में हुए थे। फिर नौकरी और बच्चों की वजह से छूट गया। अब फिर शुरू करेगी··· तभी छोटे-छोटे भुनगे, हजारों की संख्या में, उसकी साड़ी पर रेंगते दिखायी दिये।

"देखो, ये भी तुम्हारे साथ के लिए मचल रहे हैं···" मैंने मजाक किया।

"तो क्या इन्हें भी ले जाऊँ साथ?" वह झुँझलायी और उठकर झाड़ने लगी।

मैं भी उसकी मदद करने लगा।

"चलो, ये बैठने नही देंगे।"

इधर-उधर घास का फैलाव था। जहाँ-तहाँ पेड़ो की छाया मे प्यार करनेवाले जोड़े थे, अपने मे खोये हुए। उनकी छोटी, पर कितनी बड़ी दुनिया!

"जीवन के खूबसूरत क्षण कैसे अपने-आप चले आते हैं, उन्हे मेहनत करके लाना नही पड़ता।" मैंने कहा।

"लाना भी पड़े तो क्या···लाना चाहिए।"

"क्या रमेश को मालूम है कि तुम मेरे साथ यहाँ घूम रही हो?"

"हाँ ··मैंने बताया था उसे!"

"उन्हें ऐतराज नही हुआ?"

"इसमे ऐतराज की क्या बात है? अपना सर्किल तो मैं ही बनाऊँगी, रमेश तो नही···जैसे कि उसके लिए दोस्त मैं नही चुन सकती। रमेश को मालूम है कि मैं तुम्हारे साथ उठती-बैठती हूँ, उसे यह भी बताया था कि तुम मुझे अच्छे लगते हो।"

"तुमने यह कह दिया?"

"तो ·? क्या हुआ, गलत कहा?"

"नही! उसने क्या कहा?"

"कुछ भी नही···वह जानता है, मै इस तरह की हूँ। वह मुझे समझता है।"

हम सड़क के रास्ते की बजाय दरख्तो के नीचे चलते हुए लौटने लगे। हवा मे झूमते पेड़···सरसराती पत्तियाँ···कच्ची जमीन···थोड़ा नम···पैर धँस-धँस जाते थे। एक इमारत बेल से आधा ढकी हुई थी। एक तरफ छोटे-छोटे पेड़ थे जिन पर से होकर बेल ऊपर गयी थी। इमारत और पेड़ों के बीच एक रास्ता तंग पर ढका हुआ और ठण्डा था। वहाँ से गुजरते हुए हम एकाएक थम गये···एक-दूसरे के बहुत पास · उसका सिर मेरे कन्धे को करीब-करीब छूता हुआ, बालो की गन्ध उठकर नथुनों मे···फिर उतरकर मुझे भरती हुई। भीतर कैसा स्निग्ध आलोक···मादक, अलौकिक···भव्य, जैसे हर चीज के बन्ध खुल गये हो और उनसे रोशनियाँ फूट पड़ी हों।

मात्र एक हल्की-सी छुअन, पर कितनी दूर जाती हुई। एक पल···पर कितना बड़ा! जैसे उस छोटे से क्षण मेरे भीतर कोई अनन्त शक्ति उँडेलकर चला गया··· अब मैं मजबूत था···चलते रहने के लिए, रास्ते मे कुछ भी सहने के लिए। जीवन सुन्दर था, तमाम तकलीफों के बावजूद।

3 मार्च, 1977

जीवन-यात्रा क्या सिर्फ एक सड़क पर आगे चलते चले जाना है, सुबह-दोपहर-शाम करते हुए या कि यहाँ पगडण्डियाँ भी हैं'''ऊँचाइयाँ, गहराइयाँ भी। अगर हैं तो महत्त्वपूर्ण क्या हैं? अगर महत्त्वपूर्ण ऊँचाइयाँ-गहराइयाँ हैं तो फिर हम क्यों जाने-अनजाने अपने जीवन का अधिकांश हिस्सा उन चीजों से भरे रखते हैं जो सिर्फ हमें लुढ़काती हैं, सड़क पर सुबह से दोपहर की ओर, दोपहर से'''

जीवन केवल वह है जो दिखता है या कि उसके पार भी सरहदें हैं' वे क्या सिर्फ इसीलिए नहीं हैं कि अदृश्य हैं, अनुभूति के अतिरिक्त उनका कोई प्रमाण नहीं? अन्तरंगता के एक उस क्षण में मुझे इन सरहदों की झलक दिखायी दे गयी। मैं इन्हें छूना चाहता हूँ ''पर शायद सड़क पर ही आगे-आगे बढ़ते हुए यह सम्भव न हो सके। ये वे सरहदें हैं जिन तक चलकर नहीं पहुँचा जा सकता, पर उन तक उठा जा सकता है। लोग कहते हैं कि सबसे महत्त्वपूर्ण मेरा व्यक्ति है, लेकिन किसी का सान्निध्य जो मेरे व्यक्ति को इतना फैलाव दे जाता है कि मैं पार देखने लगूँ'''यह क्या है? और अगर पार की उन सरहदों तक अन्तरंगता में ही उठना है तो मैं कह सकता हूँ कि मुझे किसी की उँगली पकड़कर चलना होगा।

कौन सरहदें हैं ये' 'इनकी पहचान क्या है? जैसे धुन्ध में ढकी हिमालय-श्रेणी की एक चोटी इधर झलक जाती है, दूसरी कोई उधर''। ये सरहदें हर व्यक्ति के अपने लिए उगती होंगी (अगर उगीं तो), वह भी विशेष क्षणों में, फिर दब जाती हैं। ये कैसे उगती हैं? जिन्दगी की वे परतें जो दिखायी नहीं देतीं उन्हें छू सकने के लिए अन्धा होना जरूरी है। आँखें खोले-खोले हम सिर्फ एक कदम आगे पीछे ही देख सकते हैं। अक्सर हम विपरीत भावनाओं का युद्ध-स्थल बने रहते हैं। आँखें मूँदने के सुख' निदास में झूलना भी चाहते हैं और आँखें खोले ''एकदम चौकस भी रहना चाहते हैं। हमें कोई दूसरी दुनिया भी चाहिए, साथ ही हम अपने संसार में चिपटे भी रहना चाहते हैं। पाना चाहते हैं पर खोने से बेहद डरते हैं और इस-लिए शायद अपनी चीजें खोते ही चले जाते हैं, फिर खुद को समझाते हैं कि चीजें जो खोयीं वे अपनी थीं ही नहीं।

जब से उससे मिला हूँ, ज्यादा महसूसने-सोचने लगा हूँ। कितनी तरह के सवाल उठते हैं मन में। एक-से-एक सुन्दर बातें खिलती हैं जैसे किसी ने आकर मुझे खोल दिया है, उत्साह-ही-उत्साह! मुझे लगता है कि मैं अपने बाहर से उखड़ा-उखड़ा नहीं, जुड़ा हूँ, बल्कि बाहर की हर चीज मुझे पूर्णता देने को है ''सबका अभिन्न हिस्सा हूँ मैं। एक व्यक्ति में डूबने लगो तो तुम्हारा संसार सीमित हो जाना चाहिए, पर मेरा संसार तो जितना विस्तृत हो रहा है'''हर चीज, हर व्यक्ति से जोड़ना चाहता हूँ खुद को।

एक दिन मुझे लगा कि अगर यह समझना हो कि जीवन का मर्म क्या है तो

बच्चों को देखो ''कैसे जिन्दगी की रोशनी फूटी चली आती है उनकी आँखों में। हर चीज़ जानने को उत्सुक, हर चीज लेने को आतुर। प्यार से कैसे फौरन बँधते और खुलते हुए'''दुगना प्यार देते हुए। चालाकियाँ भी'''छोटी-छोटी मासूम। कैसे जिन्दगी से सटकर जीते हैं वे'''उससे गरमाहट लेते हुए, उसमें गरमाहट पैदा करते हुए।

क्या मैं पैदा हो रहा हूँ ?

कमल-जाल

ऊँचे-ऊँचे दरख्तों का एक बड़ा कुंज-सा, ऊपर उलझी हुई डगालों से बन्द-बन्द, नीचे इधर-उधर छुटपुट गलियों में खुलता हुआ। उतरती शाम, ढेरों पक्षी रात के बसेरे के लिए यहाँ आते हैं···चिकचिकाते हैं जैसे उनके बीच डाल-डाल के लिए छीना-झपटी, गाली-गलौज चल रही हो। एक जाने किस बेचैनी में एक पेड़ छोड़ दूसरे पर चला जाता है तो पीछे-पीछे झुण्ड-का-झुण्ड चल देता है···डाल नये बोझ से थरथरा उठती है।

एक रात की बात, फिर भी चें···चें···चें···चें···

सुवर्णा चिड़ियों की चिकचिक में खो गयी है—कितनी आपाधापी। कितनी बेचैनी? जो है, सिर्फ वही क्यों नहीं। सामने अनन्त है, उसे बहुत अच्छा लगता है, आजकल कहीं भी बोलने लगती है, उसके बारे में। रमेश से आज फिर कह गयी—'अनन्त से बातें करना बहुत अच्छा लगता है, आज शाम मैं उसके साथ चाय पियूँगी, पार्कवाले सूने रेस्तराँ में।' रमेश का चेहरा कुछ मुर्झा आया था, जलन···लेकिन किसलिए। रमेश को समझना चाहिए कि जो-जो सुवर्णा को अच्छा लगता है वह सब तो रमेश के पास हो नहीं सकता, यह रमेश की कोई कमी भी नहीं। जिन्दगी ऐसी ही है···बस। सुवर्णा क्या अपनी पसन्द को उन्हीं चीज़ों तक सीमित रखे जो रमेश के पास हैं और उन्हीं में खुद को बन्द कर दे···घोटकर रखे? जलन कितनी 'निगेटिव' चीज़ है···सुवर्णा ने पढ़ा है उसके बारे में, अपने पास कभी फटकने नहीं दिया—साफ़ साफ़ ही एक नुकसानदेह चीज़ को पास लेना! दरअसल यह सब पुरानी बकवास है। जब लोगों के पास काफ़ी समय था···तो बैठे हुए हैं, जला रहे हैं खुद को जलन की आग में! आज के आदमी के लिए ऐसी फालतू चीज़ों के लिए समय ही कहाँ है। कितना कुछ घट रहा है हर पल···कितना सारा सामने है···

पर यह क्या है कि अनन्त सामने है और उसे सोम की याद आ रही है···जैसे इन दिनों अनन्त से पहचान, उसे पसन्द करना···फिर उसका साथ···यह सब उसे सोम की तरफ़ ही ढकेलते रहे हों।

तीन साल पहले ही सोम से भी इसी तरह मिलना-जुलना होता था। एक-दूसरे के बिना रहना मुश्किल। मिलते ही सोम एकान्त ढूँढता था। एकान्त पाते ही पागल की तरह चिपट जाता था। सोम की मदहोशी सुवर्णा को भी पागल कर देती थी। सोम यह भी भूल जाता कि सुवर्णा दो बच्चो की माँ है, सोम से तीन-चार साल बड़ी है। सोम को समझाने की वह कितनी कोशिश करती लेकिन सब व्यर्थ। वह अड़ गया था—शादी करेगा तो उसी से···अगर वे दोनों एक ही शहर मे हुए तो वह सुवर्णा का किसी और के साथ रहना बर्दाश्त नही कर सकेगा, आत्महत्या कर लेगा एकदम फिल्माना! सोम के साथ होना जैसे किसी तेज धार मे बहे चले जाना था··· कुछ सोचने, अक्ल के इस्तेमाल का जरा भी मौका नही। वह यही टटोलती रहती कि सोम का साथ उसकी जिन्दगी में क्या जोड़ रहा है · क्या प्लस! हाथ में कुछ नही आता, सिवा एक वहशीपन के, नशे की हालत···सोम तो पता नही जोश में क्या-क्या वकता ही था, वह भी कभी-कभी अनाप-शनाप सोचने लगती। जल्दी ही लगने लगा कि वह सब खुद को तकलीफ पहुँचाना ही था। सोम का शादी, बीवी··· यह सब सोचना जायज माना जा सकता है पर सुवर्णा की जरूरतें तो ये नही थी?

आज सोम की बातें करने का मन है। अनन्त कुरेदता है और सुवर्णा क्षर-क्षर बताती चली जाती है। शायद कोई रिश्ता कभी पूरी तरह खत्म नही होता···उसकी सुन्दरता, उदासी, मस्ती अपना हिस्सा बन जाते है। वह हमे काफी-कुछ बदल जाता है—वह क्या है जो आज है, कल नही था···कल की सुवर्णा और आज की सुवर्णा मे क्या फर्क है ··और अब वह कौन-सी खोज है जो उसे एक रिश्ते से दूसरे की ओर लिये चली जा रही है?

"तुम्हारा अब भी सम्पर्क है, सोम से?" अनन्त पूछता है।

"वह दूसरे शहर मे है, खत लिखता रहता है·· मैं ही नही लिखती, कभी नही लिखा। वह सब खत्म करना चाहती हूँ, अपने लिए उतना नही, जितना उसके लिए। अगर न करूँ तो उसके लिए जिन्दगी कभी शुरू ही न होगी वह कभी शादी नही करेगा। हमें अलग हुए साल से ऊपर हो गया। इस बीच वह आया भी था, काम का बहाना कर मैं ही नही मिली।"

"गजब का नियन्त्रण हासिल है तुम्हे खुद पर···पर कभी सोचा कि इस तरह का नियन्त्रण कितना तोड़ता है?"

"क्यों तोड़ता होगा, उस सम्बन्ध को बनाये रखना कौन-सी अक्लमन्दी थी?"

"क्या बेवकूफी, क्या अक्लमन्दी···मैं तो आज तक यही न समझ पाया, पर जब अपने हिसाब से तुमने ठीक ही किया तो उदास क्यों हुआ करती हो?"

वह कुछ नही बोली, अस्त-व्यस्त बालो को सँभालने लगी। वे उड़ रहे थे, उन्हें कभी-कभी वह जहाँ-तहाँ मे खोंचती, कभी हाथ से थोड़ा सँवारती·· पर वे फिर उड़ने लगते।

कमल-जाल

ऊँचे-ऊँचे दरख्तो का एक बडा कुंज-सा, ऊपर उलझी हुई डगालो से बन्द-बन्द, नीचे इधर-उधर छुटपुट गलियो में खुलता हुआ। उतरती शाम, ढेरो पक्षी रात के बसेरे के लिए यहाँ आते हैं···चिकचिकाते हैं जैसे उनके बीच डाल-डाल के लिए छीना-झपटी, गाली-गलौज चल रही हो। एक जाने किस बेचैनी में एक पेड छोड दूसरे पर चला जाता है तो पीछे-पीछे झुण्ड-का-झुण्ड चल देता है ' डाल नये बोझ से थरथरा उठती है।

एक रात की बात, फिर भी चें···चें···चें···चें···

सुवर्णा चिड़ियो की चिकचिक में खो गयी है —कितनी आपाधापी। कितनी बेचैनी ? जो है, सिर्फ वही क्यों नही। सामने अनन्त है, उसे बहुत अच्छा लगता है, आजकल कही भी बोलने लगती है, उसके बारे में। रमेश से आज फिर कह गयी—'अनन्त से बातें करना बहुत अच्छा लगता है, आज शाम मैं उसके साथ चाय पियूँगी, पार्कवाले खुले रेस्तराँ मे।' रमेश का चेहरा कुछ मुर्झा आया था, जलन·· लेकिन किसलिए। रमेश को समझना चाहिए कि जो-जो सुवर्णा को अच्छा लगता है वह सब तो रमेश के पास हो नही सकता, यह रमेश की कोई कमी भी नही। जिन्दगी ऐसी ही है···बस। सुवर्णा क्या अपनी पसन्द को उन्ही चीजो तक सीमित रखे जो रमेश के पास हैं *और उन्ही मे खुद को बन्द कर दे···घोंटकर रखे? जलन कितनी* 'निगेटिव' चीज है ··सुवर्णा ने पढा है उसके बारे मे, अपने पास कभी पटकने नही दिया—खामखाह ही एक नुकसानदेह चीज को पाल लेना ! दरअसल यह सब पुरानी बकवास है। जब लोगो के पास काफी समय था···तो बैठे हुए है, तपा रहे हैं खुद को जलन की आग मे ! आज के आदमी के लिए ऐसी फालतू चीजो के लिए समय ही कहाँ है। कितना कुछ घट रहा है हर पल···कितना सारा सामने है···

पर यह क्या है कि अनन्त सामने है और उसे सोम की याद आ रही है···जैसे इन दिनो अनन्त से पहचान, उसे पसन्द करना···फिर उसका साथ···यह सब उसे सोम की तरफ ही ढकेलते रहे हो।

तीन साल पहले ही सोम से भी इसी तरह मिलना-जुलना होता था। एक-दूसरे के बिना रहना मुश्किल। मिलते ही सोम एकान्त ढूंढ़ता था। एकान्त पाते ही पागल की तरह चिपट जाता था। सोम की मदहोशी सुवर्णा को भी पागल कर देती थी। सोम यह भी भूल जाता कि सुवर्णा दो बच्चों की माँ है, सोम से तीन-चार साल बड़ी है। सोम को समझाने की वह कितनी कोशिश करती लेकिन सब व्यर्थ। वह अड़ गया था—शादी करेगा तो उसी से···अगर वे दोनों एक ही शहर में हुए तो वह सुवर्णा का किसी और के साथ रहना बर्दाश्त नहीं कर सकेगा, आत्महत्या कर लेगा एकदम फिल्माना ! सोम के साथ होना जैसे किसी तेज धार में बहे चले जाना था··· कुछ सोचने, अक्ल के इस्तेमाल का ज़रा भी मौका नहीं। वह यही टटोलती रहती कि सोम का साथ उसकी जिन्दगी में क्या जोड़ रहा है क्या प्लस ! हाथ में कुछ नहीं आता, सिवा एक वहशीपन के, नशे की हालत···सोम तो पता नहीं जोश में क्या-क्या बकता ही था, वह भी कभी-कभी अनाप-शनाप सोचने लगती। जल्दी ही लगने लगा कि वह सब खुद को तकलीफ पहुंचाना ही था। सोम का शादी, बीवी··· यह सब सोचना जायज़ माना जा सकता है पर सुवर्णा की जरूरतें तो ये नहीं थीं ?

आज सोम की बातें करने का मन है। अनन्त कुरेदता है और सुवर्णा झर-झर बताती चली जाती है। शायद कोई रिश्ता कभी पूरी तरह खत्म नहीं होता···उसकी सुन्दरता, उदासी, मस्ती अपना हिस्सा बन जाते हैं। वह हमें काफी-कुछ बदल जाता है—वह क्या है जो आज है, कल नहीं था···कल की सुवर्णा और आज की सुवर्णा में क्या फर्क है ' और अब वह .ौन-सी खोज है जो उसे एक रिश्ते से दूसरे की ओर लिये चली जा रही है ?

"तुम्हारा अब भी सम्पर्क है, सोम से ?" अनन्त पूछता है।

"वह दूसरे शहर में है, खत लिखता रहता है···मैं ही नहीं लिखती, कभी नहीं लिखा। वह सब खत्म करना चाहती हूँ, अपने लिए उतना नहीं, जितना उसके लिए। अगर न करूँ तो उसके लिए जिन्दगी कभी शुरू ही न होगी वह कभी शादी नहीं करेगा। हमें अलग हुए साल से ऊपर हो गया। इस बीच वह आया भी था, काम का बहाना कर मैं ही नहीं मिली।"

"गजब का नियन्त्रण हासिल है तुम्हें खुद पर···पर कभी सोचा कि इस तरह का नियन्त्रण कितना तोड़ता है ?"

"क्यों तोड़ता होगा, उस सम्बन्ध को बनाये रखना कौन-सी अक्लमन्दी थी ?"

"क्या बेवकूफी, क्या अक्लमन्दी···मैं तो आज तक यही न समझ पाया, पर जब अपने हिसाब से तुमने ठीक ही किया तो उदास क्यों हुआ करती हो ?"

वह कुछ नहीं बोली, अस्त-व्यस्त बालों को संभालने लगी। वे उड़ रहे थे, उन्हें कभी-कभी वह जहां-तहां से खींचती, कभी हाथ से थोड़ा संवारती·· पर वे फिर उड़ने लगते।

"सोम के जीवन में मैं पहली औरत थी, उसके लिए जिन्दगी की कोई नयी चीज ! मैं उसकी भावनाओं को समझती थी, इसीलिए झेलती चली गयी'''लेकिन एक सीमा के आगे वह सिर्फ पागलपन बचा था। पागल-जैसे होकर जीना और सच में पागल होना'''इनमें बहुत फर्क नहीं है। मेरे कितने सम्बन्ध बनते-बनते रह गये, एक मुकाम पर आकर यकायक टूट गये। लोग सीमाएँ लाँघने लगते हैं।"

"मेरे ध्यान में तो कभी तुम्हारे चेहरे, गर्दन और कन्धे के अलावा कुछ आया ही नहीं।"

"लेकिन आगे हो सकता है कि तुम भी उस मुकाम पर आ जाओ जब मेरे लिए तुम्हें हटा देने के अलावा और कोई रास्ता ही न बचे। मैंने काफी सयमी लोगों को डिगते देखा है, न चाहते हुए भी उनके साथ फिर कठोरता से पेश आना पड़ा।"

"मैं तो घबराने लगा।"

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है'''जब तुम सीमा के आगे जाने लगोगे, मैं बता दूँगी।"

"तुम्हें पता चल जाता है।"

"हाँ।"

सुवर्णा अपने भीतर टटोलने लगी'''गलत नहीं कह रही। बाहर की इस नरम-नरम खाल के अन्दर कहीं वह बेहद सख्त है। इस सख्ती को जब चाहे वह छू भी सकती है। एक लकीर उसने अपने चारों तरफ खींच रखी है, जिसे लाँघने की इजाजत वह किसी को नहीं देती'''क्या लक्ष्मण-रेखा''नहीं, ऐसा कुछ नहीं, पर कुछ है जरूर जो एकाएक फनफनाकर उठ बैठता है, उसकी सारी कोमलता सोख लेता है, वह कुछ और ही हो जाती है फिर।

दीपक भी इसी तरह गया। सुवर्णा ने अनन्त को उसका भी किस्सा बताया—दीपक उसकी ही बस्ती में रहता था'''उन दिनों जब वह कॉलेज में थी। दूर-दूर रहता हुआ वह सुवर्णा पर कविताएँ लिखता रहता, मामूली घर का होने की कुण्ठा से पीड़ित। बड़ा आदमी बनने के लिए वह बम्बई चला गया और जब लौटा तब तक सुवर्णा रमेश के घर पहुँच चुकी थी। ढूँढ़ता-ढाँढ़ता दीपक एकाएक प्रकट हो गया। अब उसके पास कुछ होने का आत्मविश्वास था और थीं वे ढेरों कविताएँ जिनमें सुवर्णा थी। उन कविताओं को सुनना, पढ़ना सुवर्णा को अच्छा लगता था। अक्सर वह दीपक के मुँह से सुनती, कभी अकेले में चुपचाप पढ़ती। वे कविताएँ उसके सौन्दर्य से फूटी हैं'''वह किसी की इस हद तक प्रेरणा बन सकती है'''यह सोच-सोचकर पुलक से भर आता सुवर्णा का मन। दीपक से हमदर्दी महसूस होती थी। कभी-कभी लगता कि अगर उसे अपने विवाह के पहले पता चल जाता कि दीपक उस पर कविताएँ लिखता है तो पता नहीं क्या होता'''लेकिन अब इस मुकाम पर फिर से मिलना ! हमदर्दी ही हो सकती थी'''बेशक इसे वह हमदर्दी की तरह प्रकट

नहीं करती थी। जिसने उसको मन में सँजोये हुए इतने साल विताये, अब भी विता रहा है···अविवाहित···उसे वह कुछ तो देगी ही· थोड़ा प्यार···बहुत आदर और नीचे-नीचे ढेर सारी हमदर्दी।

जहाँ तक सुवर्णा कविताओं मे हो, उसे परी कहकर याद किया जाय ··वहाँ तक उसे अच्छा लगता रहा, लेकिन दीपक का जुनून कुलाचें भरने लगा, जज़बात बाँध तोड़कर बह चले—'तुम आज की रात मेरे साथ रह जाओ···सबकुछ छोड़कर मेरे साथ चलो···' कुछ इस तरह की बातें करने लगा वह। वहीं से सुवर्णा लौट आयी।

वह एक छोटा-सा क़िस्सा था। दीपक बहुत जुनूनी था। उसके साथ बादलों में ही तैरते रहना था, दुनिया से ऊपर···हवा से भी हल्के। कुछ ठोस महसूस करने की कहीं रत्ती-भर भी गुंजाइश नहीं। दीपक बेशक भावनाओं में बहता रहे ·उसकी मर्जी, लेकिन यह उम्मीद करना कि सुवर्णा भी ? जिन्दगी के आधार ठोस होते हैं, उन्हें अदेखा करना जानबूझकर बेवकूफ बनना है। कोई भी चीज वहीं तक ठीक है जहाँ तक वह जिन्दगी को बेहतर बनाये, उसमें कुछ अच्छा जोड़े। ये हवाबाजी··· इससे थोड़ी देर की गुदगुदी के अलावा क्या मिल सकता है?

एकाएक सुवर्णा चौंक गयी···अनन्त भी तो क्वाँरा है, उसे क्वाँरे ही क्यों मिलते हैं···यह सोम और दीपक से फ़र्क क्यों होगा? कहीं यह तो नहीं कि सोम को भूलने के लिए ही वह अनन्त से लिपटी चली जा रही है, या कि सोम के चले जाने से जो खालीपन-सा आ गया था, उसे भरना चाहती है। नहीं, अगर ऐसा होता तो सुवर्णा को इस समय खुश होना चाहिए था। पास अनन्त है—अपरिचय का रोमांस, नये-नये की ताजगी···अनन्त में कुछ है जिसे वह नहीं जानती, दिखायी देने पर शायद पहचान भी न सके। वह जानना चाहती है, कोई उकसाता है जानने को···पर यह बुझी-बुझी भी है। उसे अच्छा नहीं लग रहा·· फिर एक आदमी से उलझती जा रही है। क्या इसके अलावा कुछ और नहीं होगा उसकी जिन्दगी में—· एक के बाद दूसरे, दूसरे के बाद तीसरे से उलझ बैठना···फिर अलग खींचना खुद को? यही सिलसिला हर बार···इसमें कुछ होता तो सोम, दीपक से उचटकर उस तरह अलग होना पड़ता?

सुवर्णा को लगता है जैसे कुछ है उसके भीतर·· वह रोशनी में आयेगा तो जीवन भर उठेगा, फिर कोई कमी नहीं रह जायेगी, बिना किसी द्विधा के वह महसूस कर सकेगी कि वह इसी···इसी के लिए पैदा हुई थी। बाहर की किसी चीज की जरूरत नहीं होगी तब। वह कौन-सी चीज है, क्या करना चाहती है सुवर्णा··· क्या ··

···छटपटाहट में वह इधर से उधर भागती है कि शायद यहाँ···या कि वहाँ··· उसे वह मिल जायेगा, यह···या कि वह···सुवर्णा को वह दे देगा जिसकी रोशनी

में वह अपने भीतर का वह बहुमूल्य पा लेगी। कुछ नहीं मिलता। हर व्यक्ति के यहाँ उसकी अपनी गाँठें होती है जिससे अलग किस्म के उलझाव पैदा हो जाते हैं और फिर उन्ही मे डूबते-उतराते रहिए। जल्दी ही यह महसूसना भी ठप्प पड़ जाता है कि हम आगे जा रहे हैं, कुछ ऊपर उठ रहे हैं।

सुवर्णा जानती है कि यही है जो होगा। फिर भी नये-नये से उलझ बैठती है, जैसे कि उसे रस आता हो इसमें, लत हो इसकी। बात सिर्फ खालीपन भरने की नही है'''वह व्यस्त रह सकती है, ढेरों चीजें हैं उसके पास---पढ़ना, घर को देखना, बच्चो पर ज्यादा ध्यान देना ''नाचना फिर से शुरू कर सकती है। खालीपन भर भी जाता है इन सबसे, पर बेचैनी'' छटपटाहट'''ज्यो-की-त्यों बनी रहती है। क्या पाना चाहती है वह'''किमके लिए यो दौड़ रही है'' कहाँ जाना चाहती है'''क्या बनना चाहती है'''

चिड़ियो की चिकचिक थम रही है। जिन्हे जो डगाल मिली उसी में वे दुबक रही हैं। उनका एक रैनबसेरा, हमारी पूरी जिन्दगी। दूसरी सुबह वे उड़ जायेंगी, अगली रात पता नही कौन डाल! आदमी उड़ना नही जानता, क्या इसीलिए वह जो डाल मिली उसी से चिपका रहता है, अलग हुआ नहीं कि असुरक्षित महसूस करने लगता है!

चिड़ियो को दरख्तो की फुनगियो पर सुला हम बाहर निकल आये। झाड़ियो के बीच बजरी का एक छोटा-सा रास्ता था जिस पर चाँदनी के धब्बे उछले हुए थे। हमारे कदमो के नीचे कर्र-मर्र होती बजरी। सामने पार्क का मैदान था जहाँ हरियाली पर सफेद चाँदनी की बड़ी चादर फैली हुई थी। धीरे-धीरे चलते हुए हम बीच में कही गली से नीचे उतर गये, एक गोल-गोल झाड़नुमा पेड की आड़ में। आँखे एक-दूसरे मे जाने क्या टटोलने लगी। होठों की पत्तियाँ, लपलपाती, कुछ खोजती'''फोहो की तरह दूसरे के घावो पर जीभ फेर देने को व्याकुल। उसके होंठ'''हल्के लाल, चिकने'' भरे-भरे, वर्षा मे भागते नवजात पुरइन-दल से काँप रहे थे। होठो की वह कँपकँपी'' किसी ज्वाला-रेखा की थिरक-सी'' जीवन-ज्वाला'''आओ मुझमे उतर जाओ'''तुम आओ'''

हम न बँधते तो जैसे दह जाते ''दूसरा जैसे हमारे प्रश्नो का उत्तर था''' चिरन्तन, और हम उससे चिपक गये थे।

"तुम्हारा पास होना मुझमें विश्वास भरता है अनन्त!"

"कहोगी, मैंने दौड़कर तुम्हे पीछे से पकड़ लिया।"

"नही, तुम मुझे मिल गये हो।"

"क्या है यह?"

"जानना'' या कोई नाम देना जरूरी है क्या? जो है बहुत अच्छा है, बहुत कीमती।"

"और वह मुकाम कब आयेगा जब मेरा संयम ढहने लगेगा ?"

"ओह···" अलग हो, वह रास्ते पर चलने लगी···"तुम तो बात को पकड़ लेते हो। चिन्ता न करो, आयेगा तो बता दूंगी।"

"सिर्फ बताओगी···?"

"तुम्हें सँभाल भी लूंगी, चलो ··"

वह उदास है, रोने का मन करता है···सुवर्णा ने फोन पर कहा। मुझे बुलाया। मैं खुश था अपने महत्त्व पर। पहुँचा तो वह इत्मीनान से फोन पर बात कर रही थी। उस पार कोई पुरुष था।

रमेश नहीं···दीपक या सोम भी नहीं···कोई और। सुवर्णा के मुँह से पिघलती हुई हूँ···हूँ···निकल रही थी, बीच-बीच में तुम, तुम्हारा वगैरह भी। खासी अपनत्व-भरी बातचीत, हालांकि इधर से बोलना कम-से-कम हो रहा था।

उसने कभी कहा था - आप भी अच्छा शब्द है। हम तुम पर कैसे और कब पहुँचे···मैं याद करने की कोशिश करने लगा। क्या जिस रास्ते हम पहुँचे, उसी रास्ते ये दोनों पहुँचे या पहुँच रहे थे···कस्बई मानसिकता! मैंने स्वयं को झिंझोड़ा।

"तुम्हें कोई काम है इधर···आसपास ?" फोन रखकर उसने पूछा।

काम···? मैं चौंका। मैं किसी काम के लिए तो इधर नहीं आया था, उसके लिए आया था ··उसने बुलाया था।

"मतलब हो तो कर आओ --इस बीच मैं एक मीटिंग निपटा आती हूँ।"

"मुझे तो इधर कोई काम नहीं है।'

"अच्छा तो यहीं बैठो, मैं जल्दी हो आती हूँ।"

मुझे कोई और मौका दिये बगैर, कागज-पत्तर समेट वह चली गयी। मैं इधर-उधर पड़ी कोई पुरानी पत्रिका उलटता-पलटता, कुछ फोन आदि से दिल बहलाता हुआ बैठा रहा। उसका कमरा बदल गया था इस बीच। दीवार पर चित्र नये थे··· पर उन्हीं-उन्हीं जगहों पर लगाये थे उसने जहाँ वे पुराने कमरे में थे।

मेरे फोन छोड़ते ही उसके आने शुरू हो गये···एक के बाद एक। मैं उठता नहीं था तो जैसे ये बन्द होने के पहले और चीखते थे। इतना बड़ा सर्किल था उसका ? मुझे लगा मैं बाजार में बैठा हूँ।

वह पूरे एक घण्टे बाद आयी। पीछे से मुझे थपथपाती हुई कमरे में घुसी और फौरन ही अपनी चीजें समेटने लगी।

थकान का एक पूरा-का-पूरा गट्ठर तब मेरे माथे पर रेंग रहा था। बोझ की वजह से मैं ठीक से उसकी तरफ देख भी नहीं सकता था।

"आय एम सो सौरी ! चलो, आइसक्रीम खायेंगे···खूब घूमेंगे···" बच्चों को

आइसक्रीम !

कार मे बैठने समय मैंने उसके हाथ मे पत्रिका देखी जो वह बैठक से लायी थी। पत्रिका मे नाम लिखा था—श्याम मोहन। उससे मैं परिचित था। जहाँ तक सुवर्णा फोन पर उसी से बातें कर रही थी जब मैं आया था।

वह एकदम खिली हुई थी। मैं उसमें उस उदासी को खोज रहा था जिसका जिक्र उसने फोन पर किया था। उसकी उदासी सोखने मैं आया था पर वह सुख मेरे भाग्य का नही था, शायद। वह उदास जब थी, तब थी···अब उदास मैं था। मेरे अन्दर क्या हो रहा है···वह काफी-कुछ भाँप चुकी थी···पर वह और मैं भी उस चीज को दूर रखने की कोशिश कर रहे थे।

हम बाहर आ गये। हल्की बूँदाबाँदी से जमीन चिपचिपा आयी थी। चलते हुए बडा ही लिस-लिस लग रहा था। एक तरफ बाँसों के उलझे हुए घने दरख्त थे··· झुरमुट। गर्मी मे यही जगह ताजा-ताजा ठण्डक से लबालब होती है, इस मौसम मे थोडा-बहुत सूखी होगी···बरसात में गर्म मूँगफली की तरह। झुरमुट के पार एक पुरानी खूबसूरत इमारत दिखती थी ··मैं उधर जाना चाहता था लेकिन सुवर्णा आइसक्रीम के ठेले की तरफ बढ़ गयी। बारिश के बावजूद उसने औरेन्जबार खरीदी।

"कुछ बात करो न···" चाटते हुए चलते-चलते उसने कहा, कुछ झुँझलाकर।

मैं कोशिश करके भी कुछ बात नही कर पाया। हमारी रफ्तार मे कही फर्क आ गया था। एक बेंच पर हम जा बैठे। मैं उसकी आँखों में झाँकने लगा। उन आँखो मे कतराना कही नही था···मैं क्या उसे सही-सही पढ़ सकता हूँ, समझ सकता हूँ? मेरे दाये हाथ को अपनी गोद मे लिये वह मेरी भाग्य-रेखाएँ पढ़ने लगी। "तुम्हारी हार्ट लाइन वीनस की तरफ झुकी है और वीनस भी कितना उठा हुआ है··यह देखो, तुम्हारी उम्र···लम्बी है और तुम्हें कोई बडी बीमारी नही होगी।"

"उम्र लम्बी होना ही काफी होता है क्या?"

"क्यों नही·· मुझे तो अपनी उम्र लम्बी ही चाहिए।"

"क्या फायदा···अगर करने के लिए कुछ ढंग का न हो, क्या करना चाहोगी तुम लम्बी उम्र में?"

"जो अब कर रही हूँ।"

"बुढापे में?"

"तब दूसरी चीजें होंगी···बुढापे की अपनी अलग सुन्दरता है।"

थोड़ी देर मे हम उठकर चलने लगे और चलते रहे···चलना मुझे हल्का कर रहा था। हम एक बड़े मकबरे पर आ पहुँचे। मुख्य दरवाजा खँडहर लेकिन अन्दर की इमारत काफी-कुछ साबुत···एक भीमकाय इमारत में सिर्फ एक मकबरा! ऊपर जाने के लिए जीना। मैं कुछ सीढ़ियाँ चढ़ा···उसकी तरफ मदद का हाथ

बढ़ाया। मेरा हाथ पकडकर वह दो सीढ़ियाँ चढ़ी, फिर मना कर दिया'''सीढ़ियाँ ऊँची-ऊँची थी। वह नीचे उतर गयी। उसके पीछे-पीछे मैं भी नीचे आ गया, कब्र के इर्द-गिर्द डोलने लगा'''तभी वह पीछे से आकर मेरी गर्दन पर करीब-करीब झूल गयी। वह स्पर्श'''हम नि.शब्द हो गये। किसी दूसरी ही भाषा की डोर ने हमे बाँध दिया था। उसे न देख पाते हुए भी मैं उसमें डूब गया समाधि एक लम्बे अव्यतीत क्षण की।

एक क्षण ही'''पर पूरा डूब जाना'''जहाँ हमारे अलग-अलग शरीर, हमारा अलग अस्तित्व'' सब जैसे घुल गये थे। सब खत्म'''हम भी'''यह अहसास भी खत्म कि हम खुद से ऊँचे उठ गये हैं उस क्षण, कुछ न होने का पूरा और भरा-भरा अहसास! कौन-सा सुख है यह'''इस लोक का तो नहीं है, हर किसी के साथ, क्यों नहीं ऐसी अनुभूति होती? इस दैवी सुख के आगे क्या सबकुछ बेमानी नहीं है—वह कौन है, किसकी है'''क्या है जैसी है वैसी क्यो है?

हम खँडहरों में थे'''पर हाथ में जैसे एक मशाल आ गयी थी जिसकी रोशनी में खँडहर भी खूबसूरत और अपने थे। हम कुछ ढूँढ रहे थे जो जिन्दगी के ओट था पर जो हमें बुला रहा था।

बाहर आते समय हमारे हाथ एक-दूसरे में गुँथे हुए थे और हम करीब-करीब सटकर चल रहे थे।

"मुझे लगता है कि तुम्हारा हाथ यूँ लिये हुए मैं सबके सामने निकल सकती हूँ'''" वह कह रही थी।

उसकी आँखें मुझे आश्वस्त कर रही थी जैसे कि कह रही हों—मैं वह नहीं हूँ जो सब हैं, वह भी नहीं जो दिखती हूँ। मैं मैं हूँ। मुझे समझो'''पहचानो'''

7 अक्तूबर, 1977

विवाहेतर सम्बन्ध'''भारतीय परिवेश मे! अगर ये सम्बन्ध गलत हैं तो फिर बन क्यों जाते हैं? विवाह के बाद आदमी और औरत क्या जीवित व्यक्ति ही नहीं बचते कि उनके दूसरो से सम्बन्ध बनें ही नहीं!

दैवी सुख की अनुभूति'''यह क्या मात्र भुलावा है'''छल, जैसा कि हम अक्सर हर उस अनुभूति को कहते हैं जो हमारी पकड़ के बाहर होती है या फिर बार-बार, रोज-रोज हमारे अनुभव का हिस्सा नहीं होती। यह तो जीवन को बेहद सीमित कर देना हुआ।

मैं क्या चाहता हूँ जीवन से'''कोई अर्थ है यहाँ या कि बस उम्र की सड़क पर रेंगते हुए बीत जाना-भर है। अगर सिर्फ बीतना-भर है तो बीच-बीच में अर्थ की तलाश यह बेचैनी क्यों उठती है, एकदम तृप्ति-भरे जीवन मे भी उदासी की हल्की

छाया क्यों पड़ती रहती है, क्यों कोई पूरा सुखी नही हो पाता ? दूसरी तरफ से देखें कि अगर जीवन सिर्फ शरीर-यात्रा है, इसके अलावा कुछ नही है यहाँ···तो फिर आदमी कैसी भी तकलीफ, दुःख, निराशा के बीच जीवित क्यो बना रहता है··· बड़ी-से-बड़ी दुर्घटना के बाद भी उठ खडा होता है · क्या सिर्फ इसलिए कि मर नही सकता···या कि जीने में निहित कुछ है···कोई नैतिकता···जीना जैसे कोई पवित्र अनुशासन है जिसका उल्लंघन आसानी से नही किया जा सकता···वह क्या है जिसके लिए यह स्वतःप्रेरित अनुशासन है ?

मन में प्यार के लिए विशेष ललक उठती है। मनोवैज्ञानिक इसमे कई दूसरी चीजें भी ढूंढ निकालेंगे। वे इसे एक रोग मान सकते है और उसके कई उपचार भी सुझा सकते हैं···पर मेरा मन इतनी सीधी-सीधी व्याख्याओ से सन्तुष्ट नही हो पाता।

क्यों ऐसा हुआ है कि उससे मिलने के बाद बाहर का जीवन भी सँवरता दिखा, उसके साथ जिस पूर्णता की अनुभूति होती है, वह किसी दूसरे के साथ क्यो नही ?

मेरे लिए हर तरह के अवसर सामने हैं—बेहद पढ़ा-लिखा व्यक्ति, सफल पत्रकार···बौद्धिक बन सकता हूँ···आध्यात्मिक विकास की तरफ जा सकता हूँ, और कुछ नही तो पैसे या पदोन्नति की महत्त्वाकाक्षाओ में तो पड ही सकता हूँ। क्या मैं जीवन के दूसरे महत्त्वपूर्ण पक्षो की उपेक्षा करने जा रहा हूँ···पर वह तो होता ही है जब हम किसी एक लाइन को पकड लेते हैं। नही पकड़ते तो फिर हर तरफ थोड़ा-थोड़ा मुंह मारते हुए अध-प्यासे-से फिरते रहते हैं जीवन-भर, जीवन में कुछ करने, पाने या होने-जैसा कोई सुख फिर हमारा नही होता। जिस दिशा मे मैं प्रेरित हूँ वहाँ क्या हासिल करने का सुख मेरा होगा ? वैसा कुछ हो या न हो पर यह निश्चित लगता है कि प्रेम आडम्बर के मलबे को हटाकर हमारा एकदम प्रामाणिक स्वरूप हमारे सामने ला देता है···यही क्या कोई कम प्राप्ति है ?

वैसे जीवन के सन्दर्भ मे कुछ हासिल करना, कुछ कर गुजरना···ऐसी परिकल्पनाएँ मुझे बेमानी लगती हैं। वहाँ जहाँ सबकुछ खत्म ही होना है अन्ततः, वहाँ किसे प्राप्ति कहा जाये ? चूँकि सबकुछ खत्म होता है···इसीलिए शायद हर व्यक्ति की कशिश कुछ ऐसे के लिए होती है जो खत्म न हो। मुझ-जैसे साधारण व्यक्ति की यह कशिश जीने के क्रम मे ही व्यक्त होती है···शायद प्रेम नश्वर के बीच किसी अनश्वर के लिए हमारी ललक का मूर्त रूप है। बाहर से देखो तो प्रेम मे सबकुछ और भी तेजी से खत्म होता दिखता है···पर दरअसल खत्म होता नही। पूरेपन की अनुभूति वहाँ बेशक क्षणिक हो समय के माप से···लेकिन वह अपने पीछे कितना कुछ छोड़ जाती है···कितना कुछ।

रस्साकशी

एक शाम उसके घर जाने का तय हो गया था, ऐसे ही चलते-चलते। 'आना, हैव सम ड्रिंक्स, मैं भी तुम्हारे साथ थोड़ा-सा लूंगी'—सुवर्णा ने कहा था।

"रमेश मना नहीं करते ?"

"इसमे मना करने की क्या बात, क्या मैं कोई पियक्कड़ हूं? वह खुद ही कभी-कभी बनाकर मुझे देता है। छोटा-सा पैग गरम पानी के साथ पिओ तो गला, जुखाम वगैरह ठीक हो जाता है। आना, बातें करेंगे।"

पहुंचा तो दोनों ने एक साथ ही मेरे लिए दरवाजा खोला, जैसे दोनों ही मेरा इन्तजार कर रहे थे। मेरा आना उन्हें अच्छा लग रहा था—'वैलकम'·· सुवर्णा की तो खैर आँखों से झलक रहा था, पर रमेश के मुंह से बाकायदे निकला। वह खुश्की जो रमेश मे पहले झलक-झलक गयी थी, आज जैसे उसका स्थायी-भाव थी। वह पैंण्ट-बुशर्ट मे था, पैरो में पेशावरी सैण्डिलें, पॉलिश से चम-चम। मुंह चिकना और बाल करीने मे काढ़े गये।

वैलकम कहते हुए वह थोड़ा-सा झुका, आवाज में भी अतिरिक्त गरमाहट। पहली बार जब मैं यहाँ आया था तब स्वागत के लिए उसका स्वर सामान्य ही रहा था···मद्धिम, वही जो बोलने में होता था···एक-सा, न ऊँचा न नीचा। आज उसमे उत्साह था···साफ-साफ।

रमेश मेरे पास बैठा। बातो के लिए उसने उस दिन के अखबार की कोई रिपोर्ट उठा ली। उस पर चलते हुए हम धीरे-धीरे देश की सामाजिक-राजनीतिक स्थिति पर सरक गये। मैंने कहा, आजकल हिंसा बहुत बढ़ रही है ··तो उसने आँकड़ो से बताया कि दूसरे देशो के मुकाबले भारत मे हिंसात्मक घटनाएँ अब भी कम हैं। फिर पुलिस की बात उठ गयी। उसका कहना था कि ग्राफ पर आबादी, बेकारी और साथ-साथ अपराध ऊपर चढ़ते चले गये, अब भी ऊपर जा रहे हैं··· लेकिन पुलिस कर्मचारियो की संख्या वही वर्षों पहले की है। उनकी मदद के लिए जो उपकरण हैं वे बहुत पुराने हैं और प्रशासनिक ढाँचा, कार्यप्रणाली वगैरह बाबा

आदम के ज़माने के चले आ रहे हैं। बराबरी से पुलिस पर दबाव बढ़ते चले जा रहे हैं—हर चीज के लिए पुलिस'''हर चीज के लिए वही जिम्मेदार, कोई गाली देने मे नही चूकता'''।

बातचीत में भी रमेश वैसा ही था जैसा कि देखने मे—साधारण और साफ विचार—वही जो अफसर वर्ग के होते हैं, विशेष अपने कुछ नही। विश्वास उतने ही गहरे जैसे कि मद्धिम आवाज'''ज्यादा गहरे होने से व्यक्ति दकियानूस दिखने लगता है! हमारी बातचीत'''पटरी पर लुढ़कते इंजन-सी उठती थी तो विश्लेपण के स्तर पर ही ''भावना, आस्था'''कुछ नही। कुल मिलाकर वह एक तराशा हुआ व्यक्ति था, जिसकी हर चीज सलीके की हो जाती है। मिलो तो अच्छा लगेगा, पर थोडी देर को ही। न मिलो तो कोई फर्क नही पड़ेगा। मैं बड़ी जल्दी ऊब आया। सोचने लगा—ये बातें हममें क्या जोडती हैं आखिर? जानकारी थोड़ी-बहुत बढ़ाती हो तो बढाती हों लेकिन हमारे तबके के लोगों का अच्छा-खासा वक्त इन्ही बातों मे जाता है। शायद इनसे हम बीच-बीच में अपने-आपको दिलासा देते चलते हैं कि हम जड नही हैं, देश के बारे मे भी सोचते हैं, कुछ विचार रखते हैं।

रमेश की जानकारी अच्छी थी। नौकरी मे उसकी ख्याति भी अच्छी सुनी जाती थी। चारों तरफ थोड़ा-थोड़ा अच्छा''इसी से घिरा बैठा था मैं'''कब से।

"अच्छा आप क्या लेंगे'''चाय, कॉफ़ी, शर्बत''" रमेश ने पूछा और जैसे मुझे उबार लिया, अपनी अच्छाई से ही।

"रमेश, लैट्स गिव हिम सम ड्रिंक्स" सुवर्णा बीच मे आ गयी, बड़े ही सहज ढग से। अभी तक कभी भीतर कभी बाहर करती रही थी, मुझे पूरी तरह रमेश पर छोड़े हुए।

"ओ. के., व्हाट वुड यू लाइक टु हैव ''व्हिस्की, रम, जिन?" रमेश हिन्दी अच्छी-खासी बोल लेता था, इतनी देर से बोल ही रहा था, पर व्हिस्की वगैरह आखिर विदेशी चीजें थी ''शायद इसीलिए अग्रेजी में ही पूछी जानी थी।

"थोडी-सी रम ले लूँगा।"

"यस'''इन इण्डिया, वी मेक गुड रम'''व्हिस्की सो-सो'''।"

वह आलमारी की तरफ बढ़ गया। पॉलिश से चमकती लकड़ी की उस आलमारी का नीचे का एक खाना बार था। भीतर सिर्फ चार-पांच बोतलें थी, वह भी आधा भरी हुई। खाली गिलास भी जैसे नमूने के बतौर रखे गये थे, गिनती के ही—बियर, व्हिस्की और वाइन के लिए अलग-अलग। ऐसा लगता था कि बार कुछ-कुछ जबरदस्ती ही बना लिया गया था'''घर मे यह भी होना चाहिए!

रमेश ने गिलास मे बड़े पैग से थोडा ज्यादा ही रम डाली और मेरी तरफ पीठ किये ही पूछा—"सोडा और वाटर?"

"पानी, बगैर बर्फ!"

"अच्छा, बर्फ भी नही ?"

"कोई परहेज नही है, पर आज नहीं लूंगा।"

रमेश एक ही गिलास बनाकर लाया और मेरे सामने रख दिया।

"आप ?"

"मैं नही पीता।"

पहली बार उसमें कोई खासियत नजर आयी, सभी में कुछ-न-कुछ निकल ही आती हैं !

"मुझे तो शराब की हर घूंट कविता की नयी पंक्ति-सी लगती है। ईस्थिटिक प्लेजर लगता है पानी, बशर्ते मात्रा कम रहे···" सुवर्णा को प्रभावित कर गयी वह बात, शोरगुल के बीच भी कोई महत्त्वपूर्ण चीज हाथ से नहीं जाने देती थी वह।

'चियर्स' करके मैं शुरू हो गया, लेकिन बड़ा ऊल-जलूल लग रहा था। मैं चुस्की लेता हुआ·· वे मुझे देखते, मजा लेते हुए।

"रमेश, मुझे भी थोड़ी-सी दो न···थकी हूँ।" सुवर्णा अब जैसे मुस्तकिल तौर पर हमारे पास बैठने को आ रही थी।

"नही, तुम्हें जरूरत नही है।"

"रमेश, प्लीज !"

"नो !"

रमेश का स्वर सूखा था, पर चेहरे पर समानान्तर एक खास चिकनाहट··· कान्ति उतर आयी थी, जैसे कि अधिकार···अथौर्टी···इनमें ही उसका व्यक्तित्व समग्रता प्राप्त करता था। उसने अफसर की तरह दो-टूक निर्णय लिया था और उस पर अडिग था। उसने यह भी साफ-साफ जाहिर कर दिया था कि वह इस बात के खिलाफ था कि उसकी पत्नी किसी और के सामने शराब पिये। दूसरी चीजों मे अमीरों की नकल करते हुए भी यहाँ वह अपने मध्यवर्गीय संस्कार को कसकर पकडे हुए था। यह उसकी दूसरी खासियत थी जो उभरी थी।

सुवर्णा सहम-सी गयी, आगे मांग नहीं की·· यह भी प्रकट नहीं किया कि वह कहीं से आहत हुई है। उल्टे हमारे साथ और सक्रिय रूप से जुड़ने के ख्याल से स्टूल खिसकाकर हमारे पास ले आयी और अब तक जो बातों में दूर-दूर रही थी··· अब जमकर उतरने लगी। मेरी तरफ पूरी तरह मुखातिब होकर उसने धीरे-धीरे दूसरे विषयों की बातें शुरू कर दी—साहित्य, नाटक, कला, दर्शन। रमेश को इनमें क्या दिलचस्पी···वह चुप होता चला गया। रमेश उपेक्षित महसूस न करे···इसलिए मैं बीच-बीच में उसकी तरफ लौटना चाहता···पर सुवर्णा रास्ते मे आ जाती, बात का कोई नया जोड़ लिये हुए···और हम फिर अपने रास्ते चल पड़ते। एकाध बार मुझे लगा जैसे वह जानबूझकर ऐसा कर रही थी।

रमेश ढीला-ढाला दिख रहा था अब। मुझे तब लगा कि चुस्ती उसके अपने

व्यक्तित्व का हिस्सा नहीं थी। उसे मिली थी, अफसरी से, जो खास मौकों पर चिलक उठती थी। एक वैसा मौका थोड़ी देर पहले था'''कुशल मेजबान की तरह गरमाहट से स्वागत करने का, दूसरा सुवर्णा को पीने से मना करने का'''दोनों गुजर चुके थे। जब तक कोई तीसरा मौका उपस्थित नहीं हो जाता, उसे ढीला ही महसूस करना था। उसकी चुस्ती रोल का मोहताज थी।

"लीजिए, अब यह शुरू करिए'''कब से उसे लिये बैठे हैं'''?" वही बातों के बीच ही मेरे सामने रम का नया गिलास बनाकर ठक-से रख दिया रमेश ने, जब कि अभी मेरा पहला गिलास ही खाली नहीं हुआ था। कब वह उठा और कब गिलास बना लाया'''पता ही न चला। जो खुद न पी रहा हो उसका इस तरह पिलाना, दूसरे को इस तरह बेवजह पियक्कड़ समझ लेना'''थोड़ा अपमानजनक लगा। मुझे हैरत हुई कि जो बाहर से इतना सीधा, सौम्य नजर आता है, वह भीतर से इतना लम्पट कैसे हो सकता है! पैग भी उसने फिर खासा बड़ा बनाया था। क्या उसका इरादा यह था कि मैं धुत्त हो जाऊँ? मैंने गिलास की तरफ खास ध्यान नहीं दिया ''और पहले की तरह बातों में डूबा रहा। मेरी तटस्थता से भन्नाकर जैसे वह उठा और रिकॉर्ड-प्लेयर पर एक रिकॉर्ड चढ़ा आया'''पश्चिमी संगीत का रिकॉर्ड, तेज वॉल्यूम पर'''और फिर खुश-खुश मेरी तरफ आया।

"इसे सुनिए, जो भी सुनता है फिर सुनता ही चला जाता है'''"

हमारी बातें बन्द हो गयीं। मुझे मजबूरन वह रिकॉर्ड सुनना पड़ रहा था। उठकर जाने का मन था, लेकिन एक पूरा गिलास खाली करने को पड़ा था। एक बार तो तबियत हुई कि मैं भी उसी असभ्य तरीके से नये गिलास को वैसे ही छोड़-कर चल दूँ।

"अब मेरे लिए और मत बनाइयेगा'''" मैंने रमेश को पहले से ही मना कर दिया।

"बस?"

वह एक शब्द'''व्यंग-भरा स्वर, जैसे कि वह कह रहा हो कि तीसमारखाँ तो बहुत बनते थे, माद्दा इतना ही निकला'' या कि जैसे वह अपनी अमीरी दिखा रहा हो कि हम तो थे दरियादिल, अब तुम्हारी औकात ही इतनी निकली!

हल्के नशे में मुझे उसकी नादानी पर और भी हँसी आ रही थी। सोच रहा था कि अगर मैं शराब थोड़ी ज्यादा पी लूँ और लड़खड़ाने लगूँ तो'' तो वह सुवर्णा को बता सकेगा—देखो, ये हैं तुम्हारे दोस्त! मैं इसीलिए तुम्हें सबके सामने शराब नहीं पीने देता'''लेकिन अगर मकसद ऐसा ही कुछ हो तो शराब के साथ कुछ उलटा-सीधा मिलाकर भी दिया जा सकता है।

वे बातें जिनमें हम थे जब अंग्रेजी रिकॉर्ड ने हमें उखाड़ दिया'''वे क्या थीं''' उस कर्कश आवाज के बीच मैं फिर उन्हें याद न कर पाया, हालाँकि सुवर्णा सामने

ही बैठी थी, पहले की तरह। मैं नरम-खयाली के मूड में था, उखड़ने लगा।

"चलना चाहिए।"

"तुम्हें रिकौर्ड अच्छा नही लगा, तुम्हारी संगीत में दिलचस्पी नही दिखती। होना चाहिए ''इट एड्स'''।"

वह थी, मुझसे पहली बार निराश हुई दिखती थी। थोड़ी-थोड़ी हर चीज मे दिलचस्पी की अपेक्षा थी मुझसे।

"मैं नही सोचता संगीत, कला या धर्म सिर्फ दिलचस्पी की चीजें हैं'''या कि एक और चीज फायदे की हमने जोड़ ली'''बस। ये आदमी की जरूरतें हैं, हम पर भीतरी प्रभाव डालती हैं'''आत्मिक सगीत के ज्ञान से वह प्रभाव कम-ज्यादा हो सकता है।

"मुझे संगीत का बिलकुल ज्ञान नही तो भी भारतीय सगीत भीतर कुछ करता है, जबकि पश्चिमी संगीत एकदम ऊपर से बह जाता है। संस्कार कह लीजिए।"

"तुम्हारी पहली बात सही हो सकती है पर दूसरी एकदम नही। सगीत संगीत है, मुझे तो यह रिकौर्ड भी उतना ही मूव करता है जितना रविशंकर का सितार।" सुवर्णा ने तर्क दिया।

"जैसे आजकल डिस्को'''अब वह सिवा पागल हल्ले के और क्या है?"

"वाह! उसका अपना संगीत है, सगीत भी पीढ़ियों के साथ बदलता चलता है, हाँ, उसका मजा लेने के लिए समझ चाहिए।"

रिकौर्ड चल रहा था। कोई नही सुन रहा था, रिकौर्ड और संगीत को लेकर हम बहस मे उलझे थे, अपने-अपने पक्षो की एक-एक दलील मोहरों की तरह आगे बढ़ाते हुए। सुवर्णा और मैं जो कुछ देर पहले ही जुड़ने-जोड़नेवाली बातें कर रहे थे ''अब करीब-करीब झगड़ रहे थे, तर्क-दर-तर्क। रमेश मजा ले रहा था। थोड़ा नशे की वजह से मैं कुछ ज्यादा बोल रहा था'' और थोड़ा कर्कश भी। मुझे अपनी बकबक साफ सुनायी दे रही थी। वे दोनो एक तरफ हो गये थे।

"चलूँगा'''" मैं उठ खड़ा हुआ। अपनी नजरो मे और नही गिरना चाहता था। गिलास को मुँह मे उँडेला और दोनों से नमस्ते कर बाहर को निकल लिया। वे दोनो भी उठ गये।

"रमेश! आई सी हिम आफ'''" दरवाजे पर से ही सुवर्णा ने रमेश से कहा।

रमेश ने रिकौर्ड बन्द कर दिया और बार को सँजोने मे लग गया। हम अपने पीछे दरवाजा बन्द कर बरामदे मे निकल आये और बाहर के गेट की तरफ चलने लगे।

"बोर हो गये?" उसने कहा।

"नहीं, बेकार की बहस मे उलझ गया।"

"बेकार की क्यो?"

"बहस होती ही बेकार है। कड़ुवाहट पैदा करती है'''कुछ नही निकलता उससे।"

"ऐसा नही है। हमें दूसरे का नजरिया पता चलता है, अपनी बात को तौलने-परखने का मौका मिलता है। कभी-कभी बहस करना चाहिए।"

उसके लिए तो हर चीज अच्छी है ''पर मेरे लिए भी तो हर चीज उतनी ही आसानी से बेकार की। हममे से कौन सही है ''क्या मालूम! मैं कुछ कहने जा रहा था कि देखा, रमेश करीब-करीब दौड़ता हुआ हम तक आ पहुँचा था'''मुझ पर शराब का असर देखना चाहता था या कि पत्नी को एक पियक्कड़ के साथ छोड़ने का जोखिम नही उठाना चाहता था।

मैंने हाथ जोडे, जवाब मे दोनो के हाथ भी जुड़े। सुवर्णा की जुड़ी हथेलियो के पीछे वही मुस्कराती आँखें ''दीयो-सी टिमटिमाती। चलने के लिए मुड़ने को हुआ तो उसने एक हल्का हाथ मेरी बाँह पर मार दिया।

साढे छ: बजे शाम। रमेश कब का दफ्तर से आ गया है, सुवर्णा नही पहुँची है। जान-बूझकर वह थोड़ी देर से ही निकला घर के लिए, सुवर्णा तब भी नही पहुँची। चलने से पहले उसे फोन किया था, वह अपने कमरे मे नही थी। दफ्तर पाँच बजे बन्द हो जाता है पर ऐसा अक्सर होता है कि रमेश पहुँचे और घर मे स्वागत के लिए नौकर के अलावा कोई नही'''कभी-कभी वह भी इधर-उधर। लडके खेल-कूद में। बरामदे मे बैठकर रमेश अकेले ही चाय पिये—सवेरे का अखबार या कोई पत्रिका वगैरह पलटते हुए। ऐसे में उसे लगता है कि पत्नी का क्षेत्र घर ही होना चाहिए—पति दिन-भर की भागा-दौडी के बाद घर आये तो कोई पास बैठनेवाला तो हो!

सवेरे दफ्तर में एक बडे अफसर का फोन आया। रमेश उनसे मिल चुका था, सुवर्णा ने परिचय कराया था। उनके फोन भी घर पर आते रहे हैं, पर सुवर्णा के लिए ही। आज रमेश के लिए था'''मन में उत्सुकता, हल्की फुरफुराहट।

"सुवर्णा मुझे अपने कमरे मे लंच दे रही हैं, बारह बजे। तुम भी आ जाओ!"

"यस सर!"

स्थिति कैसी भी हो, बात कोई भी'''बड़े अफसर के लिए लचक-भरा 'यस-सर' ही निकलता है, आदतन। न करना तो दूर, बहाना करने की बात भी मन मे नही आ सकी उस क्षण। बाद में जरूर सोचता रहा कि क्या कोई बहाना किया जा सकता था? नही'''बड़े अफसर को बुरा लगता।

बात कुछ और होती अगर रमेश और मिसेज रमेश की तरफ से बड़े अफसर को घर बुलाया जाता, वह निमन्त्रण देने गया होता'''या कि सुवर्णा ने कम-से-

कम उसके साथ बैठकर ही योजना बनायी होती। खबर मिली बाहर के व्यक्ति से !

रमेश समय से पहुँच गया। बड़े अफसर के अलावा अनन्त भी, वह बड़े अफसर का परिचित है। बातों से पता चलता है कि श्याम मोहन भी आनेवाला है। सुवर्णा आगे-आगे, हमेशा की तरह···रमेश पीछे, एक किनारे की कुर्सी पर। वह सिर्फ उन्हीं बातों का जवाब देता है जो उससे ही पूछी जाती हैं। अगर सवाल बड़े अफसर के हों तो जवाब कुछ ज्यादा ही नम्रता के साथ ··रमेश को अपनी वह नम्रता चुभती भी है, जब देखता है कि उसी शख्स से उसी वक्त उसकी पत्नी किस आत्म-विश्वास से बातें कर रही होती है···चहकती हुई।

श्याम मोहन का फोन। वह नहीं आ सकता, व्यस्त है। यहाँ सभी उस वर्ग के हैं जो व्यस्तता का मतलब खूब जानते हैं। क्या हो गया···सुवर्णा के कहने-भर से ही भागा चला आया करता है। नहीं आ रहा होगा क्योंकि यहाँ वह केन्द्रबिन्दु नहीं हो सकेगा, बड़ा अफसर किसी दूसरे को कैसे होने देगा।

लंच के बाद सभी बड़े अफसर को नीचे छोड़ने जाते हैं। रमेश उनके लिए कार का दरवाजा खोलता है।

"रमेश, तुम चले जाओ साथ मे···छोड़ने" ··सुवर्णा का सुझाव।

रमेश बड़े अफसर के साथ कार में बैठ जाता है, पीछे छूट जाते हैं सुवर्णा और अनन्त।

बड़े अफसर के दफ्तर पहुँचकर कार रुकी कि रमेश पहले उतर जाता है। दूसरी तरफ से कार खोलने के लिए भागता है, लेकिन तब तक बड़े अफसर उतर चुके होते हैं। जो लंच मे कैसे हँसी-मजाक कर रहे थे, वे ही कार में गम्भीर बने रहे···और अपने दफ्तर के पास पहुँचकर एकदम औपचारिक हो गये। बड़े अफसर धन्यवाद देते हुए हाथ मिलाते हैं और फिर अपने कमरे में दाखिल हो जाते हैं, एक बार भी रमेश को आने, कॉफी वगैरह के लिए नहीं कहते। रमेश समझता है—अनुशासन का हिस्सा है यह सब, वह खुद अपने मातहतों के साथ ऐसा ही करता है।

क्या सोच रहा था वह···हाँ, पत्नी और घर। कोई जरूरत नहीं थी कि सुवर्णा नौकरी करती। सुवर्णा ने कहा उसके लिए जरूरी है तो फिर रमेश ने मना नहीं किया···पर बात नौकरी तक ही कहाँ रही। अब सुवर्णा अगर ज्यादा मिलनसार है तो रमेश को भी इस बात की कद्र करना चाहिए। यह जाहिर करना ही कि उसे यह पसन्द नहीं कि पत्नी के इतने दोस्त हों···यह ओछापन हो जायेगा। सुवर्णा के दोस्त घर आयेंगे और रमेश को वे पसन्द नहीं, फिर भी साथ बैठना है, उनमें दिलचस्पी लेना है !

आखिर क्या है जो रमेश को पसन्द नहीं ··यह कि सुवर्णा के इतने सारे अपने

दोस्त क्यों हैं'''वह किसी से इतनी आत्मीय क्यों हो'''वह रमेश के ही दोस्तों तक खुद को सीमित क्यों नहीं रखती'''या कि सिर्फ एक खराश है यह कि उसकी पत्नी सुन्दर है इसलिए लोग उसे घेरे रहते हैं, बड़े अफसर भी उसके यहाँ लंच करते हैं। उस दरबार में रमेश की उपस्थिति ''एक मुसाहिब की तरह ही ! सुवर्णा को हर तरह के दोस्त चाहिए—एक कवि तो दूसरा कलाकार, तीसरा पत्रकार तो चौथा खिलाड़ी। वह कहती है कि उनके जरिये वह घर बैठे-बैठे ही उन-उन संसारों के बारे में जान लेती है, लेकिन जानने से फायदा'''जबकि आपको रहना अपने संसार में ही है ''रमेश को यही समझ में नहीं आता।

कोई फर्क नहीं पड़ता अगर वे दोनों अपने-अपने ढंग से जियें'''लेकिन फिर कहीं कोई फर्क पड़ने लगता है। वे कुछ घण्टे जब पति-पत्नी एक-दूसरे के पास होते हैं, तब भी अगर पत्नी के जेहन में दूसरे ही उतराते रहें'''? कभी कभी सुवर्णा बहुत थकी हुई लौटती है, जो बचा वह बच्चों पर लगा दिया। रात को रमेश ने थोड़ा अपनी तरफ खींचने की कोशिश की, तो—'रमेश ! प्लीज'''मैं थकी हूँ, कितना काम था आज !' अक्सर तो वह सिर-दर्द की शिकायत लिये ही आती है। रात होते-होते गोलियाँ गुटकना शुरू कर देती है ताकि'''ऐसा होने लगा है कि अपना सबसे अच्छा वह बाहर के लिए रखती है, बचा-खुचा रमेश के लिए।

चाय ठण्डी हो गयी है। उसे फेंककर रमेश पौट से नयी चाय उँड़ेलता है''' दूसरा कप। सामने घर का बगीचा अलसाया पड़ा है। गेट की वह बड़ी लता अब भी घनी-घनी छायी हुई है पर नीचे से सूख रही है'''सुवर्णा के ध्यान में पता नहीं आया या नहीं। बगीचे का रखरखाव तो वही करती है।

सुवर्णा की कार भीतर घुसी'''हल्की धूल उड़ाती पीछे की तरफ चली गयी। वह आ रही है'''तेज-तेज कदम। रमेश बरामदे से ही उसे आता देखता रहता है— वह हाँफती हुई आती है, धम्म-से खुद को सामने की कुर्सी पर पटक देती है जैसे कि हाथ के पर्स को बगल की कुर्सी में।

कितनी बेकार की होती है ये शाम की मीटिंगें'''समय साढ़े-चार का जान-बूझकर रखा जायेगा ''और फिर बेवजह खींचते चले जा रहे हैं'''फालतू की बात-चीत चलेगी'''रमेश, कैन आइ हैव ए कप आफ टी ?"

"क्या तुम्हारी उस मीटिंग में चाय नहीं मिली ?"

"वह तो पाँच के आसपास थी'''अब तो साढ़े छः से ऊपर हो रहे हैं।"

"ओह !"

यह जानते हुए भी कि सुवर्णा का मतलब है, रमेश चाय बनाकर दे'''रमेश बिना कुछ कहे चाय की ट्रे सुवर्णा की तरफ खिसका देता है। ट्रे में पहले से ही एक खाली कप रखा है, कब से सुवर्णा का इन्तजार करता हुआ'''वह देख ले। रमेश का ट्रे खिसकाना'''सुवर्णा को हल्की-सी कुरेद चुभती है, फिर वह बनाने लगती है।

सुवर्णा की मीटिंग "श्याम मोहन की व्यस्तता। रमेश को इन शब्दो के मतलब थोड़े-बहुत मालूम है। किसी से न मिलना हो कहलवा दो—मीटिंग मे है। मीटिंगो पर विश्वास करना ही पड़ता है क्योकि वे हर दिन, हर वक्त, हर किसी के साथ और हर जगह होती है। आज उसके ही वर्ग के हथकण्डे रमेश को दिक्कत में डाल रहे थे। सुवर्णा की मीटिंग हो भी सकती थी, नही भी।

"तुम्हे समय से घर लौटना चाहिए।" रमेश की आवाज ठण्डी···पर जैसे सुवर्णा को जलती हुई छड छू गयी हो। चाय बनाते-बनाते वह रुक जाती है, पैनी दृष्टि से रमेश को देखती है। उस छोटे से जुमले के ठण्डेपन के नीचे कही सख्ती थी, अधिकार की।

"नौकरी मे चाहिए और चाहने-मायनेवाले शब्द नही होते।" सुवर्णा का जवाब उतना ही सख्त है।

"तुम्हारी मेरी तरह की नौकरी नही है कि देर से आना ही पडे।"

"तुम्हारा मतलब है, मैं ही घर जल्दी नही पहुँचना चाहती ?"

"यह मैं कहाँ कहता हूँ, पर दूसरी औरतें भी तो नौकरी करती हैं, वे कैसे समय पर लौट आती हैं। जो नही आती उनके बारे मे फिर लोग तरह-तरह की बातें करते हैं।"

"मुझे लोगो मे नही तुमसे मतलब है, तुम क्या कहते हो···क्या सोचते हो··· और तुम यह जानते हो कि मैं सब औरतों की तरह नही हूँ, मेरा अपना व्यक्तित्व है··"

बात यही पहुँचकर भटक जाती है, हर बार की तरह। खामोशी के काँटे इधर-उधर से गड़ने लगते हैं। रमेश को कोफ्त है कि वह इन्तजार करता रहता है। सुवर्णा को तकलीफ है कि वह जब थकी-माँदी घर पहुँचती है तो सिर्फ नसीहतें··· ताने···उसके स्वागत के लिए होते हैं। कुछ देर दोनो अलग-अलग अपने-अपने चाय के प्यालो से हिलगे रहते हैं।

"रमेश, कही तुम मुझ पर शक तो नही करते···तुम्हारी बातो में कुछ ऐसी ही बू है, जैसे मैं कही और गयी थी। तुम्हें मालूम है कि मैं तुमसे छिपाकर कुछ नही करती। मेरे सभी दोस्तो के बारे मे तुम्हे मालूम है। मुझे जब उनके साथ जाना होता है, तुम्हें बता देती हूँ···फिर मैं क्यो कहो छिपकर जाऊँगी···मुझे क्या जरूरत !"

"मैं चाहता हूँ कि यह शाम का समय तो साथ बीता करे···फिर रात को तो अक्सर मुझे ड्यूटी पर जाना ही होता है।"

"वह मैं भी चाहा करती हूँ···और यह चाहना ही असली चीज है, समय की पाबन्दियाँ नही, जो तुम थोपना चाहते हो। तुम यह भी जानते हो कि मैं इस तरह के बन्धन पसन्द नही करती।"

वह उठ जाती है, नाराज। अपने जीवन मे किसी किस्म के दखल को वह यों ही कुचलकर रख देती है···कुछ-कुछ इस तरह कि रमेश ही छोटा महसूस करने लगे। रमेश कही नही पहुंच पाता। पहुँचा भी कहाँ जा सकता है, जब सुवर्णा को अपने रास्ते चलना है और रमेश को पीछे छूटते रहना है। कभी अगर दोनों को साथ चलना भी है तो वह पीछे-पीछे घसीटा जाता रहेगा···जैसे आज के लंच मे। सुवर्णा कहा ही करती है कि अगर उसके दोस्त ज्यादा हैं और रमेश के कम हैं या कि उसे घूमना-फिरना पसन्द है, रमेश को नही तो इसके लिए वह क्या कर सकती है। रमेश अक्सर ऐसा महसूस करता है कि उन दोनो के साथ दफ्तर बराबर बना रहता है। घर मे भी वे पति-पत्नी नही, दो सहकर्मी हैं। उन दोनो मे भेद-ही-भेद हैं···टकराहट के ढेरो मुद्दे···जिन्हे कम-से-कम वह दाबे रहता है, इस तरह बचाता है · लेकिन टकराहट हुई तो उसे फिर दोस्ती या प्यार मे बदलने के लिए क्या है उनके पास?

रमेश से यह शिकायत की जाती है कि वह घर के मामलो मे दिलचस्पी नही लेता। अब अगर शुरू से ही सुवर्णा का रवैया ऐसा रहा है कि हर चीज में उसे आगे आ जाना है, अपनी बात ही मनवाना है·· वह चाहे घर में रंग की बात हो या कि बगीचे में कौन पौधा कहाँ लगेगा···तो अब रमेश की भी आदत हो गयी है कि हर चीज को पत्नी पर डाल दे। वह सँभाल ही लेगी···रमेश आगे बढ़ा तब भी, पीछे रहा तब भी। सुवर्णा आगे आये बगैर रह ही नही सकती।

सुवर्णा बाथरूम मे घुस जाती है, अपने आप पर काबू पाने के लिए ··

रमेश की शिकायतें इसलिए है कि उसके मन मे औरत का एक बना-बनाया खाका है, जिसके बाहर की कोई भी तस्वीर उसके गले के नीचे नही उतरेगी, लेकिन रमेश यह भूल जाता है कि वह दफ्तर मे काम करनेवाली औरत है, सिर्फ औरत नहीं। रमेश को उन तनावो का अहसास ही नही जो उसकी पत्नी के लिए हर वक्त मौजूद होते हैं···बराबर, चाहे वह घर मे हो या दफ्तर मे या दोस्तो के साथ—दफ्तर का काम· ·उसके तनाव, बच्चो का खयाल, सामाजिकता निबाहना, घर चलाना, सबकुछ एक साथ। ये हर वक्त सुवर्णा को अलग-अलग दिशाओं मे खींचते रहते हैं। दफ्तर में कोई यह न कह सके कि वह किसी भी तरह आदमी से कम है, घर में रमेश सास-ससुर या कोई भी यह न महसूस करे कि उसके काम पर जाने की वजह से गृहस्थी पर ध्यान नही दिया जा रहा, बच्चो को यह न लगे कि उनकी माँ काम पर जाती है, इसलिए उन्हें पूछनेवाला कोई नहीं। रमेश को क्या है—सिर्फ अपना दफ्तर। उसे तो यह भी पता नही चलता कि घर कैसे चल रहा है—कहाँ से चावल आ रहा है, दाल कब आयी···और यह तो वह सोच ही नही सकता कि सुवर्णा एक अलग व्यक्ति भी है। कुछ उसकी अपनी···निहायत अपनी चीजें भी हों

सकती हैं -जरूरतें, सरोकार या इनकी खोज—अपनी जिन्दगी के बारे में सोचना, पूरेपन की तलाश या कि कुछ भी जिसे वह ठीक-ठीक अपने लिए भी नहीं रख पाती अभी।

सभी रोल बखूबी निबाह ले जाती है वह। कहीं फिसलती है तो पत्नी के रोल में ही और यह इसलिए कि रमेश उस पर जरूरत से ज्यादा निर्भर है। वह एक सीधा-सादा आदमी है, इतना सीधा कि अक्सर सूखा भी लगता है। उसकी अपनी कोई दुनिया ही नहीं। दफ्तर के बाद···बस, घर और बच्चे। उसके अपने कोई दोस्त नहीं। जो बने हैं वे सुवर्णा के मार्फत ही। रमेश कह सकता है कि वह उसे बहुत चाहता है, लेकिन बच्चे होने के बाद बात सिर्फ चाहने-भर की नहीं रह जाती। रमेश को बच्चों में भी कोई दिलचस्पी नहीं। सबकुछ सुवर्णा पर छोड़कर वह इत्मीनान से रहता है। घर में जितनी देर रहेगा, अखबार पढ़ता रहेगा। अक्सर तो नाश्ते की मेज पर अखबार लिये हुए आ जायेगा और उसके बाद दफ्तर···जैसे कि घर से उसका ताल्लुक सिर्फ सोने, खाने और अखबार पढ़ने से ही है। घर की सारी जिम्मेदारी पत्नी सँभाले, बाजार करे, गृहस्थी चलाये; यहाँ तक कि घर में कहाँ क्या सजावट होना है, कौन पर्दे कहाँ लगाने हैं यह भी वही देखे। बच्चे स्कूल जाते हैं या नहीं, पढ़ने में कैसे हैं, कमजोर हैं तो क्या करना है, यह सब बीवी देखे···और वह चाय पीता हुआ हुकुम चला दे कि सुवर्णा को समय से घर आ जाना चाहिए। रमेश घर में पैसा लाता है तो वह भी लाती है···तो फिर हर जिम्मेदारी बराबरी से बाँटना भी क्यों नहीं ? पिछले कुछ महीनों से एक और सवाल बड़ी बारीकी से उनके बीच उठने लगा है···उनमें से किसकी तनख्वाह का कितना हिस्सा खर्च हो रहा है। हो सकता है कि यह सिर्फ बैंकों में अलग-अलग खाते रखने की मजबूरी से हो ! उसे यह सुविधा जरूर है कि वह रमेश के खाते से चाहे जितने पैसे निकालने का फैसला कर सकती है लेकिन रमेश से कहते वक्त संकोच क्यों महसूस होने लगा है. क्या कहीं यह भी है कि दोनों अपने-अपने खातों में ज्यादा-से-ज्यादा पैसा रहने देना चाहते हैं ? घर के मसलों को बातचीत से सुलझाया जा सकता है। बातचीत होती भी है। रमेश हर चीज के लिए तैयार हो जाता है···जो भी, जैसा भी सुवर्णा कहे, लेकिन जब करने की बात आती है तो कुछ नहीं···उसका रवैया वही पुराना ···वैसा ही। ऐसे में लगता है कि खासा ठस आदमी है रमेश। अक्सर सुवर्णा बच्चों के भविष्य को लेकर घबरा उठती है— रमेश का बच्चों से एक बड़ा ही औपचारिक-सा सम्बन्ध है और वह भी उनकी माँ के मार्फत ही, अलग से कोई नहीं। ऐसे में बच्चों की मानसिकता क्या बनेगी, हर चीज के लिए वे किसकी तस्वीर सामने रखकर चलेंगे ? वह खुद बच्चों को चाहे जितना प्यार दे डाले पर क्या पिता की कमी पूरी कर सकती है ? कभी-कभी दहशत होने लगती है कि ऐसे माहौल में पले बच्चों में असुरक्षा की भावना जरूर उग आयेगी ! क्या करेंगे वे जीवन में ? उसे

अपना बचपन याद आता है ''कैसे माँ-बाप एक-एक चीज का ध्यान रखते थे, पता ही नही चलता था कि क्या किससे मिली। उसे अपने माँ-बाप से जो मिला उसका एक-चौथाई भी उसके बच्चो को मिल रहा है क्या ?

अभी तो फिर भी हालात को बदलने की छटपटाहट है, वह भी जाती रहेगी तब ? कितना अजीब है यह सिलसिला कि पहले कशिश साथ होने की होती है। जहाँ साथ हुए, तो धीरे-धीरे एक-दूसरे को हड़प लेने की महीन-महीन लड़ाई चालू हो जाती है—वह रमेश को पानी बना सकेगी या रमेश उसे पत्थर बना लेगा'''

नही, रमेश एक सीधा और नेक इन्सान है, उसकी परेशानियाँ भी इसीलिए हैं '''धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा।

"रमेश'''" वह बाहर निकलकर आवाज देती है। रमेश अन्दर आ जाता है।

"अब छोड़ो भी यार'' हमने साथ-साथ सिनेमा कब से नही देखा। चलो, रात-वाला शो चलते हैं। मैं जल्दी से खाने का इन्तजाम कराती हूँ'' "

पानवहार

सुवर्णा ने घड़ी देखी और फोन लगाया—मैं बोल रही हूँ। उसके वाद हूँ'''हाँ, बोलना कम उधर का सुनना ज्यादा। मैं सामने बैठा था इसलिए वह खुलकर बात नही कर पा रही थी। जो फोन पर था वह फौरन आना चाहता था। सुवर्णा कसमसा रही थी 'आखिर उसने धीरे-से कह दिया—'आ जाओ'।

कुछ ऐसा होने लगा था कि उससे दफ्तर में जब भी मिलने जाओ, मुझे बगैर आमना-सामना हुए इस व्यक्ति से टकराना ही था'''वह जो फोन के पार था। मेरे सामने अपनी तरफ से फोन वह कम ही करती थी'''पर ऐसा हो ही जाता था कि मैं फोन की उन बातो के आसपास होता। जब पहुँचता तब बातें हो रही होती, या जब वहाँ होता तो दूसरी तरफ से फोन आ जाता। यहाँ तक होने लगा था कि घण्टी वजी और मुझे, कुछ-कुछ सुवर्णा को भी अन्देशा होने लगता कि वही फोन होगा''' और वही निकलता जैसे कोई बाकायदे ध्यान रखता हो कि इस वक्त मैं उसके यहाँ हूँगा। वैसा नही था ''तो फिर दूसरे मायने यही निकलते थे कि उस शख्स से सुवर्णा की न केवल रोज बल्कि दिन मे कई बार बातें होना थी। बातें भी वही''' जैसे धीरे-धीरे बर्फ घुल रही हो और अक्सर सुवर्णा की तरफ से एक ही तरह की समाप्ति'''"फोन करूँगी'''

हम अकेले होते थे फिर भी जैसे कोई तीसरा व्यक्ति हमारे बीच लगातार मौजूद रहता था।

फोन पर बात खत्म होते ही मैंने आज्ञा माँगी, सुवर्णा को असुविधा में नही डालना चाहता था। उसने रुकने के लिए एक बार भी नहीं कहा, उल्टे उठकर फौरन खड़ी हो गयी। मुस्कुराहट में फैलती हल्की लिपस्टिक, पिघलती हुई नजरें'''
"अच्छा'''!"

मैं चलने को हुआ। वह पास आयी। एक झटके मे मुझे चिपकाया और जल्दी ही चूमकर छोड़ दिया'''एक हरकत'''निर्जीव, निष्प्रयोजन, कुछ आया न गया। कहाँ डुबाते हुए वे क्षण जो मैंने उसी के साथ अनुभव किये थे, कहाँ यह मशीनी

स्नेह-व्यापार।

"आज तुमने सिगरेटें कम पी हैं"···वह मुझे शावाशी दे रही थी, खुश-खुश ·····"फ़ोन करना"···मुस्कुराता उसका चेहरा। एक हाथ आधा उठा, बाय करता हुआ।

मैं बाहर के गेट पर पहुंचकर ही रुका। सड़क पर इधर-से-उधर दौड़ती सवारियाँ···बसें, स्कूटर, कारें, टैक्सियाँ। लोगों की भीड़ ··हर कोई दूसरे-जैसा, किसी की अपनी कोई पहचान नहीं। आदमी कहीं जाता हुआ भी नहीं दिखता था, जैसे ठेला जा रहा हो···इधर-से-उधर, उधर-से-इधर!

श्याम मोहन की कार इमारत के अहाते में घुस रही थी। एक्जिट सीज़र—एण्टर एण्टोनियो!

श्याम मोहन से मेरा थोड़ा-बहुत परिचय था। बीच की श्रेणी का एक अफसर। फिलहाल मन्त्रालय में तैनात था, इसलिए थोड़ा ज्यादा ही महत्त्वपूर्ण। जैसा इकहरा शरीर वैसा ही व्यक्तित्व, सीधा-सपाट। हर बात को मजाक में लेना और उसी पर बिठाये-बिठाये ओट कर देना, जैसे जिन्दगी की कोई चीज उसे हिला नहीं सकती थी क्योंकि जिन्दगी ही एक बड़ा मजाक थी। लड़कियों को आसपास रखने का शौक था। उनसे रौनक रहती थी, और हर पल तबियत मस्त। बहुत चुनने-चुनाने की भी जरूरत नहीं। उसकी महफिल में कोई भी चलती थी···सुन्दर भले न हो पर सुस्त नहीं होना चाहिए, बस। जिस पद पर वह था उसकी वजह से लड़कियाँ भी उससे चिपकी रहना चाहती थीं--कोई-न-कोई काम, कुछ-न-कुछ उम्मीदें। उनकी मदद का रास्ता निकालना ··इसी में श्याम की होशियारी और दोस्ती थी। जो जमावड़ा श्याम मोहन के यहाँ इकट्ठा होता था, वह हमेशा हा-हा हू-हू करता रहता था, थोड़ा गम्भीर होता था तो सिर्फ श्याम मोहन से अपने काम की बात करते वक्त ही।

जो दफ्तर में, वही घर में। छोटा-सा परिवार। पेंचीदगियाँ एकदम बाहर। पत्नी अपनी नौकरी पर, लड़का-लड़की अपनी पढ़ाई पर सब अपने-अपने में व्यस्त। पढ़ाई की देख-रेख की जिम्मेदारी बाहर मिशनरी स्कूल और अन्दर एक ट्यूटर पर जो एक दिन लड़के को, दूसरे दिन लड़की को पढ़ा जाता था। सरकारी मकान का सर्वेण्ट-क्वार्टर एक परिवार को दे रखा था—आदमी श्याम के घर का बाहरी काम देखे, औरत भीतर का। श्याम की पत्नी का काम इन लोगों से काम लेना। कुशल प्रशासक की तरह जिम्मेदारियाँ बाँटकर श्याम मुक्त था—दफ्तर की फाइलों के लिए और हँसने के लिए। जिसके लिए हर चीज खिलवाड़ और हँसने की थी, उससे अन्तरंग सम्बन्ध होना क्या जोड़ता होगा सुवर्णा में? वे उन्हीं दो सोफों पर बैठेंगे पास-पास, जहाँ थोड़ी देर पहले हम थे···श्याम शायद ठीक उसी जगह, जहाँ मैं था। सोफों के बीच बड़ी गोलमेज पर जो दो कॉफी के खाली प्याले अक्सर पड़े

मिलते थे'''वे'''

आज गोलमेज पर पीछे छूटा हुआ मैं था।

प्रेस-कान्फ्रेंस की रिपोर्ट ले जाइए'''मेरे पास आपके लिए और कुछ नहीं है'' कल कुछ मैटर देंगे'''ड्राफ्ट चाहिए ? दूसरा हिस्सा दो चार दिनों बाद'''

एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा चला आ रहा है। सुवर्णा को सबकी तरफ ध्यान देना है, हर से मुस्कुराकर बात करना है। मन्त्री की प्रेस-कान्फ्रेंस एक घटना होती है। उसकी रिपोर्ट और सम्बन्धित चीजों को प्रेस में देने के लिए प्रेस-कान्फ्रेंस के फौरन बाद का समय बड़ा जानलेवा होता है।

लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं, लेकिन विनय हिलगा हुआ है'''कभी कुछ पढ़ता, कभी डायरेक्टरी में कोई फोन ढूंढता, कभी फोन करता, कभी आनेवाले को देखता, कभी सुवर्णा को बात करने के लिए अपनी तरफ घसीटता हुआ और कभी सिर्फ सुवर्णा के फुर्सत हो जाने का इन्तजार करता हुआ ! _

शहर के बाहर से आया जिसके पास समय-ही-समय होता है।

"कल सवेरे की गाड़ी से मुझे जाना है'''" थोड़ी देर को कमरा खाली हुआ तो उसने सुवर्णा से कहा। मतलब साफ था'''डेढ़ दिनों में आया हुआ है, सुवर्णा व्यस्त रही है। आज आखिरी दिन है जब वे साथ हो सकते हैं।

"हाय अनन्त !" अनन्त के प्रवेश पर उसका बुझा-बुझा स्वागत। सुवर्णा के मन में हल्की खीश। दो दिनों को व्यस्त हो जाओ, फिर सभी एक साथ'''इसीलिए वह समय तय किया करती है ताकि 'ऑर्गनाइज' किया जा सके पर कभी ऐसा नहीं भी हो पाता, दूसरों की वजह से। अनन्त भी आज जरूर मिलना चाहता था। कहना पड़ा—आ जाओ, दफ्तर से थोड़ा पहले निकल लेंगे।

जब से विनय आ टपका, यों ही बिन बताये'''तभी से सुवर्णा उसे कई तरह के कार्यक्रम सुझा रही थी —यहाँ हो आये, वहाँ हो आये, बारह बजे का सिनेमा देख आये, 'अर्थ' पिक्चर अच्छी है, दोपहर बाद वह खाली हो जायेगी'''पर वह बन्दा इशारे को न पकड़ने का जैसे फैसला किये बैठा है। कभी डायरेक्टरी में कुछ ढूंढेगा, इधर-उधर फोन करेगा और फिर कभी खोया-खोया-सा सिर्फ सुवर्णा की तरफ देखता रहेगा'''चेहरा दीन ! शायद डरता है कि एक बार वह गया तो सुवर्णा फिर व्यस्त हो जायेगी, पता ही न चलेगा कि कहाँ है।

सुवर्णा ने विनय और अनन्त का परिचय कराया और फिर अपने काम में लग गयी'''एक के बाद एक आते हुए लोग।

"क्या प्रोग्राम बना तुम्हारा ?" फुर्सत पाते ही सुवर्णा ने विनय से पूछा, सीधा और खड़ा सवाल।

"कल सवेरे जा रहा हूँ।"

"कल का नहीं आज का"···सुवर्णा का स्वर थोड़ा सख्त।

"आज···आज तो कुछ नहीं, बस तुम्हारे साथ।"

"मुझे इन्हें लिफ्ट देना है अभी···साढ़े छः बजे तक घर पहुँच जाऊँगी। तुम सीधा वहीं पहुँच जाओ।"

"ठीक है फिर। मैं एक दोस्त के यहाँ हो आता हूँ। वहाँ अगर फँस गया तो नहीं पहुँच सकूँगा···अगली बार सही।"

विनय ने भी अपनी तरफ से एक झटका छोड दिया। सुवर्णा ने कुछ नहीं कहा और जैसे बगैर परवाह किये हुए बाहर निकलने के लिए पर्स वगैरह उठाने लगी। वह एक फोन और करने के बहाने वहीं लटका रहा···हल्का उदास हो आया।

अनन्त और सुवर्णा बाहर निकल आये।

"एक मिनट रुको···मैं अभी आयी।"

गैलरी से एकाएक वह कमरे मे लौट गयी जैसे कुछ भूल आयी हो।

"देखो···खाना साथ ही खायेंगे," सुवर्णा ने विनय से कहा—"साढ़े छ. बजे तक जरूर पहुँच जाना···मैं इन्तजार करूँगी।"

वह मुस्कुरायी, फिर बाहर निकल गयी, पर्स मे कुछ रखने-जैसा दिखाते हुए।

"परसो इतवार को सास-ससुर आ रहे हैं"—रास्ते मे वह अनन्त से कह रही थी—"कहलवाया है कि मेरे हाथ का बना वैजीटेरीयन खाना खायेंगे। मुझे बनाना आता नही। खाना पकाने की किताबें देखना होगी। इतना काम और इतवार को भी आराम नहीं। काम करनेवाली औरत पर यह साफ-साफ ज्यादती है। बच्चो के इम्तहान भी पास आ रहे हैं, उन्हे पढाना है···और ये मीटिंगें···सेमिनार, जान ले लेंगे···पर छोड़ो वह सब···अच्छा हुआ निकल लिये·· मैं बेहद थकी हूँ। तुम्हारे साथ थोड़ा हल्का हो सकूँगी।"

बाहर सुवर्णा की कार। फिर पास के पार्क की तरफ· 'मैं पीछे छूटे हुए के बारे में सोच रहा था।

"वह गलत समय पर आया···निराश होना पडा।"

"कौन ?"

"वही जो कमरे में था···बेचारा !"

"आई नो ··लेकिन पुराने वक्त के खातिर आखिर कब तक ?"

"पुराना साथी है ?"

"हाँ, रमेश का दोस्त है। कभी,उसका हमारे यहाँ काफी आना-जाना था। एक समय जब वह मुझ पर काफी 'कीन' था। रमेश की तैनाती बाहर हो गयी, तब भी आता-जाता रहा। फिर इसका भी तबादला लखनऊ का हो गया। अभी भी वहीं है, एक-दो दिन को कभी-कभी आ जाता है।"

"मामला कहाँ तक आगे बढ़ा था?"

"कोई खास नहीं।"

उसका खास जुमला जिसकी आड़ में वह आराम से सच···सिर्फ सच बोल लेती थी। मैं कुरेदे जा रहा था।

"क्या कभी साथ सोना भी?"

"हट!"

"उसके अलावा कुछ···'किसेज' ?"

"याद नहीं·· हो सकता है एक-दो बार···" बेहद लापरवाही से उसने कहा, चेहरा पैना हो आया था।

"आपकी पसन्द की दाद देता हूँ!" मुझे विनय में वाकई कहीं से कुछ भी तो ऐसा नहीं दिखा था जिसके लिए उस-जैसी लड़की उसे पास भी फटकने देती।

"मैंने यह तो नहीं कहा कि मैं उसे पसन्द करती थी। क्या रोक सकती हूँ लोगों को? तुम्हें बताया था मेरे साथ यह होता आया है कि मुझे लोग पसन्द करने लगे···और वह भी बड़ी जल्दी···"

उस क्षण वह बहुत साधारण हो आयी थी। क्या था उसके भीतर जो उसे हर किसी ऐरे-गैरे के लिए प्रस्तुत कर देता था, जो इस बात में ही सुख ढूँढता था कि लोग उसे पसन्द करते हैं···साथ ही वह कौन-सी गाँठ थी जो उसे एक हद के आगे फिर किसी से जुड़ने भी नहीं देती थी? जैसे दरवाजा खटखटाकर वह शैतान बच्ची की तरह भाग जाती थी···या कि उसे यह तुष्टि चाहिए थी कि उसके लिए एक साथ कई बेचैन रहें? लोग उसे खूबसूरत मानें, उसके दरबार में आयें, तारीफ करें और वह सबको टाँगे रहे। या कि इस तरह की कोई सुनियोजित योजना नहीं थी, सिर्फ एक बदहवासी थी कि जो भी टकराये उसके साथ खेलते-कूदते चलो···मन का चुनाव करने का समय ही जीवन कहाँ देता है!

"मैंने तुम्हें बताया था, शायद ··" अन्त में उसने कहा।

उसने नहीं बताया था। जितने और भी किस्से होंगे जो यों ही इधर-उधर पड़े होंगे, स्मृति-भण्डार के किसी कोने में। इतनी जल्दी-जल्दी एक स्थिति से निकलकर दूसरी पर जाना, दूसरी से फिर पिछली में लौटना···क्या वह···क्या वह मुझे एकदम नकारकर शाम को विनय के साथ पूर्ववत हो सकेगी?

आसपास बड़े-बड़े दरख्त···ऊपर नीला आकाश और नीचे हरी-हरी घास। वह हवा पीती हुई-सी चलने लगी···कुछ-कुछ उन्मत्त, प्रकृति से जैसे अपना अपनापन लेती हुई। पुरुषों का साथ उसे भटकाता है तो प्रकृति के पास पहुँचकर जैसे वह खुद को पा लेती है। कितना ही कलुषित होकर आये, प्रकृति उसे धो देती है··· ताजा कर देती है। तभी तो वह बार-बार प्रकृति के पास होने को दौड़ती है।

कमरे की खिच-खिच मन से उतर चुकी थी, सुवर्णा हल्की हो रही थी। अब

वह सिर्फ मेरे पास होने को जीना चाहती थी। हम घास पर बैठ गये।

"खूबसूरती क्या वह है जो किसी एक क्षण अनायास ही उग आती है—किसी मे हँसने से, आत्मीय या करुण हो जाने से —या कि कोई स्थायी भाव है जो किसी के साथ बराबर जुड़ा होता है?" मैं उससे पूछ रहा था।

"तुम बहुत बड़ी-बड़ी बातें करते हो···पर पहले यह बताओ कि मुझमें कौन-सी खूबसूरती तुम्हें दिखायी देती है या कि मुझ पर किस तरह उगती है?"

वह हमेशा खूबसूरत होती है उन क्षणों को छोड़कर जब तार्किक बनने या होशियार दिखने की कोशिश में उसके चेहरे पर एक पैनापन आ बिछता है। तब वह सस्ती हो जाती है···अपनी तारीफ से खुश, या कि ऐसे किसी अहसास से ही खुश कि लोग उस पर 'कौन' हैं।

"तुम्हारी खूबसूरती तुम्हारा हिस्सा है। वह उगती नही, होती है·· सिर्फ कभी-कभी चली जाती है थोडी देर को।"

उस क्षण ऐसा लगा जैसे मैं उसे समझने लगा हूँ, धीरे-धीरे। उसके भीतर एक जिजीविषा है जो किसी की भी तरफ लपकती है। मेरे भीतर एक राख है जिसमें बाहर से कोई चिंगारी आकर चमक पैदा कर दे तो कर दे 'वर्ना वह राख ही रहेगी। उसका गुण चमकना था, मेरा बुझा रहना। उसकी-जैसी चमक के लिए एक होशयारी भी चाहिए थी ··न सोचने की होशयारी! उछल-कूद में क्या मिलता है, क्या यह सब उसे और भी विभाजित नही करता चला जाता···इस तरह की बातें वह नही सोचती थी। एक पढी-लिखी खूबसूरत महिला, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर···वह देखती है कि सभी उसके पैरो पर लोटने के लिए आतुर हैं···तो वह भी सभी को अपने ढंग से देखना, इस्तेमाल करना चाहती है···जहाँ तक और जैसे वह चाहे। नारी के सदियो से चले आ रहे बन्धनों के बाद न केवल मुक्ति का अहसास बल्कि मनुष्यो की दुनिया को अपने ढंग से चलाने के सुख की प्रतीति भी।

"तुम्हारे दोस्तो को मैं बहुत पसन्द नही कर पाया। जितनो से मिला वे सब थर्डरेटर हैं, मुझे मिलाकर।"

"मैं ऐसा नही मानती। सबमें कोई-न-कोई खास बात है, बाहर से नही दिखता।"

"अच्छा, तुम्हारे दोस्तो मे कोई ऐसा भी है, जिसकी कमी तुम्हें इतना खटके कि बर्दाश्त के बाहर हो जाये।"

"पता नही···ये सब बातें मेरी समझ मे नहीं आतो। मैं इस तरह सोच नहीं पाती।"

धूल की एक पर्त मेरे चेहरे पर आ बिछी। वह अब भी किसो मिसमिसाहट के बीच थी···कुछ ऐंठ रहा था उसके भीतर।

"शायद मेरे अन्दर भी वह है···बिल्ली···कैंटिश···यू नो···लेकिन मैं सोचर्त

हूँ वह मेरा बहुत ही फालतू पक्ष है। मेरी कशिश अपने जीवन के लिए कुछ बेहतर ढूंढने की है।"

"और तुम उसे इस तरह ढूंढ रही हो ?"

"मुझे लगता है मैं एक सफर पर हूँ···शायद कुछ मिल जाये या फिर इसी अहसास पर आ जाऊँ कि जो कुछ मुझे मिलना है वह मुझे अपने भीतर ही ढूंढना होगा।"

"यह तो कितने दार्शनिकों ने हमारे लिए तरह-तरह से सोचकर रख ही दिया है।"

"पर यह तो तुम मानते हो कि हर किसी को अपने दर्शन की खोज खुद ही करनी पड़ती है। किताबी दर्शन एक सीमा के आगे काम नहीं आते। हमें अपना सलीब खुद ही ढोना पड़ता है।"

हम खेल रहे हैं अपने-अपने खेल···दो बच्चों की तरह, जो एक साथ खेलते हुए भी अपने-अपने खेलों में डूबे होते हैं—एक खेल उनका अपना अलग, एक साथ-साथ। मैं छटपटाता हूँ, सिर्फ उसी से खेलना चाहता हूँ। वह खेलती है पर जब-तब बड़े बच्चे की तरह फटकार भी देती है···चुप! इस तरफ मत देखो, अपना खेलो···

लौटते हुए थोड़ा एकान्त पा मैंने उसे बांधना चाहा।

"श्याम···नहीं, देखो···कोई आ जायेगा, श्याम···प्लीज़।"

एक बार नहीं, दो-दो बार उसके मुँह से श्याम निकला। ऐसी आत्मीय स्थिति में भी आपके साथी के मन में किसी दूसरे की कल्पना उठे, आपको इस तरह मिटा-कर रख दे? श्याम···प्रेम का प्रतीक! राधा को हर जगह श्याम दिखते हैं···थोड़ी देर मेरे मुँह में एक कड़वी हँसी चकलयाती रही, फिर मैं बुझता चला गया।

उसने कुछ नहीं देखा, या कि वह कहीं और पहुँच चुकी थी। रास्ते में कार रोककर उसने मुझे उतारा और 'बाय' करके चली गयी।

सुवर्णा घर पहुँची तब तक विनय आ चुका था। वह जानती थी कि तमाम नाराजगी के बावजूद वह सीधा पहुँचेगा, साढ़े छ. के पहले ही। ऐसा सभी के साथ होता है, सुवर्णा को होल्ड है उन पर···लेकिन उस वक्त अपनी वह ताकत थोड़ा खली ही उसे। विनय के लिए थोड़ी खीज भी मन में उठी पर उसे दबा लिया सुवर्णा ने।

"हाय विनय! अच्छा किया तुम आ गये। दफ्तर में कोई-न-कोई आता ही रहता है। अपने लिए ज़रा भी समय नहीं।"

"अनन्त से छुट्टी मिल गयी ?"

"मैंने पांच मिनट में नहाया, तब तक तुम ये पत्रिकाएँ देखो।"

फरफराते हुए अपने कमरे में, कभी-कभी अकेले होना भी कितना अच्छा लगता

है ! वार्ड-रोब खोलकर अपना पर्स फेंका और पहनने के लिए कपड़े निकालने लगी। नीली साड़ी देखकर खयाल आया कि विनय को नीला रंग पसन्द है…तो नीली ड्रेस ही निकाल ली और बाथरूम में घुस गयी। नहाते समय आदतन कोई धुन गुनगुनाती रही। पता नहीं कितना समय लगा' 'वह चाहे भी तो नहाने में जल्दी नहीं कर सकती, पानी गिरता है तो लगता है जैसे जिस्म पर कोई उंगलियां फेर रहा हो। नहाकर निकली तब तक रमेश आ चुका था।

"विनय आया है।" रमेश ने कमरे में आकर बताया।

"हाँ ''मैंने खाने पर बुला लिया। तुमसे भी इत्मीनान से मुलाकात हो जायेगी। कहता था कि कल जा रहा है।"

"पर आज तो तुमने श्याम को बुला रखा है।"

"सचमुच ? यह कैसे ? मैं भूल ही गयी थी।"

"और मैंने रवि को बुला लिया।"

"हैट बफून…क्या जरूरत थी ?"

"एक तुम्हारा तो एक मेरा।"

"कोई और नहीं मिला तुम्हें ? रमेश प्लीज, थोड़ा बैठो विनय के पास। मैं तैयार हो लूँ। डिनर के लिए भी समझाना होगा।"

रमेश चला गया। वह मेकअप के लिए बैठ गयी…निश्चिन्त। ड्राइंगरूम से विनय और रमेश की बातें सुनायी पड़ती थीं पर सुवर्णा के कानों तक पहुँचते-पहुँचते बातें मात्र आवाजों की उठती-गिरती टुकड़ियां रह जाती थीं। कुछ बज रहा था… बस, ऐसा भान होता था।

रामू को हिदायतें ''चिकिन, दाल, मीट, कीमा ''आलू की सब्जियां—सूखी और रसेदार दोनों, सादा दही और खीरे का रायता भी। रामू भुनभुनाया—पहले से खबर दी होती तो सामान दोपहर को ले आता। कोई बात नहीं—अभी चला जाये। मीट दो तरह का और सब्जी चार जरूरी हैं। सब्जी बनाने में ज्यादा परेशानी हो तो एक की जगह भर्ता बना डाले। बाजार जा ही रहा है तो मछली भी देख ले। रामू खीझ रहा था। सुवर्णा अपनी गलती महसूस कर रही थी पर घर फोन करने का समय ही कहाँ मिला।

जैसा खाने का मीनू—दिखाने को ज्यादा, जरूरी कम --वैसी ही बातें। सुवर्णा ने आते ही रमेश को उठा दिया…जैसे खो-खो खेल में बैठे हुए खिलाड़ी को पीछे से खो करके उठा देते हैं, हक्का-बक्का वह एक क्षण को खड़े होने की जगह ही तलाशता होता है। रमेश थोड़ी देर को वहाँ हिलगा रहा कि बात का छूटा सिरा तो पूरा कर लेता, पर सुवर्णा ने आते ही जैसे वह सब कच्च-से काट दिया था।

"तुम दिन-भर के गन्दे हो, जाकर जल्दी कपड़े बदलो !" सुवर्णा की आखिरी झिड़की, रमेश को भीतर जाना पड़ा।

एकदम वैसा तो नहीं "पर कुछ-कुछ वैसा क्षण, जिसको पाने की कोशिश विनय दो दिनों से कर रहा था। मुश्किल से हाथ आया था, इसलिए पाते ही लपक लिया।

"तुम्हारी कमी बहुत महसूस करता हूँ, तुम भी कभी याद करती हो ?"

"हाँऽऽऽ" सुवर्णा ने 'हाँ' को खींचते हुए कहा, नजरें थोड़ा पिघलती हुईं। "तुम्हारे लिए भर्ता बनवा रही हूँ। मेरी साड़ी देखी"'नीला रंग तुम्हें अच्छा लगता है न"'?"

विनय कृतज्ञता मे मुस्कुराया।

"तुम्हारे तो कई दोस्त हैं ?"

"हैं तो ! तुम कैसे हो वहाँ"'दोस्त बने ?"

"हाँ"'पर तुम्हारे-जैसा एक भी नहीं।"

सुवर्णा हँसी। तभी श्याम और रवि आ गये"'उन्हें देखकर विनय का चेहरा धुँधला गया। सुवर्णा स्वागत के लिए उठ गयी। हाय"'हाय होने लगा। रवि सभी का दोस्त था, विनय का भी। हर-एक से परिचय से थोड़ा ऊपर ही"'इतना कि अनौपचारिक हो सके, उसके बाद फिर वह और उसकी बेतकल्लुफी होती थी। जैसे उसके स्थूल शरीर में पैण्ट से कमीज बाहर निकल-निकल पड़ती थी, वैसे ही उसकी बेतकल्लुफी यहाँ-वहाँ फिरती थी। इधर ज्यों-ज्यों वह रिटायरमेंण्ट के करीब होता जाता था उसका बोलना, बात-बात पर हँसना और अपनी तारीफ खुद करने की आदत"'ये तेजी से बढ़ते चले जा रहे थे। जैसे उसे कोई बराबर गुदगुदाता रहता था।

"सो कम्पनी बहादुर !" आते ही रवि विनय की तरफ बढ़ा और उसकी पीठ पर धौल जमाते हुए बोला—"अवध की शामें रास नहीं आ रहीं"'तो पुरानी कौलनी का दौरा करने निकले हो"'" जवाब का इन्तजार किये बगैर वह श्याम और सुवर्णा की तरफ मुड़ गया जो एक तरफ खड़े-खड़े फुसफुसा रहे थे ' "बस यही मुश्किल है। दो मिले कि दुनिया समझो खत्म ' हमारे लिए नहीं, आपके लिए ही। अपुन के लिए तो बाहर चकाचक है, यह गोंद-जैसी लिस-लिस फुसुर-फुसुर नहीं"' पर सुवर्णा ! नये टैस्ट के लिए क्रिकेट टीम का एलान कब करनेवाली हो तुम"' और कप्तानी की इज्जत किसे बख्शोगी"'"

"रवि, कभी तो सीरियस हुआ करो ?" सुवर्णा थोड़ा तीखी हुई।

"सीरियस"'? माय डियर, व्हेयर टु और व्हेयर फ्रौम"'कौन है सीरियस" जरा बताओगी ? इस देश के नेता या कि अफसर, पति या पत्नी, बाप या कि बेटा, तुम या कि श्याम" या कि रमेश, कौन सीरियस है"'ग्रे शैल आय बी औनर्ड विद अ रिप्लाई ?"

"अच्छा, अभी बैठो तो"'मैं ड्रिंक के लिए कहती हूँ।"

है ! वार्ड-रोब खोलकर अपना पर्स फेंका और पहनने के लिए कपड़े निकालने लगी। नीली साड़ी देखकर खयाल आया कि विनय को नीला रंग पसन्द है'''तो नीली ड्रैस ही निकाल ली और बाथरूम मे घुस गयी। नहाते समय आदतन कोई धुन गुनगुनाती रही। पता नहीं कितना समय लगा'''वह चाहे भी तो नहाने मे जल्दी नहीं कर सकती, पानी गिरता है तो लगता है जैसे जिस्म पर कोई उँगलियाँ फेर रहा हो। नहाकर निकली तब तक रमेश आ चुका था।

"विनय आया है।" रमेश ने कमरे में आकर बताया।

"हाँ ''मैंने खाने पर बुला लिया। तुमसे भी इत्मीनान से मुलाकात हो जायेगी। कहता था कि कल जा रहा है।"

"पर आज तो तुमने श्याम को बुला रखा है।"

"सचमुच ? यह कैसे ? मैं भूल ही गयी थी।"

"और मैंने रवि को बुला लिया।"

"दैट बफून'''क्या जरूरत थी ?"

"एक तुम्हारा तो एक मेरा।"

"कोई और नहीं मिला तुम्हें ? रमेश प्लीज, थोड़ा बैठो विनय के पास। मैं तैयार हो लूँ। डिनर के लिए भी समझाना होगा।"

रमेश चला गया। वह मेकअप के लिए बैठ गयी'''निश्चिन्त। ड्राइंगरूम से विनय और रमेश की बातें सुनायी पड़ती थीं पर सुवर्णा के कानों तक पहुँचते-पहुँचते बातें मात्र आवाजों की उठती-गिरती टुकड़ियाँ रह जाती थीं। कुछ बज रहा था''' बस, ऐसा भान होता था।

रामू को हिदायतें'''चिकिन, दाल, मीट, कीमा ''आलू की सब्जियाँ— सूखी और रसेदार दोनों, सादा दही और खीरे का रायता भी। रामू भुनभुनाया—पहले से खबर दी होती तो सामान दोपहर को ले आता। कोई बात नहीं—अभी चला जाये। मीट दो तरह का और सब्जी चार जरूरी हैं। सब्जी बनाने में ज्यादा परेशानी हो तो एक की जगह भर्ता बना डाले। बाजार जा ही रहा है तो मछली भी देख ले। रामू खीझ रहा था। सुवर्णा अपनी गलती महसूस कर रही थी पर घर फोन करने का समय ही कहाँ मिला।

जैसा खाने का मीनू—दिखाने को ज्यादा, जरूरी कम वैसी ही बातें। सुवर्णा ने आते ही रमेश को उठा दिया'''जैसे खो-खो खेल में बैठे हुए खिलाड़ी को पीछे से खो करके उठा देते हैं, हक्का-बक्का वह एक क्षण को खड़े होने की जगह ही तलाशता होता है। रमेश थोड़ी देर को वहीं हिलगा रहा कि बात का छूटा सिरा तो पूरा कर लेता, पर सुवर्णा ने आते ही जैसे वह सब कच्च-से काट दिया था।

"तुम दिन-भर के गन्दे हो, जाकर जल्दी कपड़े बदलो !" सुवर्णा की आखिरी झिड़की, रमेश को भीतर जाना पड़ा।

एकदम वैसा तो नहीं पर कुछ-कुछ वैसा क्षण, जिसको पाने की कोशिश विनय दो दिनों से कर रहा था। मुश्किल से हाथ आया था, इसलिए पाते ही लपक लिया।

"तुम्हारी कमी बहुत महसूस करता हूँ, तुम भी कभी याद करती हो ?"

"हांऽऽऽ" सुवर्णा ने 'हां' को खींचते हुए कहा, नज़रें थोड़ा पिघलती हुईं। "तुम्हारे लिए भर्ता बनवा रही हूँ। मेरी साड़ी देखो···नीला रंग तुम्हें अच्छा लगता है न···?"

विनय कृतज्ञता में मुस्कुराया।

"तुम्हारे तो कई दोस्त हैं ?"

"हैं तो ! तुम कैसे हो वहाँ···दोस्त बने ?"

"हाँ···पर तुम्हारे-जैसा एक भी नहीं।"

सुवर्णा हँसी। तभी श्याम और रवि आ गये···उन्हें देखकर विनय का चेहरा धुँधला गया। सुवर्णा स्वागत के लिए उठ गयी। हाय···हाय होने लगा। रवि सभी का दोस्त था, विनय का भी। हर-एक से परिचय से थोड़ा ऊपर ही···इतना कि अनौपचारिक हो सके, उसके बाद फिर वह और उसकी बेतकल्लुफी होती थी। जैसे उसके स्थूल शरीर में पैण्ट से कमीज बाहर निकल-निकल पड़ती थी, वैसे ही उसकी बेतकल्लुफी बही-बही फिरती थी। इधर ज्यों-ज्यों वह रिटायरमेण्ट के करीब होता जाता था उसका बोलना, बात-बात पर हँसना और अपनी तारीफ खुद करने की आदत···ये तेजी से बढ़ते चले जा रहे थे। जैसे उसे कोई बराबर गुदगुदाता रहता था।

"सो कम्पनी बहादुर !" आते ही रवि विनय की तरफ बढ़ा और उसके पीठ पर धौल जमाते हुए बोला—"अवध की शामें रास नहीं आ रहीं···तो पुरानी कौलनी का दौरा करने निकले हो···" जवाब का इन्तजार किये बगैर वह श्याम और सुवर्णा की तरफ मुड़ गया जो एक तरफ खड़े-खड़े फुसफुसा रहे थे। "बस यही मुश्किल है। दो मिले कि दुनिया समझो खत्म' 'हमारे लिए नहीं, आपके लिए ही। अपुन के लिए तो बाहर चकाचक है, यह गोंद-जैसी लिस-लिस फुसुर-फुसुर नहीं··· पर सुवर्णा ! नये टैस्ट के लिए क्रिकेट टीम का एलान कब करनेवाली हो तुम··· और कप्तानी की इज्जत किसे बख्शोगी···"

"रवि, कभी तो सीरियस हुआ करो ?" सुवर्णा थोड़ा तीखी हुई।

"सीरियस···? माय डियर, व्हेयर टु और व्हेयैर फौम···कौन है सीरियस" ज़रा बतायेंगी ? इस देश के नेता या कि अफसर, पति या पत्नी, बाप या कि बेटा, तुम या कि श्याम "या कि रमेश, कौन सीरियस है"'प्रे शैल आय बी ऑनर्ड विद अ रिप्लाई ?"

"अच्छा, अभी बैठो तो···मैं ड्रिंक के लिए कहती हूँ।"

वे बैठ गये, अलग-अलग सोफों में। रमेश भीतर से आया, स्वागत के लिए।

"हाय ' मिस्टर हस्बैण्ड'''डियर हबी'' हबीबी'' भाई शादी करे तो बीबी खूबसूरत हो, रौनक बराबर रहती है।" रवि फिर चहका।

"हलो श्याम हाउ आर यू ' ?" रमेश ने श्याम से हाथ मिलाया।

"ठीक हूँ। तुम कैसे हो ? सुना तुमने ' ग्रैण्ड लेडी वापस आ रही है।"

"यू मीन मिसेज गुलाटी, कमिंग एज व्हाट ?" रमेश उत्सुक हो आया। श्याम की यही खासियत थी। उसे पहले पता होता था, रमेश के विभाग की तैनातियों के बारे में भी, जैसे कि आदेश उसके आसपास ही होते हों। ऐसी ही जानकारियों की हवा छोड़कर श्याम एकाएक महत्त्वपूर्ण बन बैठता था।

"वह मारा पापड़वाले को"---रवि बीच में आ गया---"अजी ग्रैण्ड लेडी और कहाँ बैठेगी ! हथिनी को सीट भी अपने कद और वजन की चाहिए। वैसे रमेश, तुम्हारी खुफिया ने कभी यह पता किया कि यह जो मिस्टर गुलाटी है ' वह वाकई मिस्टर गुलाटी है ? मतलब शादी वाकई हुई कभी' कोई सुबूत' गवाह ? सिर्फ फोटो नहीं चलेंगे। वह तो मोहब्बत करनेवाले गजरे वगैरह डालकर होटल के कमरों में फटाफट ' बेबी विनय ! तुम उदास क्यों हो, माना कि इन दिनों तुम्हारे यहाँ सूखा चल रहा है, पर चलो' 'यह देखो ड्रिंक आयी। उठाओ, चढ़ाओ देखो फिर कैसी नदियाँ बहती हैं ''"

रवि हँसने लगा। श्याम और रमेश मिसेज गुलाटी की तैनाती के गम्भीर प्रश्न पर उलझे हुए थे। इस महिला की वापसी और प्रशासन 'फिर देश के भविष्य पर उसका असर 'दोनों तरफ से कुछ-न-कुछ चल रहा था। उनके चेहरे गम्भीर थे। सुवर्णा ने खुद को मेज पर प्लेटें बिछाने में लगा लिया था। रवि ड्रिंक के गिलासों में सोडा-बर्फ डालने लग गया।

"तुम तो पिओगे नहीं ' " उसने रमेश से पूछा --"विकेट-कीपर क्यों पियेगा ! तुम श्याम ? तुम तो लोगे ही छलिया बाबू, हर बार ही नये अवतार लेते हो आप बेबी ? क्वाटर या कि हाफ कर दूँ, हिम्मत करके'''"

"मैं अपने लिए बना लूँगा।" विनय ने धीरे-से कहा।

"और हुमायूँ क्या करेगा ''कुमायूँ में पैदा हो और बदायूँ में मर जाये ! मैडम, आप दूर से अपना ताजमहल या कि ताशमहल देखेंगी या कि थोड़ा-बहुत'''"

"जी नहीं' 'थैंक्स। मेरे पास अपनी ड्रिंक पहले से ही है 'छाछ'''लस्सी !" सुवर्णा आकर विनय के बगल में बैठ गयी और श्याम और रमेश की तरफ इशारा किया'''"क्या बातें हो रही है उधर, सोच सकते हो ?"

"इस बार तुम्हारे साथ अकेले ?"

"अगली बार ' " सुवर्णा ने धीरे-से कहा, फिर तेज आवाज श्याम और रमेश की तरफ फेंकी---"क्या अभी भी मिसेज गुलाटी'''?

"नहीं, हम तो यह सोच रहे थे कि भारत को पड़ोसी देशों के मामलों में किस हद तक दखल करना चाहिए ?"

"आई नो···अगर रूस कर सकता है तो भारत क्यों नहीं, हम किस सुपर-पावर से कम हैं ? क्यों विनय, तुम क्या सोचते हो ?"

रवि ने श्याम और विनय के गिलास उन्हें पकड़ाकर अपना गिलास मुंह में लगाया।

"चियर्स जेण्टिल मैन।"

"लेडी भी हैं यहाँ।" विनय ने कहा।

"क्या वाकई ? चलो, वे पी नहीं रहीं···इसलिए···"

"विनय, क्या तुम भी भारत को औरों की तरह सिर्फ एक भूखा और कमजोर राष्ट्र मानते हो ?" सुवर्णा ने पूछा।

"नहीं, बात वह नहीं है," विनय ने गम्भीरता से शुरू किया। "बात भीतर कहीं जाकर सस्कृति की है ··कल्चर "

"कल्चर होती क्या है···क्या मैं पूछ सकता हूँ ?" श्याम और रमेश इधर को आ गये।

"साइंस का उलटा जो कुछ है, वह कल्चर है।" रमेश था।

"नहीं," विनय बोला, "जो चीजें आपको दिखायी दे रही हैं, जिन्हें आप छू सकते हैं—यह गिलास, घर, जीव, बीवी···वे आपसे छीन लिये जायें तो फिर आप जिस चीज पर टिकेंगे वह कल्चर है।"

"क्या बात है।" रवि उचक पड़ा—"क्या महीन कताई की है बर्खुर्दार ने··· पर सवाल है कि हर वर्ष छब्बीस जनवरी को राजपथ पर जो परेड होती है वह कल्चर है कि···"

"रवि तुम्हारे रहते कभी बात कहीं नहीं पहुँच सकती।"

"कौन कहाँ पहुँच सकता है मदाम, आप ही कहाँ पहुँचीं···तो वह तो सिर्फ बात है। हमारे यहाँ बड़ी ताक़त बनने से ज्यादा बड़ा मसला है अपने भूखों को खाना खिलाना···और हर बार पड़ोसी देश बड़े आराम से एक बलवा मचाकर अपनी आबादी का एक बड़ा हिस्सा हिन्दुस्तान में ठेल देते हैं···कितने चालाक हैं, भाई लोग !"

"रवि ने एक पते की बात कही है।" रमेश ने शाबाशी दी।

"आज के ज़माने में यह सब कैसे रोका जा सकता है ?" श्याम था।

"जैसे आदमी और औरत का मिलना कैसे रोका जा सकता है···क्यों ? सुपरपावर··माइ फुट···भाई गिलासवालो, बातों के साथ-साथ ज़रा गिलास पर भी नज़र रखो। हमारी मोहतर्मा मशहूर हैं। थोड़ी ही देर में डंके पर चोट होने लगेगी – खाना तैयार है, खाओ और जाओ···"

"मैं देखती हूँ...क्या तैयारी है ?"

"देखा ?" रवि ने खुद को शाबाशी दी, श्याम और विनय को अपने-अपने गिलास गुटकने को मजबूर किया और नया बनाकर उनके सामने रख दिया।

"मैं गलत नही होता हुजूर...आँखो के रंग पहचानता हूँ, इसलिए कि सबको देखता हूँ...आप जनाबों की तरह नही कि सिर्फ इक-दूजे के लिए ! चुनचुन चाचा चने और चूं-चूं के मुरब्बे को चाय के साथ चबाते-चबाते चौपड़ पर चौपट हो गये...और छोड़ गये अपने भतीजे रवि को दुनिया की बकवास बर्दाश्त करते !"

"तुम्हें हर बातचीत बकवास लगती है, रवि ?" श्याम ने गम्भीरता से पूछा।

"आप लोगो की तो जरूर ही।"

"जब 'इन्टलैक्चुअल्स' की बातें बकवास है तो फिर..." विनय ने शिकायत की।

"जी हाँ। 'इन्टलैक्चुअल्स' की ही बकवास है।"

"उसमें तो फिर आप भी शामिल है।" श्याम ने कहा।

"यह इन्टलैक्चुअल की जाति तो साली कॉक्रोच की तरह बढ़ रही है...जिसने भी अंग्रेजी बोलना सीख ली, हो गया। गलती से मैं भी गलत सोहबत में पड़ गया कि फिर निकलना ही नही हो पा रहा...और मदाम है कि सारी दुनियाँ को देखेंगी, हमारी तरफ एक नजर भी नहीं।"

सभी हँस पड़े, खाने की मेज के पास से सुवर्णा भी। पार्टी गरम हो गयी थी।

"तुम्हारा क्या खयाल है यह जो मैच भारत जीता, उसके पीछे कोई साँठ-गाँठ थी ?"

"जी नही, साँठ-गाँठ तो दो राजनेताओ के बाकायदा तय करके अलग-अलग रास्ते जाने मे होती है।"

"चुनाव मे ये लोकदल और जनसंघ के कुछ चास बनते हैं क्या ?"

"हम वैस्टइण्डीज से क्यों हार जाते हैं ?"

"रूस अफगानिस्तान पर ही नही रुका रहेगा...देखना।"

"सुपर स्टारवाली फिल्मे पिट रही हैं...यह अच्छी बात है।"

"मुक्केबाजी गयी, स्टारडम गया...मजा आ गया।"

"हमारा देश भी क्या यार बस जनता टाइप के गठबन्धन बनाता और तोड़ता रहता है...क्या कुछ और नही हो सकता यहाँ ?"

"जहाँ हम-जैसे निखट्टू हो वहाँ..." रवि हँसा।

"तुम तो एक पल को भी सीरियस नही होते। होते तो देखते कि दरअसल हम सब अपनी-अपनी मुक्ति की तलाश में भटक रहे हैं।"

"हाँ...निर्वाण...बुद्धवाला निर्वाण...या कि गीता का मोक्ष, मोक्षा ! निर्वाणा !!"

"गीता में मोक्ष नहीं···वहाँ तो निष्काम कर्म की बात है। लार्ड कृष्णा ने कहा है···"

"और एक्ज़िस्टेंशियलिज्म ? वह भी तो यही है। आज का हैमलेट···क्या हम कह सकते हैं कि हम खुश हैं ?"

"क्यों नहीं हैं ?"

"हाँ···बच्चे उधर सो रहे हैं, मेज पर खाना है···हम थे, तुम थे और समाँ रंगीन, समझ गये न··"

"मुझे तो शिकायत की कोई वजह नजर नहीं आती। दरअसल जब हम आज को ऐन्जॉय नहीं करते···कल की ही सोचते रहते हैं तो खुश नहीं हो सकते, मैं तो···"

"तुम्हें मालूम है खुशी क्या है ?"

"क्यों नहीं···जो हम अभी हैं यही खुशी है···हर पल खुशी है।"

बहस गरमी पकड़ती गयी। सभी तरह के विषय, हर तरह की दलीलें, हर दिशा की चिन्ताएँ···व्यक्तिगत, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय। रवि इस बीच चार पैग चढ़ा गया। श्याम और विनय दूसरे पैग के बाद सावधानी से चल रहे थे। रमेश श्याम से मिसेज़ गुलाटी के बारे में कुरेद रहा था···उसकी बैंकिंग क्या है···इतनी जल्दी राजधानी से बाहर जाकर फिर वापस लौट आने का रहस्य ?

खाने की घोषणा हुई। श्याम और विनय अपने-अपने गिलास खत्म कर मेज पर। रवि ने उन्हें लानत भेजते हुए अपने लिए एक और गिलास बनाया और उसे मेज पर साथ लेता आया। खाने की मेज पर विश्वयुद्ध की सम्भावना, बोर्ग-मैकनरो··क्रिकेट·पाकिस्तान के हथियार, रेलवे बोर्ड के चेयरमैन की बर्खास्तगी···सब कीमा और गोश्त के साथ इधर से उधर होते रहे, जनरल नौलेज की किसी सड़ियल किताब की तरह।

"रवि बहकने लगा है" सुवर्णा ने धीरे-से रमेश से कहा।

"इतना पीना उसके स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं है।" श्याम ने जोड़ा।

"तुम उसे मना क्यों नहीं करते ?"

"वह किसी की सुनता है ?"

"क्या होगा उसका ?" विनय की चिन्ता थी।

"एक दिन शाहजहाँ की बेगम मुमताजमहल ने कहा कि जहाँपनाह मुद्दत हुई चने का शोरबा चखे" रवि अपनी धुन में ऊबड़-खाबड़ रास्ते चला जा रहा था, अब सभी के लिए उलझन नहीं दया का पात्र।

"रमेश···तुम जल्दी से 'स्वीट-डिश' लो और रवि को घर छोड आओ ! उसे जितना खाना था, खा चुका। तब तक बाकी धीरे-धीरे खाना खत्म करते हैं।" सुवर्णा ने कहा।

"मैं छोड़ आता हूँ।" श्याम बहादुरी से आगे बढ़ा।

"नहीं-नहीं'' रमेश छोड़ आयेगा, पास ही तो है।" सुवर्णा बोली।

रवि के गले के नीचे किसी तरह थोड़ी स्वीट-डिश खिसकायी गयी और उसे फिर बहकाकर उठाया गया।

"अच्छा चलते हैं, फिर साहब-बहादुरों को हिन्दुस्तानी पसन्द ही नहीं आते" फिर मिलेंगे ओ. के. वेवी'''बाय श्याम'''थैंक्स सुवर्णा'''रमेश'''अरे तुम तो साथ चल रहे हो।"

रमेश और रवि के जाने के फौरन बाद श्याम भी उठ गया।

"तुम आराम से खाओ," सुवर्णा ने विनय से कहा, "तब तक मैं श्याम से कुछ जरूरी बातें कर लेती हूँ मेरे डेपुटेशन का मामला चल रहा है।"

"मेरी भी एक फाइल '" विनय रुँआसा हो आया।

"तुम अपनी बात अलग से कभी कर लेना उससे ' फिलहाल मैं अकेले मे बात करना चाहती हूँ, वह जल्दी जानेवाला है।" सुवर्णा ने सख्ती से कहा।

विनय का मुँह लटक आया। श्याम और सुवर्णा बाहर बगीचे मे निकल गये। बगीचे में ओस की महीन-महीन नमी थी और आधी रात का उतरता हुआ एकान्त।

"क्रिएट्स अ मीन यार' 'दिस रवि। इसे क्यों बुला लिया ?"

"रमेश ने'''यह बकवकिया पता नहीं उसे क्यों अच्छा लगता है।" सुवर्णा ने कहा।

"और यह लखनवी ?"

"यह तो पीछा ही नहीं छोड़ता। रमेश का पुराना दोस्त है। एक-दो दिनों को आता है, रमेश उसे हमेशा खाने पर जरूर बुलाता है।"

"खासा जायका है।"

श्याम और सुवर्णा करीब-करीब सटकर चलने लगे। तभी बरामदे में विनय निकल आया और वहीं से आवाज लगाने लगा।

"फोन है' फोन, जल्दी आओ!"

"कौन है। पूछ नहीं सकते ?" सुवर्णा ने चिल्लाकर कहा।

"फोन।"

"अरे भाई गलत नम्बर होगा। किसका है ?"

"फोन'''फोन '" विनय रट लगाये था।

ईडियट! श्याम भुनभुनाया, फिर जोर से कहा—"बोल दो, सब घर छोड़ गये।"

"नहीं, बोलो—होल्ड करें, आती हूँ।" सुवर्णा ने कहा।

बायीं तरफ आम के पेड़ों की आड़ थी' वे अँधेरे में उतर गये। श्याम ने

सुवर्णा को चिपकाना चाहा। सुवर्णा ने प्रतिरोध नहीं किया, चेहरे पर तरल भाव ' लेकिन अगले क्षण एकाएक वह छिटककर अलग हो गयी

"रमेश ? तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?"

रमेश को सामने के गेट से आना था, शायद कार बाहर ही खड़ी कर आया था।

"आम का जो पेड़ हमने लगाया था उसे देख रहा था कि कुचल तो नहीं गया, गाड़ी इधर से मुड़ी थी।"

"जाओ देखो, फोन है। इतनी रात तुम्हारे ही फोन होते हैं।"

"डार्लिंग, तुम्हारा भी हो सकता है अनन्त, बड़े साहब । तुम देखो। मैं श्याम को 'सी ऑफ' करता हूँ। मेरा हो तो मैं घर पर नहीं हूँ।"

"कार कहाँ छोड़ आये ?"

"बाहर है, सोचा शायद किसी और को छोड़ने जाना हो ?"

सुवर्णा श्याम को बाय करके चली गयी। श्याम रमेश के साथ अपनी कार की तरफ बढ़ गया।

बरामदे में विनय था भनभनाया खड़ा हुआ, कब से। सुवर्णा की बराबरी से आते हुए उसने सुवर्णा को एक कोने में छेंक लिया।

"मेरे लिए तुम्हें जरा भी वक्त नहीं मिला।"

"क्या करूँ विनय प्रेस-कान्फ्रेन्स ! मैं इसीलिए तो यह विभाग छोड़कर डेपुटेशन पर जाना चाहती हूँ। अगली बार आओगे तब यह झमेला नहीं होगा'' फोन है।" सुवर्णा ने निकलना चाहा।

"गलत नम्बर होगा।" विनय सुवर्णा को अपनी तरफ खींचने लगा।

"विनय, क्या करते हो'''हटो'''आसपास नौकर हैं अच्छा लगता है ?"

"कोई नहीं आता, सब समझते हैं। तुम मेरे लिए समय ही नहीं निकाल पाती''"

विनय ने सुवर्णा को अपनी तरफ घसीटकर चूम लिया। बाहर कार के स्टार्ट होने की आवाज आयी। सुवर्णा ने विनय को करीब-करीब धक्का देकर खुद को अलग किया और भीतर फोन की तरफ बढ़ गयी।

कितने दिन सुवर्णा से बात किये बगैर गुजर गये। फोन करने का मन तो होता था पर पेशतर इसके कि भीतर बलवती इच्छा रूप ग्रहण करे'' कोई जैसे उसके बनते आकार को फाड़ देता। सब फिर तितर-बितर'''मैं अपना खालीपन ढोता चला जाता, जैसे वर्षों से आदत हो। उसकी तरफ से भी फोन नहीं आया, व्यस्त होगी— दस तरह के काम और दसियों तरह के लोग !

आखिर उसका फोन आया।

"क्या हो गया' 'इतने दिनो कोई खबर नही 'बाहर थे क्या ?"

"नही।"

"परेशान हो ?"

"नही। दूर होते हुए भी भांप लेती है सुवर्णा।"

"लगते तो हो!"

"थोड़ा हो सकता हूँ, पर कोई बात नही।"

"कोई बात कैसे नही'' मेरी वजह से हो ?"

"नही। हम परेशान होते हैं तो सिर्फ अपने कारण।"

"मिलोगे ?"

"नही।"

"फोन भी नही करने की सोची थी ?"

"हाँ।"

"मिलने आओगे आज ?"

"नही 'अभी कुछ दिनो अपने-आपसे ही जूझना चाहता हूँ।"

"देखो'''"

उस एक छोटे-से शब्द में तब कितना दर्द सिमट आया था, दूसरे की कितनी चिन्ता। अजीब बात है—फोन पर वह जो कह लेती है, उसे या ठीक वैसा सामने नही कह पाती। ऐसा लगता था जैसे वह करीब-करीब रोनेवाली थी'' उस पार।

"तुमसे बहुत सारी बातें करने का जी करता है। तुम मेरे बहुत प्यारे दोस्त हो'''एक तुम्ही हो जिससे मै सबकुछ कह सकती हूँ, जिसके पास होकर हल्की हो सकती हूँ। आओगे ?"

मैं विशिष्ट बना दिया गया था, टालना मुश्किल हो गया।

पहुँचा तो उसके पास कुछ लोग बैठे थे। मुझे देखते ही उसकी आँखों मे चमक आ गयी, खोया कुछ मिल जाने की खुशी। जल्दी ही उसने आगन्तुकों को विदा दिया।

"बाहर चलते हैं ''यहाँ कोई-न-कोई आता रहता है।"

वह उठ खडी हुई, अपना पर्स आदि सँभालना शुरू कर दिया। जैसे ही हम बाहर निकलने के लिए कमरे के दरवाजे पर पहुँचे कि उधर से श्याम मोहन आ गया ''एकदम फिल्मी इत्तिफाक!

'हलो-हलो' हुई'''मेरी भी। सुवर्णा का चेहरा एकाएक हल्का काला पड़ गया उस क्षण।

'आओ-आओ' करती हुई वह मुड़ी, मेज का चक्कर लगाती हुई वापस अपनी

कुर्सी पर पहुँची और कौफी के लिए फोन लगाने लगी। फटाफट तीन कौफ़ी के लिए कह दिया। अक्सर हमें छिपने के लिए कैसे छोटी-छोटी चीजों की आड़ ढूँढना पड़ती है।

कितनी छोटी दुनिया ! वही लोग···एक तंग घेरे मे भिनभिनाते हुए, स्थितियाँ भी घूम-फिरकर हू-ब-हू वही। उस रोज मैं श्याम मोहनवाली स्थिति में था। आनेवाले कल को फिर यह हो सकता था कि वे निकलते होते, जब मैं घुसता। तब हम इस स्थिति को बचा ले गये थे, आज किसी अदृश्य शक्ति ने आदमी की चतुराई का बाजा बजा दिया था। अब भी मामला उतना गया-गुजरा नही था। हम तीनों साथ बैठकर कौफी पी सकते थे ··कौफी में बात को बहा सकते थे, पर श्याम मोहन को बर्दाश्त नही हो रहा था···मेरा वहाँ होना उतना नही जितना शायद हमारा साथ-साथ बाहर के लिए निकलते होना। वह बैठा नही, कुर्सी को हाथो से पकड़े थोड़ी देर खड़ा रहा ··खोया-सा, चेहरा तनाव से खिचा हुआ। उसने यह जताने की एक कमजोर-सी कोशिश की कि वह किसी को ढूँढने-ढूँढते ही इधर चला आया था। जल्दी ही कुछ काम-आम का बहाना करके वह चला गया।

सुवर्णा का चेहरा अब भी भकभकाया हुआ था। मैं सामान्य रहा था, अब स्थिति का कुछ-कुछ मजा भी लेने लगा था···क्योकि आज मैं अन्दर था और श्याम बाहर। श्याम की जगह मैं होता तो मेरी हालत बदतर ही होती।

"चलो चलें ··" श्याम मोहन के जाते ही जैसे सबकुछ झटकते हुए वह बोली।

"कौफी ?" मैंने याद दिलाया।

मना करने के लिए उसने फोन लगाया, फिर तीन की जगह दो लाने के लिए कह दिया।

"क्या सोच रहे हो ?" उसने मेरी तरफ देखा।

"जो तुम सोच रही हो।"

वाकई हम दोनों सिर्फ गये हुए के बारे मे ही सोच रहे थे।

"श्याम मोहन परेशान था।" मैंने कहा।

"हाँ, समझ मे नही आता, वह क्यो इतना परेशान हो गया।"

ये मोटी-मोटी बातें वह नही समझती या फिर समझती तो है पर उनके होने को अस्वीकार करती चली जाती है···जैसे इन चीजो से बहुत ऊपर उठी हो। उठी भी हो सकती है, लेकिन तब उसका अपना चेहरा क्यों काला हो आया था ?

"वह जानता है तुम्हारे बारे में···कि हम दोस्त हैं, मिलते-जुलते हैं।" उसने आगे कहा।

फिर वही बात···वे ऊँचाइयां जिन्हें हम छू लेते हैं···क्या इसे सिर्फ दोस्ती ही कहा जायेगा ? आदमी और आदमी तो ज्यादा अच्छे दोस्त होते है, एक-दूसरे को

बेहतर समझते हैं···वे क्यों नहीं उन ऊँचाइयों तक उठ पाते ? दोस्त सिर्फ एक लचीला शब्द है, इसलिए आज के अक्लमन्द आदमी के लिए बेहद सुविधाजनक। हम दोस्त जरूर थे पर उतने ही जितना दोस्ती की आपसी समझ का तत्व प्यार में घुला हुआ होना है। हो सकता है उसकी तरफ से हमारा सम्बन्ध मात्र दोस्ती का ही हो··· पर फिर जहाँ हम दोस्ती की सीमाओं को पार करने लगते हैं, वह हिचकती क्यों नहीं, मुझे टोकती क्यों नहीं ? निश्चित ही उसकी मर्जी के खिलाफ कोई उसके साथ एक सीमा के आगे नहीं जा सकता। आखिर आज भी कहीं तो रोके हुए ही है वह मुझे, दीपक और सोम को भी कहीं रोका ही था।

"इस तरह तुम पर कितना जोर पड़ता है, कभी महसूस किया ? यह विभक्त व्यक्तित्व, रोल्स तेजी से बदल-बदलकर जीना···इसमें जो भागमभाग है, उसका क्या असर पड़ता है···कभी सोचा ? तुम अपनी ताजगी तेजी से खो रही हो।" मैंने कॉफी पीते समय कहा।

"मैं ऐसा नहीं मानती। विभक्त क्या है इसमें···तुमसे कुछ बता नहीं पायी, परेशान थी। पता नहीं मेरे साथ क्यों ऐसा होता है···मेरे लिए मुश्किल होता है लोगों को रोकना···मैं किसी का दिल नहीं दुखाना चाहती।"

"खूबसूरत लड़कियों के साथ ऐसा होता है। सब खूबसूरती का साथ चाहते हैं, अलग-अलग मकसद के लिए, लेकिन दूसरी लड़कियाँ कैसे रोकती है···और तुम भी आखिर कहीं-न-कहीं तो रोकती ही हो।"

मैं ऐसे बात कर रहा था जैसे कि उसका सरक्षक होऊँ···शायद अनायास ऐसे रोल से चिपक गया था जिससे खुद को आश्वस्त कर सकता कि श्याम मोहन से ज्यादा उसका नजदीकी मैं ही था···पर क्या वाकई था ?

"जो यह दिल दुखाने की बात तुम करती हो तो क्या तुम इसे रोक पाओगी, जब तुम सभी से इतना घनिष्ठ होने की कोशिश करोगी ?"

"आदमी के कैसे चार-चार बराबरी के घनिष्ठ दोस्त होते हैं।" उसके स्वर में तीखापन और व्यंग दोनों थे।

"वह आदमी-आदमी की बात है···आदमी-औरत की नहीं। वहाँ भावनाएँ आ जाती हैं।"

"क्यों आ जाती हैं···क्यों परेशान हो उठा श्याम मोहन ? आई एम नॉट सम वन्स पर्सनल प्रोपर्टी यार···"

वह एकाएक तैश में आ गयी। वह एक पढ़ी-लिखी महिला···अपने पैरों पर खड़ी, अपने बारे में सोचने-समझने की कुव्वत रखनेवाली और यहाँ लोग उसे अपनी-अपनी तरफ खींचने के लिए रस्सी लिये खड़े थे। पति को वह ऐसा कोई अधिकार दे भी दे पर बाकी दूसरों की क्या हैसियत थी ?

"देखो···" वह कह रही थी···"तुमको आज मैंने यहाँ बुलाने की जिद की···

आज जब तुम इतने अच्छे मूड में नहीं हो, मेरी तरफ से थोड़ा उचटे-उचटे भी हो' ' तो यह बता दूँ कि तुम्हें मुझे वैसे लेना होगा जैसी मैं हूँ "और अगर तुम सचमुच यह सोचते हो कि तुम्हारे लिए यह मुश्किल है तो यही वह मुकाम है जहाँ से हम अलग हो जायें। पीछे का इतना कुछ याद करने को तो रहेगा। आखिर हमने साथ-साथ कुछ बहुत अच्छे लम्हे जिये हैं। जहाँ तक मेरा सवाल है मैं उन लम्हों को बहुत कीमती मानती हूँ "

फोन पर वह कितना पिघली-पिघली थी और यहाँ उस समय मेज के पार से अपनी शर्तें मुझ पर फेंक रही थी जैसे हम दो व्यापारी थे जो किसी समझौते पर बहस कर रहे थे। चीजों को सीधा-सीधा लेना तार्किक बातचीत प्रेक्टिकल पार्ट! पीछे सोचने को इतना रह जायेगा उसकी भी क्या जरूरत? उसे वैसा ही लेना जैसे कि वह थी 'यह रमेश के लिए ठीक हो सकता है जिसे हर हालत में उसके साथ रहना है 'पर प्यार में कहीं-न-कहीं आदर्श का पुट भी तो मिला होता है, तभी तो उसमें खींचने की ताकत होती है? वह आगे ले जाता है, सिर्फ बाँधे नहीं बैठे रहता।

"आज मैं साफ-साफ बातें कर लेना चाहती हूँ। अगर हममें से किसी को भी लगता है कि हम सिर्फ निबाह रहे हैं तो अलग हो जाना ठीक। जो इतने अच्छे से इतने दिनों चला उसे क्यों घिसटने दें?"

"तुम क्या सोचती हो हम एक ही समय में कई से ऐसे अन्तरंग सम्बन्ध रख सकते हैं या कि हर नये रिश्ते से पुराने को सिर्फ काटते चले जाते हैं, जाने-अनजाने?"

"क्यों नहीं रख सकते? हर सम्बन्ध के शेड्स अलग-अलग होते हैं। जिन्दगी जो ऐसे सम्बन्ध बनाने का मौका देती है 'उन मौकों को ठुकरा देना जिन्दगी का अपमान करना है, अधार्मिक होना है।"

"तुम्हारे इस तरह नये-नये सम्बन्ध बनाते रहने से रमेश को जरूर शिकायत होती होगी।"

"क्यों होगी? मैं उसे काफी देती हूँ। शिकायत उसे हो जिसका कुछ छीनकर मैं कहीं और दे आती होऊँ। मैं रमेश या अपने घर की कीमत पर कुछ नहीं करती। अब इसका क्या किया जाय कि रमेश की जरूरतें ही इतनी कम हैं और मेरे पास इतना ज्यादा है देने को···"

"क्या एक साथ कई से प्यार भी किया जा सकता है?"

"हर सम्बन्ध प्यार ही तो नहीं होता · प्यार मुझे चाहिए भी नहीं। जीवन में बहुत मिला कॉलेज के दिनों से ही···जिसे देखो मुझे प्यार करना चाहता था। अब मुझे एक दोस्त की तलाश है। तुम एक अच्छे दोस्त हो सकते हो, जिससे आदमी अपना सारा कुछ कहकर हल्का हो सकता है। प्यार में फिजूल का तनाव होता है

जिसने जिन्दगी का कुछ भला नहीं होता, जबकि दोस्ती में हम वाकई बहुत कुछ ले-दे सकते हैं।"

क्या इस तरह हिसाबी-किताबी ढँग से जीवन को देखा जा सकता है मैं सोच रहा था प्यार इसीलिए व्यर्थ क्योंकि उसमें तनाव है, पर हम किसी चीज का मूल्यांकन ऐसे ही तो करेंगे कि वह जीवन में क्या जोड़ता या घटाता है।

"तुम्हारी वह एक रिश्ते से दूसरे को काट देनेवाली बात ऐसा बिल्कुल नहीं है। मैं कुछ भी नहीं करती। कभी-कभी जोरों से लगता है कि मेरे भीतर धुन्ध-ही-धुन्ध है पता नहीं क्या हूँ मैं और मेरे साथ क्या होता है ·"

अक्सर आदमियों का यह समाज सुवर्णा को कीचड़-भरा दलदल लगता है · ऊपर से हरा-हरा लेकिन एक सीढ़ी नीचे ही घिन लगी काई, कूड़ा-करकट · कीचड़··· सबका मिला-जुला कुछ। बड़े विश्वास से वह कहीं पैर रखती है कि खप्प से नीचे धँसता चला जाता है। एक लिस-लिस-सी चिपचिपाहट उसे घेर लेती है। हर आदमी में घूम-फिरकर एक ही कशमकश—उसे पालतू बना लेने की। श्याम अच्छा आदमी है, उम्र में उससे पन्द्रह साल बड़ा। वह सोचती है कि श्याम के लिए यह काफी था कि सुवर्णा उसके पास हो · साथ-साथ किसी रेस्तोरों में कॉफी वगैरह पी ली, कुछ बातें हो गयीं · योगा या राजनीति की, कभी सुवर्णा ने श्याम को थोड़ा मुग्ध-जैसा होकर देख लिया, कभी थोड़ा छेड़खानी कर लेने दी हो गया। सुवर्णा का क्या जाता है अगर इतने में ही कोई व्यक्ति अपनी उम्र के बावजूद नौजवान महसूस कर लेता है ·यह क्या कि वह परेशान हो गया। श्याम कैसे यह सोच सकता है कि सुवर्णा सिर्फ उसी के ही साथ उठे-बैठेगी· ·

गोद में आ गिरे किसी छोटे-से फूल की तरह मासूम है अनन्त यह अनन्त! जरा-सी बात पर दुःखी हो जायेगा और फिर भीतर-ही-भीतर घुटता रहेगा, बेवजह। उसका व्यक्तित्व जैसे उलझनों के रेशों से ही बुना हुआ है। बेहद ईमानदार है, अपनी उलझनों में भी ईमानदार। इन्हीं उलझनों के बीच कमल की कली की तरह फूटती चली आती है कोई उड़ान सुवर्णा को वह झलकाती हुई, जो उसने कभी नहीं सोचा था। अनन्त की भावनाएँ उसे एक औरत की तरह नहीं बल्कि उसे एक व्यक्ति की तरह लेती हैं, उसके पूरेपन में। उसे उठाकर ऊपर ले जाती हैं · अनन्त के साथ अक्सर ऐसा महसूस हुआ है कि सुवर्णा एक वीणा है जिसमें अनन्त तरह-तरह का संगीत निकालता है · जैसे सुवर्णा के व्यक्तित्व का वह पहलू खुल रहा है जो अब तक नहीं खुला। वह सिर्फ वही नहीं है जो दिखती है।

जिस दुनिया की बातें अनन्त किया करता है वह उसे छू नहीं पाती। अक्सर वह दुनिया अनन्त की पकड़ से भी बाहर होती है···पर यह अहसास ही कि ऐसी

कोई दुनिया है —यही जैसे जीवन को कितना वजनदार बना देता है। जिस अनन्त-रगता की यात अनन्त करता है, डूबकर जिन ऊँचाइयों को कभी छू लेने का अपना अनुभव बताता है···वह भी ऐसा करना चाहती है, पर हो नही पाता। अनन्त को देखते हुए कभी-कभी लगता है कि वाकई खुद को बिखेर देना कितना आसान है··· समेटना, समेटकर रखना कितना मुश्किल ! भौतिक दुनिया, दुनियादारी मे रहे आना कितना आसान है, लेकिन जिसे कोरी फिलोसफी, हवाई खयालों की आसान दुनिया कहते हैं ·वह दरअसल कितनी मुश्किल है ! यह भी कि वाहर से जो उसकी अपनी जिन्दगी बँधी दिखती है शादी, नौकरी, घर मे वह दरअसल कितना बिखरी है और अनन्त की जो वाहर से बिखरी, लावारिस दिखती है वह भीतर से कितना कसी है।

कभी-कभी उसे अनन्त से डर लगता है। वह जैसे देखता है, बातें करता है · एक-एक शब्द महसूस करते हुए, उसमें भीगते हुए। ऐसे मे वह अपना जीव पिघलते हुए महसूस करती है, कोमलता के झीने-झीने ताने-बाने मे सिहर-सिहर उठती है··· लगता है जैसे वह कैद होती जा रही है···भावनाओ की कैद अगर उसने खुद को ढीला छोड़ा तो शिकार हो जायेगी। अमरीकी औरतें कहती भी हैं—प्यार आदमी की सबसे बडी साजिश है। कितना अजीब है यह कि श्याम से एकदम फर्क होते हुए भी अनन्त भी कही उसकी ही तरह सोचता है···वही अधिकार ··सिर्फ उसकी हुकूमत ·क्यों ?

वह अपने बालों को खीच रही थी ·बेहद परेशान, नारी मुक्त···पर लाचार, अक्ल की सारी पाबन्दियो के बावजूद !

"तुमने मुझे सँभालने की जिम्मेदारी ली थी न पिछली बार सँभाला भी था। सबकुछ धुल गया था उस दिन, लेकिन आज इस तरह पराया मान गालियों की बौछार शुरू कर दी तुमने।"

"मुश्किल होता है हमेशा ··मैं भी तो चाह सकती हूँ कभी कि कोई मुझे सँभाल ले।"

उजले चेहरे पर बडी-बडी काली आँखें ··आँसू कगार तक आकर लौटते हुए · भीगे पंखों-सी फडफडाती पलकें। हम एक-दूसरे को सँभालने के लिए टटोल रहे थे, लेकिन दूसरा सँभाले इसके लिए जिस सम्पूर्णता के साथ खुद को समर्पित कर देने की अपेक्षा होती है वह हममे से कोई पूरा नही कर पा रहा था। हमारा अहं आड़े आ रहा था· ·वह तो गुस्सा बैठी ही थी और मैं पता नही किस हिचक में जकड़ा बैठा था।

"कितनी बार सोचा था तुम्हें बताऊँगी···जिस दलदल मे फँस बैठती हूँ !"

कितनी तरह की चुभनें, खरोंचें उस चेहरे पर उछली हुई थी तब। तकलीफ में खिंचा उसका चेहरा बेहद मासूम हो आया था।

उसके अपने जीवन में आने के बाद मैं क्यों नहीं किसी और से उलझ सका? शायद उसने मेरा खालीपन पूरा-का-पूरा भर दिया था, जब कि मैं उसे कहीं इधर-उधर से ही भर पाया था। कमी मेरी ही रही होगी।

"कहीं बाहर चलोगी?"

"आज नहीं''किसी दूसरे दिन, अगर तुम कहोगे''चलो तुम्हें छोड़ देती हूँ।"

उसने मुझे घर के पास छोड़ दिया। चलते समय एक औपचारिक मुस्कान और बाय। फोन करना यह उसने नहीं कहा।

उसकी वे तेज-तेज बातें—तार्किक विश्लेषण की आरी जीवन पर चलाना पर बीच-बीच में उभर-उभर आती वह असहायता'''बूंद-बूंद रिसती हुई, पैने चेहरे पर भावनाओं का बिछता हुआ रंग'''

बसन्त पाप था। उसका रंग खिलता चला आ रहा था—धीरे-धीरे।

फोन पर सुवर्णा के स्वर में वही पुरानी मिठास। मैं शाम को कहीं चलने को पूछता हूँ, वह दूसरे दिन पर टाल जाती है। फिर उस दिन सबेरे ही फोन आ जायेगा—वह अचानक व्यस्त हो गयी है। दो-तीन दिनों बाद का तय होता है, उस दिन भी पहले फोन कर लेने के लिए कहा जाता है। फोन करता हूँ तो कोई दूसरी वजह'' इस तरह कितनी ही बार टला। मिलने की मेरी व्यग्रता बर्दाश्त के बाहर हुई तो आखिर उसने कह दिया—आ जाओ अभी। पहुँचा तो दरबार-ए-आम। सहकर्मियों और परिचितों के बीच चलते चाय-कॉफ़ी के दौर, दरम्यान चलती बातचीत'' कुछ भी। बीच-बीच में आक्रामक तर्क विपरीत दिशाओं से छोड़े गये बाणों की तरह फनफनाते, दौड़ते और टकराते थे' 'ऊपर उठती हुई हा-हा हू-हू की धूल। 'हाय अनन्त'' उसने सभी से परिचय कराया। न उन लोगों को कोई उत्साह, न मुझे ही। सब अपनी अहमियत, अपने महत्त्व के नशे में व्यस्त 'मस्त। सुवर्णा का चेहरा इत्मीनान की मध्यम दीप्ति में स्थिर। मैं बैठा रहा। उसकी तरफ से खुद को उस ऊलजलूल सिलसिले से मुक्त करने की कोई जल्दी नहीं। मैं उकताकर उठा तो रोका भी नहीं उसने—'ओ. के. बाय''सी. यू.'''

अगली बार भी ठीक वैसा ही हुआ तो मुझे कुछ खटका। तब मैंने गौर किया कि इन तमाम दिनों उसने अपनी तरफ से फोन नहीं किया है। किया तो सिर्फ मिलने का प्रोग्राम काटने की सूचना देने के लिए। अगली बार मैं उसकी किलेबाजी तोड़ने के खयाल से बगैर बताये ही पहुँच गया। वह कमरे में नहीं थी। समय काटने के

लिए मेज पर पड़ी एक पत्रिका उलटी-पलटी। फोन के पास रखी उसकी इंगेजमेण्ट डायरी-जैसी चीज हाथ में आ गयी। कुछ तारीखों के पन्नों पर कार्यक्रम दर्ज थे''' ज्यादातर औपचारिक बैठकें। आज का पन्ना खाली था। यूँ ही कुछ पेज उड़ाता चला गया तो शुरू का पन्ना खुल गया। 'इम्पोर्टेण्ट डेट्स' उसकी लिखावट में था''' मेरी जन्मतिथि भी'''उसके आगे एक छोटा-सा 'ए'। लिस्ट मे छ-सात और नाम। एक के आगे एस''श्याम का होगा। जन्मदिन पर किस गरमाई से सुवर्णा सवेरे-सवेरे फोन करती है'''दूसरी तरफ कोई कितना प्रफुल्लित हो जाता है कि साल की इतनी तारीखों मे से उसके जन्म की तारीख सुवर्णा को याद है। विशिष्टता महसूस कराने के पीछे कितनी मामूली-सी तैयारी !

मुझे अजीब-सा लगा। ऐसी कोई दूसरी चीज मेरे हाथ से न टकरा जाय''' इस डर से मैंने डायरी बन्द कर दूर सरका दी। थोड़ी देर में वह आयी' 'चेहरे पर व्यस्तता का भाव 'उसी के बीच मेरे लिए 'हाय' और फिर सीधा फोन पर। कुछ काम के लिए अपने मातहत को बुला लिया '''"सॉरी' कब आये'''संसद-सवाल का जवाब तैयार कराना है''चाय मँगाती हूँ ?"

मैंने मना कर दिया, कहा कि जाऊँगा तो उसने रोका नही। बोली—बहुत काम है इन दिनो। डायरी देखने के बाद खासतौर से मुझे कुछ ऐसा लगने लगा था जैसे पिछले दो-तीन हफ्ते हमारे बीच जो होता रहा है, उसमे बाकायदे एक सिलसिला था। पीछे कोई सोच भी जरूर होगा। वह हमारे सम्बन्ध को विशेष से सामान्य बना देना चाहती है'''या स्वय को उन जंजीरों से मुक्त करने मे लगी हुई है, जिनसे उसने खुद को अनजाने ही बाँध लिया था'''कौन जाने अपने दूसरे अन्तरंग मित्रों के साथ भी वह ऐसा कर रही हो।

उसकी मेज पर इन दिनो पानबहार का एक डिब्बा रहता है। बीच-बीच में चम्मच से मुँह मे डाल वह भुरभुरा लेती है। कोई आता-जाता भी उसी चम्मच से नोश फरमाये। उसने मेरी तरफ भी डिब्बा सरका दिया''''"गन्दी आदत'''" मैंने धीरे से टोका।

"इसमें गन्दा क्या हुआ ?" वह हैरान थी।

मेरी कुछ और कहने की इच्छा नही हुई। लौटते हुए सोचता रहा कि कहाँ दो प्रेमियों का एक-दूसरे का जूठा खाने का सुस्वाद और कहाँ इस तरह मेज पर रखा पानबहार सबके साथ भुरभुराना !

22 जुलाई, 1978

हम अलग होने के क्रम मे हैं। हम जब अलग होगे तो मुझमे एक बड़ा गड्ढा उभर आयेगा। उसके साथ ऐसा कुछ नही होगा क्योकि उसके यहाँ छोटे-बड़े कई गड्ढे हैं

जो भरते, खाली होते रहते हैं'''इसलिए न तो वह उस तरह भर उठती है, न ही उस तरह रीत जाती है। उसके यहाँ हवाएँ चलती हैं'''कभी 'क' की तरफ तो कभी 'ग' की तरफ'''ऊपर से यह कि उसे अपनी दुर्बलता दिखाना अच्छा नहीं लगता। कोई उसको जिन्दगी से जाने को हुआ तो वह उसका पीछा नहीं करेगी'''उसे समय मे ठेल देगी। कुछ अन्तराल के बाद या तो वह जा चुका होगा या फिर वापस आ जायेगा, उसकी शर्तों पर, उसका स्नेह पाने के लिए। वह हर हालत में खुद को बड़ा रखेगी।

काफी स्वास्थ्यवर्द्धक दृष्टि है यह'''आज के आदमी की, अपनी हिफाजत के लिए।

मुझे यह मान लेना चाहिए कि वह अपने जीवन मे स्वतन्त्र है। जमाने से चला आ रहा पुरुष का दम्भ कि वही स्त्री का जीवन चलाये'''इसके खिलाफ आज की पढी-लिखी औरत का विद्रोह है यह। उसका हृदय क्या कोई भूखण्ड है जहाँ सिर्फ एक का राज हो? उलटे यह क्यो नही कि दो-चार आदमियों के दिल उसकी कौलनीज हो जहाँ उसका झण्डा फहराता हो? इसमें एक ही गडबडी है जो हर तरह के साम्राज्यवाद मे होती है'''वह कही भी पूरी तरह स्वीकृत नही हो सकेगी।

मेज के दराज के दूसरे कागजो में ही उलझा-खोया पत्रनुमा टुकड़ा'''निरीह। लिखावट परिचित'''अनन्त की। सुवर्णा उठा लेती है।

सुवि,

गये दो-तीन हफ्तो से जिन अनुभवो से गुजरना हुआ, उनका मतलब निकालना उद्देश्य नही है मेरा, न ही किसी तरह की दलीलबाजी। तुम्हारी तरफ से तो ऐसा कुछ और भी नही होगा क्योंकि जो तुम करती हो उसकी आलोचना करना तुम्हारे सोच की थैली में ही नही है। जो मैंने इधर महसूस किया है, रातो-रात जो भोगा है, पत्ते की तरह जो हिल-हिल गया हूँ, उखडकर गिरने को हो आया हूँ'''उस पर न सोचूँ तो खुद पर ज्यादती करूँगा।

तुमने कभी कहा था—'वी बिलौंग'। कितना कुछ कहते हैं ये दो शब्द कि अगर कोई इन तक उठ सके'''पर क्या हो पाया ऐसा? अगर तुम मेरे जीवन में इतनी विशेष हो कि एकमात्र हो तो मैं भी तुम्हारे जीवन में जब तक वह नहीं हुआ''''वी बिलौंग' हो सकेगा क्या? मेरी फडफडाहट शायद वह विशेष ही बनने की रही है'''अपनी किसी विशेषता की वजह से नही, यह मैं देता हूँ इसलिए। सिर्फ एक सहज प्यास'''पर तुम'''तुम्हें सुविधा इसमे है कि तुम्हारा पहिया अलग चले, मेरा अलग। परिधि के जिस हिस्से पर हम टकरायें वहाँ सँन्दे, उसके बाद भूल जायें। मैं तुम्हारा सबकुछ समेटना चाहता हूँ, पर तुम्हें हमारे अपने बीच तुम्हारे

किसी दूसरे साथी का जिक्र उठना ही असुविधाजनक, अप्रासंगिक लगता है। अपने जीवन के दूसरे पक्षों में तुम मेरी दखल नही चाहती, जबकि मैं अपनी छोटी-छोटी-सी चीज भी तुम्हारे सामने फैला देने को आतुर रहता हूँ।

जहाँ जुगलबन्दी की बात हो वहाँ दोनो वाद्यो को एक-जैसा कसा होना होगा। मैं अपने मन से तुम्हारे अतिरिक्त सबको हटा देना चाहता हूँ और तुम अपने साम्राज्य को सिकुड़ने नहीं देना चाहती। वजहे--मेरे प्यार में कमी, मेरे न होने पर एकाएक खाली हो जाने का डर या लालच कुछ भी हो सकती हैं। इसीलिए मेरे साथ होते हुए भी किसी का फोन आते ही तुम इधर से बुझकर उधर जल उठती हो। मेरे साथ अत्यन्त आत्मीय क्षणों मे भी तुममे किसी दूसरे की सुधि लिपटी रही आती है। तुम एक को देती हो तो दूसरा रिक्त हो जाता है···फिर तुम उधर दौड़ती हो। तुम्हे यह भ्रम है कि तुम्हारे पास देने को इतना ज्यादा है कि···लेकिन अगर ऐसा ही है तो मुझे फासले का अहसास क्यो हो रहा है···कभी-कभी क्यों ऐसा लगता है कि हमारे बीच के सूत्र टूट गये है। तुम अक्सर बौखलाहट की एक तस्वीर दिखती हो और मेरे क्लेशों मे एक यह भी जुड़ जाता है कि मैं तुम्हारी बौखलाहट को बढ़ाता ही हूँ, कम नही कर पाता। इस देने के चक्कर मे तुम्हे 'मैनेज' करना पड़ती है 'एन्ट्री'—कब कौन आ सकता है, कब कौन नही···

मुझे कोई अधिकार नही कि तुमसे कहूँ कि तुम इस साम्राज्य को समेटो। तुम्हारे हिसाब से यह अधिकार मुझे या किसी को ही क्यो हो···पर अपने लिए मुझे निश्चित ही यह अच्छा लगता है कि कोई एक हो जिसे मैं अपनी जिन्दगी के बाबत सभी अधिकार सौंप दूँ ··रूमानियत ही सही यह, पर आज की दुनिया मे ऐसा कोई सम्बन्ध कितना दुर्लभ है कि आप उसे सबकुछ सौंप सकते हैं···कितनी बड़ी सम्पत्ति है यह ?

पर जहाँ लोग ज्यादा ही चतुर हों, ऐसे सम्बन्धो का चलन हो कि जिन्हें पान-बहार की तरह चबाया और खत्म किया···जिन्दगी की सुरक्षित एकरस दिनचर्या के साथ-साथ थोड़ी-सी चटपटाहट भी · वहाँ मेरी बात उलटी ही समझी जायेगी।

कैसे कहूँ सुवि ! कि यह सब ठीक नही है। मैंने तुम्हे अपने जीवन मे कितना बड़ा रूप दे डाला है, जिन गहराइयो मे तुम्हारे सहारे उतर लेता हूँ, जिन ऊँचाइयो को छूता हूँ ··वे सब मुझे तुम्हारे साथ चतुर बनने नही देंगे। तुम्हे भी शायद मेरे साथ चतुर होने में मुश्किल ही होगी। अभी अलबत्ता कोशिश कर रही हो तुम। पर जो *थरथराहट हमे आजकल झकझोरे हुए है यह जैसे जिन्दगी अपना विरोध प्रदर्शित* कर रही है···आगे उपेक्षा करना तुम्हारे लिए भी मुश्किल होगा।

सोचता हूँ सुख जो तुम्हारे साथ मिला, वह अब और मेरे भाग्य का नही। तुम्हारी भरी-भरी दुनिया, 'थ्रिल' और 'एक्साइटमेण्ट' की, व्यस्तताओ से भरी हुई···यह तुम्हे थोड़ा बहुत सहेजे रहेगी। थोडी कचोट मुझे खोने की होगी तो

छुटकारे का सुख भी होगा'''लेकिन जब तुम फिर किसी सही व्यक्ति पर पहुँचोगी तो यहीं से फिर शुरूआत दिखायी देगी'''इन्हीं सवालों से।

जिस बिन्दु पर मुझे अटकाकर तुम एकाएक अपना फ्यूज उड़ा लेती हो'''वहाँ मैं कितना अकेला, असहाय हो जाता हूँ। झिझोड़े जाने की यह पीड़ा पहले उतनी नहीं थी। जिस रफ्तार से हमारी चाह बढ़ चुकी होती है, उतनी ही जानलेवा यह झिझोड़ हो जाती है। जिस तिलमिलाहट से मैं पिछले दिनों गुजरा हूँ'''मैं नहीं सोचता उसे अब और सह सकता हूँ'''तो शुरूआत-जैसा तुम भी चाहती हो—यहाँ से कर सकते हैं कि अपने जज्बात सूखते चले जाने दें। हम मिलें जैसे आजकल '''अकेले में नहीं। मैं जब-तब तुम्हारे यहाँ वैसे ही आ जाया करूँ जैसे इतने सारे आते हैं, मिलें एक-दूसरे पर कुछ फुरफुरी छोड़ने के लिए, जो हवा के दूसरे झोंके में ही सूख जाती है।

लेकिन हम अगर इस तरह भी मिलेंगे, तो मात्र फुरफुरी नहीं छोड़ेंगे एक-दूसरे के लिए'''बल्कि एक टिमटिमाते सितारे की तरह रोशनी ही फेंकेंगे, चाहे जितनी मद्धिम'' यही फर्क है।

—अनन्त

मानसरोवर

"मैं तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ···खूब देर तक।"

"तुम्हें तो फुरसत नही रहती थी?"

"जब नही रहती होगी, तब नही रहती होगी।"

"बाहर चलेंगे?"

"अगर तुम कहोगे···पहले यहाँ आ जाओ।"

प्यार-भरा अधिकार। मैं खिंचता चला गया···जैसे महीनों जो उससे मिलना नही हुआ था तो उसके बाद उससे इस तरह मिलने की बेताबी मेरी थी, सिर्फ निकली उसके मुँह से थी।

थोड़ी ही देर में हम वहाँ थे जहाँ अक्सर होते थे। धूप हमारे पीछे थी, सामने हरा-हरा लॉन जिसकी लम्बी हुई घास जहाँ-तहाँ काटी जा रही थी। एक तरफ खड़ी ऐतिहासिक इमारतो पर मरम्मत का काम चल रहा था।

"मुझे तुमसे बहुत बातें करना है···इन दिनो मैं बहुत कुछ सोचता रहा।"

"मुझे भी एकाएक ऐसा लगा जैसे मैं तुमसे सबकुछ कह सकती हूँ···और एक तुम्ही हो जो मुझे समझ सकते हो···पर पहले चलेंगे···खूब पैदल चलेंगे···"

सामने की चढाई और उसके भी पार। जहाँ चढ़ाई खत्म होती थी वहाँ के दरख्त नीचे की तरफ आते हुए दिखते थे, जैसे अपने ही भार से जमीन की तरफ झुके जा रहे हों।

"क्यों तुम्हें ऐसा लगा जैसे तुम मुझसे बहुत कुछ कह सकती हो?" उसकी बराबरी पर चलते हुए मैंने पूछा।

"शायद एक विश्वास जो एकाएक पैदा हो गया···जाने कैसे। मुझे लगा जैसे तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध एक तरह का आधार है जो हमेशा वही रहता है, वही रहेगा। जो और हैं वे ऊपर के हैं, बनते-बिगड़ते रहेंगे।"

कुछ-कुछ ऐसा ही मैंने महसूस किया था।

यह कैसे सम्भव हो जाता है कि दो लोग एक वक्त एक-सी चीज महसूस कर

लेते हैं '''एक महसूस करता है तो दूसरा बोलता है। एक दूर कहीं बैठा मिलने की चाह करता है तो दूसरा अनायास ही भागा चला आता है।

हम चल रहे थे, चलते रहे'''कभी पत्थर की चीपोंवाली गली पर, कभी घास मे उछली पगडण्डी पर। कभी सीधा, कभी गोल-गोल रास्ता। हमेशा की तरह आस-पास का सबकुछ देखते हुए, उस पर टिप्पणियाँ करते हुए और मैं बराबर उसमे डूबा हुआ भी। एक बड़ा चक्कर लगाकर हम एक जगह घास पर बैठ गये।

"मैं सोचता हूँ कि अब हम श्याम मोहन के बारे मे भी बात कर सकते हैं।"

"हाँ, उसके बारे मे भी।"

"तो बताओ "

"मुझे ऐसे नही आता। तुम पूछते जाओ'''मैं बताती चली जाऊँगी।"

"तुम उसे चाहती हो?"

"चाहना क्या होता है?"

"तो, अब यह भी बताना पड़ेगा। मतलब, उससे मिलने की बेचैनी रहती है न मिलो तो खराब लगता है?"

"नही, ऐसा कुछ नही होता, पर मिलो तो अच्छा लगता है। वह भला आदमी है'''साफ-सुथरा, दूसरो की मदद करनेवाला, निष्कपट। हर समय हँसता रहता हैं। उसके साथ होने पर जिन्दगी बड़ी ही हल्की-फुल्की चीज हो जाती है, मन गेंद की तरह उचकता होता है। आई एम फौंड ऑफ हिम'''"

अब यह भाषा'''फौण्ड आफ हिम'''मुझे लगा कि उसके पास जो यह चालू शब्द-सम्पदा थी, यह वह नही व्यक्त करती थी जो वह महसूस करती थी। गड़बड़ी इससे होती थी।

"शारीरिक सम्बन्ध हैं तुम्हारे?"

"किस तरह के?"

"किसी भी तरह के।"

"मैं इस सबको ज्यादा अहमियत नही देती। असली चीज होती है वह, जिसकी वजह से थोड़ा-बहुत शरीर आ ही जाता है बीच में।"

"मुझे लगता है कि तुम्हे सभी की जरूरत है। कभी तुम्हे श्याम मोहन चाहिए, कभी मैं कभी रमेश।"

"शायद तुम ठीक कहते हो। मुझे लगता है कि मुझे ऐसे व्यक्ति की तलाश रही है जिसके साथ जीवन के हर आयाम को मैं पूरी तरह जी सकूँ लेकिन ऐसा कोई नही मिला। जो मिलता है उससे बहुत हुआ एक हिस्सा ही भर पाता है मेरा।"

"क्या ऐसा कोई व्यक्ति होगा?"

"अब देखो'''यह कुछ दूसरी तरह का सम्बन्ध है। तुमसे यो घण्टो बैठकर मैं

बातें कर सकती हूँ, श्याम मोहन के साथ बहुत देर नहीं बैठा जा सकता। थोडी ही देर में लगता है कि हमारे पास बात करने को कुछ भी नहीं बचा। ढूंढना पड़ता है कि क्या बातें करें और बातें भी जो होती है, वे सब वही हैं तो दफ्तर में किसी और से होती हैं ''तुम्हारे पास आकर जैसे यों हल्का हुआ जा सकता है, वह उसके साथ नहीं। बस, साथ बैठ सकते हैं'''एक-दूसरे को अच्छे लगते है'' उसे अगर मुझसे कुछ मिलता है तो क्यों रोकूँ ''"

"मैं तुम्हें मना तो नही कर सकता, न ही तुम्हारी जिन्दगी को कोई दिशा ही देने का हक समझता हूँ'''लेकिन तुम सबको सबकुछ दे सकती हो क्या ?"

"सबको तो नहीं पर जिन्हें मैं अपना समझती हूँ उन्हें तो दे ही सकती हूँ।"

''किन्हें अपना समझोगी।"

"जो भी अच्छे लगेंगे।"

''कितनों को अपना समझ सकती हो एक साथ ?''

"मेरा ख्याल है कोई भी अच्छा सम्बन्ध बजाय हमारी भावनाओं को सीमित करने के उदार बनाता है हमें। अगर वह दूसरा सम्बन्ध बनाने से रोकता है तो इसके माने वह हमें तंगदिल बना रहा है।"

"एकाएक तुम मेरे बहुत पास आ जाती हो, फिर वैसे ही छिटककर दूर भी चली जाती हो। उसके बाद फिर फासले होते है। यह तुम्हारे कई स्तरों पर जीने की वजह से नहीं है क्या ?"

"नहीं, पर कोई मेरी कमी जरूर होगी कि मैं अभी तक तुममे वह अहसास पैदा नही कर सकी। मेरी रोशनी तुम्हारे भीतर तभी तक होती है जब मैं तुम्हारे पास होती हूँ'''थोड़ा उसके कुछ देर बाद तक, लेकिन तुम्हारी रोशनी मेरे भीतर लगातार होती रहती है।"

''सुनो, उस दिन तुमने यह कहा कि तुम किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं हो, पर प्यार एक ऐसा सम्बन्ध है जहाँ हम अपनी इच्छा से दूसरे के लिए सम्पत्ति बनते हैं।"

''प्यार मुझे अच्छा लगता है क्योंकि यहाँ आप अपना सबसे अच्छा रूप सामने रखते हैं। वह हो होना चाहते है, जो दूसरा चाहता है, पर आप आप भी तो होना चाहते है, जैसे भी है ''गड्ढो से भरे हुए, कीचड़ मे डूबे हुए, उदास'''तितर-बितर। पता नहीं क्या है'''मैं सोचती नहीं ज्यादा। जो जैसा होता चले। कुछ-कुछ सोचना तुम्हारे साथ ही शुरू किया है।"

"अच्छा असर है या बुरा ?"

"अच्छा'''लेकिन हमेशा सोचना अच्छा नही, जैसे कि तुम सोचते रहते हो। फिजूल सोच-सोचकर खुद को तकलीफ देने से फायदा'''जैसे इन दिनों तुम खुद को देते रहे ? मैं बहुत नहीं सोचती। इतना जानती हूँ कि तुम्ही हो जिससे मैं सब तरह

की बातें कर सकती हूँ, बिना किसी हिचक के। तुम्हारी रोशनी में ही मेरे दूसरे सम्बन्ध दिखायी देते हैं। हमारे सम्बन्ध के ठोस आधार हैं जो वैसे ही रहेंगे। ऊपर के आये-गये होते रहेंगे।"

"रंगीन भी वे ही ज्यादा होंगे, क्यो?" मैंने हँसते हुए उसे खिझाने की कोशिश की।

"हो सकते है, पर ज्यादा देर को नही। आधार की अहमियत अपनी ही होती है।"

"मेरे बारे मे तुम्हें ऐसा क्यो लगता है?"

"मेरे किसी के साथ सम्बन्ध इस तरह धीरे-धीरे नही बढ़े, न ही इतनी ज्यादा देर चले···इसलिए तुम्हारी बात और है।"

"मुझे तो लगता है तुम्हारे किसी से टूटते ही नही।"

"क्यो, दीपक और सोम से खत्म ही है, एक तरह से। सोम बच्चा था। उसके साथ मैं कभी नही भूल पायी कि वह उम्र में मुझसे इतना छोटा था। दीपक बहुत ही जुनूनी था। जीवन मे इतना नही चलता। उसकी कविताएँ देख लो···वह उम्मीद करने लगा कि मैं सबकुछ छोड़कर उसके पास आ जाऊंगी। नाराज हो गया। अब सिर्फ कविताएँ लिखता रहता है। किताब भेज देगा···कही कोई अता-पता नही देगा···"

"दीपक के जज्बात, सोम की कच्ची उम्र, श्याम की अच्छाइयाँ···ये सब बातें मुझमे नही हैं।"

"न हों, पर तुममे थोड़ा-थोड़ा सबकुछ है। आजकल तुम्हारे बारे में सोचना अच्छा लगता है।"

"आजकल, मतलब कल किसी और के बारे में सोचना अच्छा लगेगा?"

"क्या ऐसा नही होना? होता ही है तो हम क्यो बड़ी-बड़ी बातें करें?"

"तुम्हारी किसी ऐसे आदमी की तलाश की बात जो तुम्हें सब तरह से भर दे···वह सुपरमैन···"

"तलाश नही, इच्छा···"

"चलो वही···ऐसा कोई आदमी नहीं होता, हमारी भावनाएँ ही किसी को यह बना सकती हैं और भावनाओ को तुम उस स्तर तक आने ही नही देती।"

"शायद मैं गलत कह गयी। तलाश किसी आदमी की नही, उस चीज की जो जीवन को भर दे, जिसके बाद कोई कमी न महसूस हो···ऐसा न भी लगे तो कम-से-कम छटपटाहट खत्म हो जाये···"

"इसके लिए भी जो महत्त्वपूर्ण सीढ़ी है वह भावना की ही है···और उसकी तुम्हारे यहाँ बहुत जगह नही। तुम इस सीढ़ी के बगैर छलांग लगाकर ऊपर पहुँच जाना चाहती हो···कैसे होगा!"

सुवर्णा किसी सोच मे डूबी दिख रही थी। घास के एक तिनके को पकडती, अपनी तरफ खीचती, और फिर फेंक देती थी।

"मुझे लगता है मैं अपने हर रिश्ते मे ऊँचाई की तरफ लपकती होती हूँ, जो किसी क्षण मेरा कोई अँधेरा कोना रोशनी से भर जायेगा। यह सच है कि मैं अपने-आपको किसी चीज या व्यक्ति से पूरा नही भर पाती। खुद को नही भर पाती इस-लिए तुम जैसे किसी को पूरा भरता हुआ देखकर ही जी बहला लेती हूँ! वह अहसास सुख देता है···पूरा भरने के लिए भागती हूँ, भटकती हूँ···लौटती हूँ! अक्सर इस सबसे डरकर या ऊबकर बैठ जाती हूं। तुम्हारे साथ सुरक्षित महसूस करती हूँ क्योंकि लगता है कही बँध पा रही हूँ, आखिर!"

"तुम्हे अक्सर काफी दिक्कत होती होगी। यही समझ में न आता होगा कि किसे सबसे ज्यादा चाहती हो और किसके लिए किसे छोड़ सकती हो।"

"ऐसी कोई बात नही।"

"तुम प्यार किसे करती हो·· क्या बगैर पसोपेश मे आये बता सकती हो?"

"हाँ, क्यों नही!"

"किसे?"

"रमेश को।"

मेरी बोलती बन्द हो गयी एकाएक···क्या मैं अपना नाम सुनना चाहता था? नही, पर वह रमेश का नाम लेगी—यह बेशक कभी नही सोच सकता था।

"हाँ, यह सही है। जो मेरे लिए रमेश है वह कोई दूसरा नही। वह मेरा बहुत खयाल रखता है। उसका सरल व्यक्तित्व जैसे मुझे अक्सर सुलझाता है···जब-जब बहुत उलझ बैठती हूँ।"

"रमेश के प्यार के बाद उलझने की जरूरत क्यों है?"

"है तो नही · पर क्या करूँ···यह मैं हूँ। मेरे जो ये बाहर के सम्बन्ध हैं, उनसे मुझे कितना कुछ मिलता है। वे मेरी 'ग्रोथ' मे मदद करते हैं, मुझे यह भी तो देखना है। प्यार ही तो दुनिया मे सबकुछ नही होता।"

हमारे बीच खामोशी आ बैठी। घास पर फैली धूप की चादर को कोई खीच रहा था···धीरे-धीरे! गरमाहट सोखी जा चुकी थी, इसलिए बहती हवा से अब झुरझुरी उठती थी।

"चलो, अब चलें···काफी देर हो गयी।" थोड़ी देर बाद उसने कहा।

हम उठकर चल दिये। बड़ी इमारतो और बड़े दरख्तो के नीचे छाया गहरा आयी थी। लगता था हमारे इर्द-गिर्द अँधेरा था, ठण्डक तो थी ही, सिहरन-भरी।

"चौबीस को तुम्हारा जन्म-दिन है। तुम्हे कुछ दूंगा।"

"तुम क्यो दो, मैं दूँगी।"

"क्या दोगी?"

"जो भी तुम माँगो !"

"तुम सबकुछ दे सकती हो ?"

"हाँ !"

"सोच लो ''मैं कुछ भी माँग सकता हूँ।"

"हाँ कुछ भी माँग लो'''दूँगी।"

कितना बड़ा दिल ! मैं उसके साथ दो-चार दिन को कही भाग जाना'''साथ सोना ''माँग सकता था'''कुछ वह भी जो उसके लिए खासी दिक्कत पैदा कर दे '''पर कोई कैद उसने अपनी तरफ से नही लगायी थी। मुझ पर विश्वास था कि मैं वैसा कुछ माँग ही नही सकता जो उसके लिए तकलीफ का कारण बने।

"तुमने बताया नही'''" मैं कुछ नही बोला तो उसने टोका।

"मैं जो चाहता हूँ, उसे शब्दों में बाँधकर क्यो छोटा करूँ। तुम समझती ही होगी, नही समझती तो दे भी नही सकोगी'''देना चाहते हुए भी। हर कुछ देना हमारे हाथ मे नही होता।"

वह चुप ''चुपचाप चलती रही। उसके नीचे जमीन ऊबड़-खाबड़ थी'''इसलिए पैर भी उल्टे-सीधे पड़ते थे—कही उठान पर फिसल-फिसल जाते हुए, कहीं खप्प-से नीचे धँसते हुए कही पत्थरो से झटका खाते हुए तो कही पुलपुली मिट्टी के साथ-साथ भसकते हुए '

"मन करता है तुम्हारे साथ पहाड़ पर होऊँ, तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लेकर दौड़ूँ—खूब दूर-दूर तब घूमूँ वहाँ तुम्हारे साथ। खुली धूप'' हवा''ठण्डी और साफ ''"

उसकी आँखो मे सपनों की झिलमिलाहट थी, जाने किस सुख मे झूलती वह मेरी बराबरी पर चल रही थी। इस सुख की आँच मुझ तक आती थी।

रास्ते में वह कुछ ज्यादा ही गम्भीर हो आयी।

"क्या सोच रही हो ?"

"कल से सोच रही थी ''मैं तुम्हारे कुछ ज्यादा ही करीब आती जा रही हूँ, पहले ऐसा नहीं था।"

"क्या किसी दूसरी तरफ से निराशा ?" मैंने छेड़ा।

"हट, मेरी कही कोई आशाएँ नही होती तो निराशा कैसी ' लेकिन तुम' कभी-कभी ऐसा होता है न जब आप किसी पल अनजाने ही किसी को खोज निकालते है।"

उसकी गोल-गोल बाँह पर मेरा हाथ चला गया, हल्के-से सहलाता रहा। क्या उसका असली रूप यही है ' हल्का उदास, भावनाओं मे रिसता, गहराइयो के लिए ललक ''? यह वह नही है जो पिछले दिनों दफ्तर में दिखी थी ''पानबहार चबाते हुए, सबको एक 'उँह' मे पुड़िया बना-बनाकर कूड़े की टोकरी में डालती हुई।

"तुम्हारे लिए जज्बात कभी-कभी बेकाबू होने लगते हैं, जब्त करना पड़ता है," मैंने कहा।

"खुद को रोका नहीं करो। तुम छूते हो तो अच्छा लगता है।"

"मैं अब तुम्हें कह सकता हूँ कि तुम श्याम के पास चली जाया करो, जब मन किया करे। मेरा यह सोचना शायद उस बिन्दु पर आ जाने की वजह से है जहाँ हम अपने साथी के सुख के बारे मे ज्यादा सोचने लगते है।"

"नहीं, अब तुम्हें यह विश्वास हो गया है कि उसके होने से हमारे-तुम्हारे सम्बन्ध पर कोई आँच नहीं आयेगी। पहले तुम्हें इस बात का खतरा था···इसलिए परेशान हो गये थे।"

हम एक पुल पर से गुजर रहे थे। दीवार मे नीचे-नीचे लगे बल्ब रोशनी उछाल रहे थे, जिसके बीच से खुलती चली जाती सड़क सुनहरी हो आयी थी।

"तुम्हारे पास हमेशा रहने का जी करता है, क्या तुम्हारा भी मन ?" मैंने पूछा।

"हमें मन पर लगाम रखना आना चाहिए।"

"तुम क्या सोचती हो, तुम्हारे बिना अब मैं··?"

"शायद नहीं।" उसके स्वर में इत्मीनान और आत्मविश्वास की ठण्डक थी।

एक जगह अँधेरे में कार रोककर वह मुझसे चिपक गयी।

"हम बहुत मिलने लगे हैं इधर···" उसने कहा।

"तो ··क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगता ?"

"नहीं, यह नहीं···" वह अलग हो गयी। "ज्यादा मिलो तो फिर और कहीं मन नहीं लगता, सबकुछ बेकार लगने लगता है। यह नहीं होना चाहिए—किसी एक चीज पर उतना निर्भर हो जाना। हम खतरे के निशान पर आ गये हैं।"

"चलो, तो विदा लेते हैं अब।"

"हूट ··"

और एक हँसी ··बादलों से फटती उजली धूप। लाल चिकने होठों की पंखुड़ियाँ। सफेद पनीले दाँत।

"डैम !"

"क्या हुआ ?"

"जाने क्या···मैं तंग आ गयी हूँ।"

"किससे ?"

"नौकरी से ··सबकुछ से। मुझे नौकरी अच्छी नहीं लगती।"

"तो दूसरी जगह तबादला करा लो। तुम्हारे तो इतने सारे दोस्त महत्त्वपूर्ण

पदों पर है।"

"मैं नही कहती किसी से।"

"तो फिर ? नौकरी छोड़कर तुम-जैसी लड़कियाँ रह भी तो नही सकती। सिर्फ गृहस्थिन का जीवन बिता सकोगी तुम ? एक खास तरीके की जिन्दगी ''भरी-भरी और महत्त्वपूर्ण दिखती, इर्द-गिर्द मँडराते हुए कुछ लोग, पद की प्रतिष्ठा जिस पर थोडा गर्व भी महसूस होता रहे ''इसके हम आदी हो जाते हैं, फिर मुश्किल होता है इन सबके बगैर।"

"पता नही''मेरी समझ में कुछ नही आता। बस कुछ अच्छा नही लगता। कभी-कभी सोचती हूँ, नाचने का एक स्कूल खोल दूँ।"

"तुमने कितनी बार नाचना फिर से शुरू किया और छोड़ दिया। ऊपर से जब हम खालीपन को भरने की सोचते हैं तो ऐसा ही होता है। जीवन का रस तो गहराइयो मे उतरकर ही मिलता है और तुम सिर्फ आर-पार फैलती हो। वैसे नाचने का स्कूल ''यह खयाल अच्छा है। नाचने से तुम्हारा लगाव भी रहा है'' और वह तुम एक और एम. ए. करने जा रही थी। फौर्म भरा था न ?"

"हाँ भरा था ''पर मुझसे नही होता यह सब'''इम्तहान की तैयारी-वैयारी। दोबारा एम. ए. करके क्या होगा ? मैं बोर हो गयी हूँ।"

एकाएक वह सामने रास्ते पर दौड गयी। मुझे पीछे छोडकर। सौ गज की दौड़ जरूर दौडी होगी। उस पार पहुँचकर तेज साँसो से अपने फेफड़े भर रही थी और मुझे देख रही थी। फिर वही एक किनारे बैठकर मेरे पहुँचने का इन्तजार करने लगी।

मेरे पहुँचने पर उठ खड़ी हुई। हम फिर साथ-साथ चलने लगे।

"सुनो, तुम मेरे जिस्म के बारे में भी कभी सोचते हो ?" उसने ऐसे पूछा जैसे वह एक बात कितनी देर से भीतर टकटका रही थी।

"क्यों ''बहुत सोचता हूँ। अक्सर ऐसा लगता है कि तुम्हारे शरीर का हर हिस्सा खूब मीठा होगा। कभी-कभी जोरो की इच्छा होती है कि हर तरफ से तुम्हे तड़ातड़ चूमता जाऊँ''"

"तो ?" उसकी आँखो मे चमक उतरा आयी।

"पसोपेश मे रहता हूँ कि कही यह शरीर की भूख ही तो नही ''मैं कस्बे का हूँ जहाँ लड़की को छूना ही बहुत बड़ी चीज होती है। सालो लग जाते हैं उस बिन्दु तक पहुँचने में। शरीर मेरे लिए बहुत आकर्षण की चीज है इसलिए मैं कुछ ज्यादा ही सतर्क रहता हूँ'' क्योंकि मेरा विश्वास है कि शरीर पर ही नजर हो तो बाकी चीजें ओट हो जाती हैं, जैसे जीवन मे पैसे को ही पकडे रहो तो दूसरी चीजें हाथ से फिसल जाती हैं। असली सुन्दरता भीतर के व्यक्ति की होती है जो बहुत ही धीरे-धीरे खुलती है''पर रहती भी बहुत देर तक है।"

"तुम्हारा मतलब, शरीर कुछ होता ही नही ?"

"बहुत होता है, पर प्यार के साथ ही। मुझे अजीब लगता है यह सुनकर कि लोग एक-दूसरे को प्यार नहीं करते, फिर भी सेक्स अच्छा-खासा कर लेते हैं। ज्यादातर पति-पत्नियों के साथ यह होता है।"

कुछ हैरत में…कुछ याद करने की जैसी मुद्रा मे वह चलती रही। सैण्डिलों से रास्ते मे सामने पड़े छोटे कंकड़-पत्थर हटाती जाती थी।

"मेरा जब मन नहीं होता, मैं रमेश को दूर रखती हूँ। दोनो का मन होना चाहिए। हमारी सेक्स लाइफ अच्छी है 'बढ़िया खाना खा चुकने के बाद जैसा अक्सर लगता है, पर कभी-कभी याद मे ऐसा भी लगता है जैसे दूर हो गये हो एक-दूसरे से। वैसे सेक्स को लेकर जो ये टैबू हैं कि पति के अलावा किसी और से नही …यह सब बकवास है।"

आज उसे नौकरी के क्या' सभी बन्धन गड़ रहे थे, खुलकर बहना चाहती थी। पैण्ट की जेब मे हाथ डाले चल रही थी, हर साँस में हवा को पीने की कोशिश करते हुए।

"तुम्हारे साथ एक पूरी रात गुजारने का सपना अक्सर देखा करता हूँ। जहाँ शरीर, मन, आत्मा सब एकाग्र हो जायेंगे। वह अनुभव कैसा होगा…कितना विलक्षण, प्राणवान…"

वह लेटी दिखायी दे रही थी' एकवस्त्रा ! रात के अँधेरे मे चाँदनी-सा उजला-उजला उसका शरीर…अलसाया पड़ा हुआ…उससे उठती हुई चन्दन की सोंधी-सोंधी गन्ध। आँखें…होंठ… द्वारों के बोल अपने पंखो पर बिठा अनन्तता मे ले जाते हुए…

मैं जो भी बोले जा रहा था वह सुनती रही…मुग्ध। हम एक दरख्त के पास रुके खड़े थे एक-दूसरे में लीन।

"अपने जीवन की कितनी रातो मे से एक तुम मुझे नही दे सकती ?"

वह चौंकी, खुद को झकझोरकर उसने जगाया और सामने चल पड़ी।

"हम ऐसे ही अच्छे हैं… चलो, साथ दौड़ लगायें।"

उसने कहा और मेरी हथेली अपनी मे कस मुझे करीब-करीब घसीटते हुए आगे दौड़ गयी। सामने के एक टीले को भागते-भागते ही पार किया हमने। ऊपर पहुँचकर एक-दूसरे को देखते दम लेते हम थोडी देर खड़े रहे। फिर वहीं पड़ी एक बेंच पर बैठ गये ''बेगम बेलिया की घनी झाड़ के नीचे दुबकी पड़ी एक हरी-हरी बेंच।

"एक 'क्रश' मारा जाय…जिन्दगी बेहद बोर हो गयी है।" वह बोली।

"यह क्या होता है ?"

" 'क्रश' नही समझते ''किसी से जा भिड़ना, फिर उसके साथ घूमना-फिरना। मस्ती मारना, होटलबाजी, रेस्तराँ सिनेमा वगैरह, फटाफट थोड़ा प्यार-व्यार भी।

फिर सब छोड़कर वापस अपनी जगह।"

"तो यह तो तुम अब भी कर रही हो।"

"क्या कर रही हूँ ?"

"मतलब सेक्सवाले पक्ष को छोडकर बाकी सब तो हो ही रहा है" मेरे अलावा भी कई के साथ।"

"हट "कही क्रश इतना चलता है ?"

कभी-कभी लगता है कि उसके दिमाग में कोई फौर्मेट है जिसे वह जीना चाहती है 'किसी भी आदमी को उसमे बिठाकर। यही है जो उसे चैन नही लेने देता। मैं उसके होते हुए किसी दूसरे सम्बन्ध की सोच नही पाता, उसमे ही सब-कुछ मिल जाता है, उसमे हो डूबा रह सकता हूँ दिनो दिन"'और एक वह है कि पति को प्यार करती है, कम-से-कम दो के साथ खासी अन्तरगता से जी रही है, फिर भी 'क्रश' की जरूरत महसूस करती है।

हमारी जमीन पर खपते हैं क्या ये शब्द—एफेयर, क्रश—किसी से जा भिड़ना और प्यार करने लगना और फिर इत्मीनान से वापस भी हो लेना—आज के शहरी प्यार का बौद्धिक खाका !

"जो मेरे साथ है उसे 'एफेयर' कहोगी तुम ?"

"नही !"

"तो फिर क्या है यह ?"

"मुझे नही मालूम" पर तुम मुझे छोड़ना नही। मैं गन्दी लडकी हूँ' मेरे इर्द-गिर्द हमेशा रहना !"

उसकी आँखें भीगने को हो आयी थी। उसकी उदासी देखकर मन भारी हो आया। मैंने उसके हाथ पर अपना हाथ रखा, हल्के-से दबाया। चहकती फिरनी लडकी, थोड़ा फ्लर्ट जैसा करती हुई "किसी से भी सम्बन्ध बनाती हुई' शायद उस पर वही सब फबता था। दिक्कत यही थी कि वह सब भी उसे पूरी तरह नहीं भर पाता था। उसका वह चहकना बाहर का था, भीतर-भीतर वह उदास थी' मानती हो या नही।

"तुम्हें चाहनेवाले तो बहुत थे, लेकिन तुम्हे प्यार कभी मिला नही' कोई तुम तक पहुँच नही पाया।"

"तुम सही लगते हो। कुछ यह भी है कि हमारी इस बीच की उम्र में छटपटा-हट ज्यादा ही होती है। शुरू जवानी में तो लापरवाही होती है—सारा जीवन ही आपके सामने पडा होता है, लगता है अभी नही तो आगे सही, पर इस उम्र मे आकर हम कुछ डेस्पेरेण्ट होने लगते हैं।"

"बात किसी विशेष युग या उम्र की नही है। हर किसी को और हर उम्र में प्यार चाहिए। मुझे तो लगता है यही वह चीज है जिसके लिए आदमी जीवित रहता

है, जो उसे जीवित रखनी है और जहाँ तक मेरी बात है, मुझे तो जैसे ढेर सारा प्यार चाहिए।"

"तभी तो तुम दे भी पाते हो। यह अजीब है कि जो जितना प्यासा, वही दूसरे की प्यास भी बुझा पाता है। मैंने श्याम को कहा भी कि अनन्त के साथ मेरे वे सम्बन्ध हैं जिनका कभी ख्वाब देखा करती थी मैं · "

उसकी पतली-पतली भवें धीरे-धीरे उछल रही थी, पानी मे कूदती छोटी-छोटी मछलियों की तरह। चेहरा · जैसे कोई कली पोर-पोर चटकती हुई खिल रही हो। एक-एक करके भावनाएँ फूटती तो वहाँ रोशनी-सी फैल जाती।

"मैं तुम्हारी तरफ बड़ी तेजी से बढ़ रही हूँ। घबराने लगी हूँ · क्या करूँगी जब वहाँ पहुँच जाऊँगी, जब तुम्हारे साथ हर पल होना चाहूँगी तुम्हारे साथ रहना चाहूँगी।"

"मैं तो उस बिन्दु पर पहले से ही पहुँचा हुआ हूँ। इस चाह के साथ कब से रह रहा हूँ।"

"मुझे अभाव में रहने की आदत नही है। डर लगता है कि मैं कही तब वह सब न तोड़ डालूँ जो हम-तुम दोनों ही नही तोडना चाहते। अभी तक यह मानकर चलते भी रहे हैं कि हम अपनी सीमाएँ बनाये रखेंगे।"

फ्रेम से उखड़ जाने की छरछराहट। उसके पास सबकुछ था · उसमे वह खुश भी थी। मैंने उसके भीतर सोयी उदासी को जगा दिया। वह महसूस करने लगी है कि कहने को सबकुछ है लेकिन मैंने ठीक नही किया शायद, तब क्या उसे भ्रान्तियो मे ही जीने देता?

वह मेरी तरफ देख रही थी– खामोश और उदास। कितनी छटपटाहट थी उसकी आँखो में। उसका सिर धीरे-धीरे मेरे कन्धे से आ टिका। हम पर खामोशी छा गयी, साँसो की भी आवाज नही अगले क्षण मेरी कमीज पर दो बड़े-बड़े आँसू गिरे · टप···टप···

उसने एक बार बताया था कि उसे रोना आसानी मे नही आता, साल मे एकाध बार ही रोती है···वह भी सूक्ष्म-सा और रमेश से छिपकर···अकेले मे। मैं स्वय आज पहली बार उसे इस तरह देख रहा था।

"रो लिया करो, इस तरह कभी-कभी···" मैंने उसे थपथपाया···कितना हल्का लगता है अपना अहं, अपनी बौद्धिकता को ताख मे रखकर, सबकुछ एक व्यक्ति को सौंप, इस तरह ढह जाने मे ·

मेरी गोद मे लुढका हुआ एक छोटा-सा कबूतर···फडफडाता हुआ, जरूरत से ज्यादा समझ के कारण परेशान। वह मेरी ओर समझ के लिए ताक रही थी। मैं क्या बताता जब मैं ही उसे पूरा-पूरा नही समझ पाता।

कुछ क्षणों तक वह वैसे ही रही। उधर से कोई आता दिखायी दिया तो उसने

खुद को अलग किया और आँखें पोंछ ली। बेंच से उठकर वह पास ही घास पर खुले मे आकर लेट गयी। मैं उसकी बगल में जा बैठा।

"जब कभी सोचते-सोचते थक जाती हूँ तो सोचना छोड़ देती हूँ। गायत्री मन्त्र का जाप करने लगती हूँ।"

"अच्छा···पूजा करती हो?"

"हाँ, रोज···तुम्हें विश्वास नही होता?"

"यह बात नही, सिर्फ तुम्हारे साथ जोड़ नही सका था।"

वह अचरज से ऊपर मेरी तरफ देखती रही, फिर नजरें मेरे पार आसमान को टटोलने लगी। वहाँ नीले साफ आसमान के चौखटे मे एक चिड़िया हवा मे टँगी हुई थी।

"वह देखो " उसका चेहरा थोडा फैल आया··· "किस आसानी से पक्षी आसमान में उतराते हैं। हम जिन्दगी में ऐसा क्यो नही कर पाते?"

"जो उड़ सकते हैं वे ही तो हवा में उतरा सकेंगे।"

उसने मेरी बात नही सुनी। ऊपर झूलती चिड़िया में खोयी हुई थी, उसकी ही उड़ान से लयबद्ध, मुझसे बहुत दूर··

12 जनवरी, 1979

कहाँ से कहाँ आ पहुँचा हूँ।

जीव रेशा-रेशा पिघलकर कैसे दूसरे पर बहता है···बहने के सुख की सीधी अनुभूति मैं कर सकता हूँ। यहाँ तक जरूर आ गया हूँ।

मेरी निर्भरता उस पर बढ गयी है···यह उसे चौकन्ना कर रहा है। वह यह सोचकर परेशान हो जाती है कि हमें कभी क्या-कुछ न सहना पड़े। कभी उसने कहा भी था कि तकलीफ देनेवाला सम्बन्ध उसे पसन्द नही। शायद इसीलिए वह चीजों को 'मैनेज' करनेवाला सन्तुलन बराबर बनाये रखना चाहती है। उसे अब खतरा दिखायी देता है—ऐसी स्थिति आ सकती है कि हमें एक-दूसरे को खोना पड़े। क्या पता ऐसे डरो के ओट असली डर उसे अपने सन्तुलन को खो देने का हो रहा हो। उसका मेरे बारे में सोचना—यह कि मेरा उस स्थिति मे क्या होगा—दरअसल यह सोचना है कि उसके सन्तुलन का क्या होगा।

कैसे बेवकूफ हैं हम! जिन्दगी हमारे सामने झोली खोले खड़ी है—बीन लो जो चाहे सो···और हम उंगलियाँ झुलस जाने के डर से सहमे खड़े हैं। हमें आग की जरूरत भी है पर उसके बहुत पास बैठ भी नही सकते। प्यार की आग झेलने के लिए हमारे भीतर भी एक आग चाहिए—उम्र, लापरवाही या नासमझी की आग। उसे अपने घर पर आँच आने का डर सताने लगता है। ये जो घरौंदे हमें विरासत

वह···उसकी आँखों मे घबराहट के रंग, जैसे किसी आदमी की नजरें अपने अण्डों पर पाकर कबूतरी की आँखें हो जाती हैं।

"तुम्ही मेरे बारे में उसे बता देती···"

"ऑफकोर्स ही नोज़ अबाउट यू।"

"उतना ही जितना तुम्हारे खेल के लिए जरूरी है।"

"अच्छा लड़ो मत यहाँ सड़क पर !"

"सुवि, क्या जरूरत है तुम्हें इधर-से-उधर, उधर-से-इधर जाने की। पेशतर इसके कि यह बीमारी बने · इसे काबू में लाना चाहिए ?"

मेरी नसीहत में उसे जरा भी दिलचस्पी नही थी तब, चुपचाप गाडी मे बैठी और चली गयी· ·गोया कि मैं वहाँ था ही नही।

जैसे नशे मे ही कोई नशे की अपनी पिछली हालत को देख रहा हो···जो हुआ उस पर मुझे जितनी ग्लानि थी, उतना ही अचम्भा। मेरा यह रूप कहाँ छिपा बैठा था अब तक ?

मामला वही रुक जाता तो शायद घाव इतने गहरे नही होते, वह रोक भी रही थी। आनेवाले दिनों मे अपनी तरफ से फोन नही किया उसने, मैंने किया तो बड़ी ही सामान्य और सूक्ष्म-सी बात करके रख दिया। मैंने मिलने की बात की तो एक सूखी-सी इत्तला दी कि तीन-चार दिनो तक दफ्तर के कामो में जरूरत से ज्यादा व्यस्त है, पर बड़ी-बड़ी बातें महसूस करने, उन्हें दूसरो पर लादने मे ऊँचे या बड़े हो जाने का जो सुख निहित था ··इसके रस का मैं इस कदर आदी हो चुका था कि लगा ही रहा।

"देखो ··" मैंने तीसरे दिन फोन पर कहा·· "मैं परेशान हूँ। तुमसे मिलकर बात हो जायेगी तो हल्का हो जाऊँगा। हमारे सम्बन्ध इतने कीमती हैं कि उन्हें किसी गलतफहमी मे टूट जाने देना क्या ठीक होगा ? बेईमानी जो हो गयी है··· उसे निकाल फेंकने की सोच सकते हैं हम अपने बीच से ·तुम्हे जब फुरसत हो, मैं तभी आ जाऊँगा।"

उधर से वह चुपचाप सुनती रही और फिर साढ़े-चार बजे आ जाओ कहकर फोन टाँग दिया ··शायद तग आकर, वरना पता नही मैं फोन पर ही कब तक और कहाँ तक चला जाता। उसे ऐसी बातें फोन पर करना एकदम पसन्द नही था।

मैं ठीक साढ़े-चार बजे पहुँच गया। कमरे मे वह अकेली थी। एक सूखा-सा— 'आओ बैठो !' न हाथ हुई, न मुस्कान के साथ स्वागत। वह गम्भीर थी, चुपचाप फाइल मे डूबी रही। एक खत्म करके दूसरी उठा ली। बीच में दो चाय के लिए कैन्टीन को फोन कर दिया। मैं सोच रहा था कि इस तरह कब तक बैठा रहूँगा। अगर वह वाकई व्यस्त है तो क्यों उस पर लद रहा हूँ ··मैं उसके लिए कभी व्यस्त क्यो नहीं हो पाता ?

बेयरा चाय रख गया। उसने पैसे देने के लिए फाइल से सिर हटाया। बेयरे को खिसकाकर फिर फाइल में डूब गयी। मुंह में पेन दबाकर कुछ पढ़ा, फिर दो-चार लाइनों का नोट उस पर लिखा और फीता बांध 'आउट' की टोकरी में डाल दिया। इसके बाद चाय की ट्रे को अपनी तरफ सरकाया और चाय बनाने लगी।

"हाँ ''बोलो' '" उसने कहा, जैसे अफसर लोग मिलने आये किसी व्यक्ति से कहते हैं।

चाय का कप बनाकर उसने मेरी तरफ बढ़ा दिया था और अब पूरी तरह मुझसे मुखातिब थी मेरी आँखो मे सीधा देखती हुई। मैं सोच रहा था कि कहाँ से बात शुरू करूँ और कि क्या मुझे वाकई कुछ बात करना था या कि वह सब तो सिर्फ उसके पास होने का बहाना था। मैंने पहले भी एक से ज्यादा बार यह महसूस किया था कि यह सोचना—उसके और मेरे बीच जो हो रहा है उसकी हर बार मीमांसा करना, मीमांसा से कुछ-न-कुछ निकालने की कोशिश करना—क्या यह वाकई जरूरी है? क्या सिर्फ यही महत्त्वपूर्ण नही है कि हम साथ होते हैं? वही तो असली सुख है, उसी मे क्यो न खुद को भीगने दें? वह अक्सर यही करने की कोशिश करती है, मैं ही हूँ जो उसे विचार-पुर्नविचार की तरफ घसीटता रहता हूँ।

"उस रोज के लिए माफी चाहता हूँ 'पता नहीं' मुझे क्या हो गया था।"

वह कुछ नही बोली।

"तबीयत कैसी है अब?"

"तुम्हारे सामने हूँ चाय पिओ।"

"इतना रूखा-रूखा क्यो बोल रही हो?"

"तुम जैसा चाहते हो, हमेशा वैसे ही तो नही बोल सकती और बोलूं भी क्यों? मेरा भी तो कुछ मन हो सकता है, या सिर्फ तुम्हारा ही होगा?"

"वह तो दोनो का होता है लेकिन होता यह है कि हम दूसरे का ज्यादा खयाल करने लगते हैं।"

"मुझे अपना भी खयाल करना है। हर समय दूसरो का ही देखती रही तो देखूंगी कि इस बीच मैं ही साफ हो गयी। मुझे खुद को बचाये भी रखना है!"

"इससे भी कोई फर्क नही पड़ता अगर हमारे बीच एक बुनियादी समझ है तो '''और यह विश्वास कि हमे सिर्फ एक-दूसरे के हैं यह विश्वास बढ़ता रहता है अगर हम हिस्सेदारी करते चलें 'एक-दूसरे को बताते चलें।"

"क्या?"

"हर चीज हो'''"

"यह झूठ है—कोई क्या सचमुच सबकुछ दूसरे को बता सकता है?"

"मोटी-मोटी बातें तो बता ही सकता है।"

"मैं नही बता सकती—मैं एक प्राइवेट किस्म की व्यक्ति हूँ और बताऊँ भी

क्यों यार "क्यो ? मेरे दर्जनो दोस्त हैं, हर को तुम आदमी लोग एक ही नजरिये से देखते हो, सोचते हो कि एक ही चीज है जो आदमी-औरत के बीच हो सकती है " मुझसे उम्मीद की जाती है कि मैं तुम्हारी तगदिली साफ करती चलूं, हर की तफ़सील देती रहूँ "क्यो मैं यह क्यो करूँ" जिसे जो समझना है वह समझता रहे हैं "

"...."

"देखो अनन्त"—वह और तैश मे आ गयी--"अगर तुम्हारा यह सोचना है कि मैं जो करूँ वह तुम्हें बताऊँ, यह सोचकर करूँ कि तुम्हे क्या अच्छा लगता है क्या नही, तो मैं ऐसा नही कर सकूँगी। मेरा अपना अलग मन, अलग व्यक्तित्व है। यह क्या कि हर बार ही मुझे सफाई देना है जैसे मुझे एक इम्तहान मे बैठना है और पास होना है। हर बार तुमको यह जताना है कि मैं तुम्हारे लिए उतना ही महसूस करती हूँ जितना तुम करते हो। तराजू लेकर यह तोलना क्या है यह " माई फुट !"

दबा हुआ गुस्सा भभक उठा था एकाएक। मैंने देखा, उसकी छोटी-छोटी सुन्दर भवें रह-रहकर उचकती थी जैसा वह जब बहुत ही कोमल भावनाओ से गुजरती होती थी तब भी होता था कितना अजीब !

"अगर तुम्हे यह लगता है"—वह आगे कह रही थी—"कि मै तुम्हें वाकई वह नहीं देती जो तुम देते हो या कि तुम्हें मुझसे वह नही मिलता जो तुम चाहते हो या कि मैं वैसी नही हूँ जैसा तुम सोचते हो तो चलो खत्म करते है मैंने तुम्हे बांधकर तो नही रखा है।"

"इतना आसान है क्या ?"

"नही है तो वह तुम जानो" मैं क्या इम्तहान ही देती रहूँ ताजिन्दगी ?"

"बात इम्तहान की नही है—लगातार दूसरे को विश्वास दिलाने की है, जो अपने बीच है उसे बराबर पुख्ता करते रहने की है।"

"मुझसे यह सब नही होता। जैसी हूँ, वैसी हूँ और मैं क्यो करूँ वह सब, सिर्फ इसलिए कि तुम्हे अच्छा लगता है ? मुझे भी तो कुछ अच्छा लग सकता है।"

"प्यार में हम वह भी करते हैं जो हमे अपने प्रेमी की नजरो मे ऊँचा रखे, अपने साथी के लिए ही कुछ करना अपने आपमे कितना बडा सुख हो सकता है ?"

"यह प्यार नही, आत्महत्या है' दूसरे की खातिर अपने को मारते चले जाना। प्यार वह है जो हमे खोले, न कि बन्द करे। बोरियत दूर करे, हमें जोश और खुशी दे। जो यह नही करता वह सम्बन्ध ही बेकार है" प्यार या कि कुछ भी।"

वह ऊबी हुई नजरो से मेरी तरफ देख रही थी, जैसे कि जितना परेशान मुझसे थी, उतना ही इन भारी-भरकम बातो से।

"सचमुच क्या इस दूसरे की कुछ भी गिनती नही है तुम्हारे यहां ?" मैंने आगे

पूछा।

"मुझे नही मालूम।" वह वेहद खीझी हुई थी, पता नही सवाल से या मेरे पूछते चले जाने की आदत से।

"क्या दूसरे के लिए कभी कुछ नही करना चाहोगी तुम?"

"खुद को नुकसान पहुँचाते हुए एकदम नहीं!"

"अगर यह दूसरा वही हो जिसे तुम थोड़ा-बहुत चाहती भी हो···तब भी नही?"

"मैं यह सब नही कर सकती। इट्स टू मच औफ अ स्टैन फौर मी। मैं जैसी हूँ, वही ठीक हूँ···ऊपर उठने की कोशिश ही करती रहूँ जिन्दगी भर, क्योंकि एक आदमी को वह पसन्द है, क्यों? इसमे समय बर्बाद करने की बजाय मैं जैसी बनी हूँ उसी तरह जीने मे सुख क्यो न लूँ। मेरी अपनी जिन्दगी है, उसे मैं अपने ढग से जीना चाहती हूँ। मैं तुम्हे किसी गलतफहमी में नही रखना चाहती अनन्त" अगर तुम्हारे हिसाब से यह ठीक नही है तो छुट्टी करो···"

वह जो तृण-तृण जोडकर हमने अपने बीच बनाया था, सुकुमार भावनाओं के पर्त-पर्त बैठाते हुए···उसका इस तरह गरज के साथ उजड़ना···मैं देख रहा था, जैसे कोई बच्चा अपने रेत के घरौंदे को तूफानी बारिश मे टूटता, ढहता और फिर बहता देख रहा हो···

"तुम कहते थे बेईमानी···क्या बेईमानी की है मैंने और किसके साथ···मैं भी तो सुनूँ जरा? तुम तो ऐसे जवाबदेही चाहते हो जैसे कि मेरे पति हो···कौन-सी कसम खायी थी मैंने तुम्हारे लिए·· बोलो···"

जैसे एक बौक्सर अभ्यास के दौरान फूले-फूले थैले को भड़ाभड़ मारता चला जाता है। मैं पिट रहा था, दायें-बायें, ऊपर-नीचे। जब पहली बार उसकी गर्दन मे मेरा सिर अनायास ही उतर गया था···तभी क्यों न झिटक दिया उसने? एक-दूसरे को छूते हुए देवत्व की हदों तक उठ जाना···वे ऊँचाइयाँ ··गहराइयाँ · क्या यह हश्र होना था? यही नियति है तो हम घरौंदे बनाने क्यो निकलते हैं?

उन खड़ी-खड़ी बातों के जवाब मे मेरे पास सिर्फ आँसू थे···जो बहे जा रहे थे···झर-झर···उसके सामने मुझे और कमजोर आदमी जैसा प्रस्तुत करते हुए··· वह जो कभी आँसू बहाती नही, क्योंकि उसकी संस्कृति में दूसरों के सामने अपनी दुर्बलता कभी नही दिखायी जाती, हमेशा शक्तिशाली होकर ही पेश हुआ जाता है।

"उस दिन मैं ऐसे ही बैठी रही···कभी तुम्हारी तरफ तकती, कभी अरविन्द की तरफ···जैसे तुम लोगो के बीच पड़ी कोई बेजानदार चीज होऊँ। मुझे तुम्हें किसी गलतफहमी मे नही रखना चाहिए मुझे सोचना होगा, अपने भीतर टटोलना होगा कि मैं वाकई अब भी तुम्हारे लिए वही महसूस करती हूँ···"

दो-टूक शब्दावली में—वह भी उसके मुँह से यह सुनूं कि वह मुझसे आजिज आ चुकी है ` यह हिम्मत मुझमे नही थी। जितना पर्दा रखकर कहा जा सकता, वह कह दिया था उसने।

हर तरफ से अटकते-टकराते वह एक ही जगह पहुँच रही थी···जाओ·· मुझे छोड़ो अब ··काफी हो चुका। अच्छा होता कि इस तरह का फैसला दोनों ही तरफ से होता, तो शायद कुछ तौर-तरीके से दूसरे की कद्र जताते हुए विदा होने की कोशिश करते हम···वह कायल भी ऐसी ही चीजो की थी, लेकिन जिन्दगी में सब-कुछ उसी तरह से तो नही घटता जैसे हम चाहते हैं।

8 मई, 1979

हतप्रभ हूँ ` यह जो हुआ वह मेरे साथ ही क्या ! जिसे मैं करीब-करीब पूजता रहा, उसे यह कैसे लगा कि उसे जलील कर रहा हूँ। जिसे तकलीफ देना कभी नही चाहा, उसे इतनी तकलीफ देने दे गया ! पिछले दिनो भयकर यातना से गुजरा हूँ···खूब डाँट भी सुन चुका हूँ···और उसके लिए तुम्हारा शुक्रिया। सच, मैंने उन गरमागरम वालो के लिए खराब नही महसूस किया···डाँटने के पीछे एक अपनत्व तो होता ही है···तभी तो कोई हर ऐरे-गैरे को नही डाँटता। चाहता हूँ कि यह सब अब हम दोनो के मन से धुल जाये, कोई आकर धो जाये·· पर कौन ··? कौन मुझसे 'बेईमानी' कहलवा गया···गलत शब्द था। मेरे प्यार के सन्दर्भ मे देखा जाय तो इतना गलत भी नही था। मेरा-तुम्हारा सम्बन्ध हमेशा मुझ तक प्यार की ही तरह आया··· तो मैं उस नजरिए से ही हर चीज को देखूं तो गलत तो नही हुआ (गलत-सही का सवाल ही नही, उसी नजरिए से देखूंगा ही)। तुमसे यह शिकायत की जा सकती है कि जब मेरा वही नजरिया तुम्हारे लिए कोई बहुत खूबसूरत या मीठी बात सोचता है तब तो तुम्हे अच्छा लगता है और कोई ऐसी बात जो तुम्हे माफिक नही आती, बन्धन-सा गड़ती है···वह तुम्हे खराब लग जाती है। हम हमेशा अच्छा-अच्छा ही क्यों लेना चाहते हैं···व्यक्ति तो वही देगा जो वह है, जिसे हमने स्वीकारा है। और यही मुझे भी उससे नही चिढ़ना चाहिए जो तुम्हारा मुझे माफिक नही आता, क्योंकि तुम वह हो···

तुम्हारा इस सम्बन्ध को शब्द न देना ` वह ज्यादा ठीक था, बनिस्बत इसे दोस्ती करार देने की जिद् भले ही 'बहुत प्यारे' विशेषण के साथ ! क्या जो हमारे बीच हुआ, जो हमने एक-दूसरे को लिया-दिया, शुरू से एक-दूसरे के लिए महसूस किया···वह हम हर किसी के साथ कर सकते हैं? पश्चिम मे भी लड़की चूमने के लिए सिर्फ गाल बढ़ा देती है···बाकी चीजो का अधिकार सिर्फ उसे ही देती है जिसे वह प्यार करती है···तो अब यहाँ पहुँचकर अपने सम्बन्ध को दोस्ती की तरह देखा,

जा सकता है क्या ? प्यार में विश्वास ''क्या हर पग पर नही दिलाना पड़ता? शायद यही फर्क है पति-पत्नी के सम्बन्ध मे और इस सम्बन्ध में'''कि यहाँ हर वक्त माँग होती है, तभी शायद प्यार करनेवाले बार-बार बुदबुदाते हैं—'मैं तुम्हें प्यार करता हूँ'''अन्तरगता के चरम क्षणो में वही निकलता है। तुम कहोगी हम प्यार करनेवाले नही हैं। तुम न सही अगर सिर्फ मैं ही हूँ तो क्या वह माँग उतनी अक्षम्य है? मैं जरूर ज्यादती कर डालता हूँ अक्सर। शायद पिछले दिनों कुछ ज्यादा ही बेताबी रही '''लालच भी तुम्हारे शरीर का नही, उस अहसास का जिसे मैंने कई महीनों से नही पाया था। जैसे जिन्दगी को मुट्ठी मे कस लेने की बेचैनी ज्यादा रहे तो वह खुलकर भाग जाती है ''वही मेरे साथ हो गया। आगे आनेवाले कितने दिनो तक मै खुद को माफ नही कर सकूँगा'''वह माफ कर देगी तो भी। वह कर देगी, क्योंकि मुझसे कहीं बड़ा व्यक्तित्व है उसका। शायद मेरी दिक्कत यही है – मैं सिर्फ गहरा हूँ, ऊँचा नही। कहाँ से लाऊँ वह ऊँचाई ''अपने इस छुटपने को किस तालाब मे जाकर डुबो दूँ। तुमने मेरे इस छुटपने को कितना बर्दाश्त किया। क्या तुम मुझे ऊँचा बना सकते हो? शायद अब नही। हर बात पर दरवाजा जो दिखा देते हो—ऐसा नही तो ओ. के., बात खत्म हुई—वो रहो मियाँ तानसेन की हवेली जाओ, गाओ बजाओ, पर बाबा मुझे छुट्टी दो! यह दूसरी मर्तबा है जब मुझे दरवाजा दिखाया गया 'अगली बार बेटा बाकायदे बाहर धकेल दिये जाओगे। हर आदमी खुशी चाहता है तुम्हारा लटका मुँह कोई कब तक देखेगा, तुम्हारे भीतर झाँकने की तकलीफ गवारा क्यो करेगा'' इसलिए अब तो जो कुछ करना है आपको ही करना है अपने साथ।

वैसे इस पूरे हादसे से एक चीज सकारात्मक भी निकली। तुम कहती तो नहीं थी, पर कहती ही थी एक तरह से कि जो क्षण हमे जीने को मिले हैं उन्हें हम विश्लेषण मे क्यों खपाये जा रहे हैं! दोस्ती या कि प्यार' अरे कुछ भी सही यार '' पर हाय रे मेरी दिक्कत! अब वह नहीं जो दिखाये देखो'' देखो'' यह कौन-सी चिड़िया है '

वैसे यह सही है कि मेरे साथ निबाहना है बेहद मुश्किल, क्योंकि मैं काफी पेंचीदा और ऊपर से नीरस किस्म का प्राणी हूँ। इस मामले में तुम्हारी दाद देता हूँ कि इतने दिनो तुमने मुझे बाकायदे झेला थक आयी होगी। मैं कोई उपाय करूँगा, अभी यही नही जानता कि क्या '

दो चीजें जरूर नही कर सकता। जो मेरे जीवन का एक बहुत खास व्यक्ति बनकर आया शुरू से ही, उसे हमेशा उसी रूप में देखा, वैसे ही उसकी कल्पना की, उसे एक साधारण दोस्त की तरह लेना, वैसे निबाहना'''? एक वक्त ऐसा सोचा था, नही कर सका। अब बिल्कुल भी नही करना चाहूँगा। वह वही रहेगी, बेशक उसकी सहमति हो या न हो। उनका नजरिया उन्हे मुबारक कि मैं भी हूँ जैसे और

हैं ···मेरे लिए वह सिर्फ एक···वही रहेगी।

दूसरे, वेदना—वह चाहे स्वयं या किसी दूसरे में अतिरिक्त मोह के कारण ही पैदा हुई हो, कितनी ही जानलेवा हो—जीवन की एक कीमती चीज है, क्योंकि हमारी समझ, नैतिकता का स्रोत वही है। मुझे हमेशा खुश रहनेवाला बोदा आदमी नहीं बनना ···मेरी शक्ल मनहूस रहती है तो रहा करे, वह मुझे चाहे या न चाहे · इसके यह मायने नहीं हैं कि कभी हल्का ही न हुआ जाये सब चीजों के लिए खुला-खुला, थोड़ा लापरवाह-सा रवैया, भीतर बूंद-बूंद रिसती हुई दर्द की बर्फीली सिल!

मैं अकेला नहीं हूँ ···ईश्वर तुम हो· तुम्हारी परिकल्पना को मिटाकर कुछ लोगों ने ऊपर की दुनिया नष्ट कर देना चाही और अब प्रेम को खत्म कर वे पृथ्वी पर की दुनिया को भी नष्ट करने पर तुले हुए हैं। भावनाएँ बोझ मानी जाती हैं। प्यार से लोग कतराते हैं, भले ही आजीवन ऐसे रह जायें कि न किसी को प्यार दे सकें, न किसी का प्यार ले सकें ·बस खुद को बचाते हुए काटते रहे जिन्दगी· खुश-खुश! मुझे हर पढ़ा-लिखा आदमी बीमार क्यों दिखायी देता है ·क्या फिर अन्ततः उन्हीं में कुछ बचा रह सकेगा जिन्हें पढ़ाई और सभ्यता ने बरबाद नहीं किया?···और मेरे पढ़े-लिखे दोस्त कहते हैं कि बीमार वे नहीं हैं, मैं हूँ।

यह खत बना या कि डायरी?

पुनर्जन्म

5 जून, 1979

तार-तार मकड़ी के जाले की तरह बुनी हुई उदासी मेरे चारो तरफ है। पल्टो, दिनो-दिन मैं उदास रहता हूँ।

मेरे व्यक्तित्व 'जीवन पर इतना असर डालनेवाला साथ भी जब पीछे सिर्फ उदासी छोड़कर जाये तो लगता है कि पीड़ा ही है जो जीवन में है। पीड़ा किसी साथ, सयोग या समय के प्रभाव से दब जाती है'''पर मात्र दबती है, फिर उभर आने के लिए। मुझे इस पीडा को किसी बाहरी चीज या साथ से ढक देने की बजाय उसके साथ रहने की आदत डालना चाहिए। इसलिए मैंने तय किया है कि जब अपने दर्द, अकेलेपन का ही सहारा लूंगा, खूब डायरी लिखा करूंगा। डायरी के जरिये आदमी स्वय को अपना साथ दे सकता है ''हर पल, हर रोज। डायरी को मैं अपना मित्र मान सकता हूँ।

पिछले दिनो सुवर्णा और मैं उस बिन्दु पर पहुँच गये थे जहाँ मेरी तरफ से अधिकार लादना, उसकी तरफ से बोझ महसूस करना, थोड़ा ऊब-सी भी ''फिर दोनों तरफ से खीझ 'यह सब होने लगा था और हमारे सम्बन्ध का किसी झटके से टूट जाना अप्रत्याशित नही रहा था'''तो क्या सम्बन्ध का कभी कोई आधार नही था, कपास के फोहों पर खड़े थे हम इन तमाम दिनो ?

यह सिर्फ एक व्यक्ति से अलग होने का दु ख नही है। वह तो है ही ''पर उससे ज्यादा यह कि आत्मीयता क्या कुछ नही होती ? ऐसा कैसे हो सकता है कि दोनो के इस हद तक भीगते रहने के बाद एकाएक किसी एक को भी यह टटोलना पड जाय कि वह दूसरे के लिए क्या वाकई कुछ महसूस करती है ? अगर यह समय या अति-परिचय द्वारा पैदा की हुई उबास थी तो बराबरी से मुझमें भी क्यों नहीं उतरा आयी। यह भी हो सकता है कि मुझमे कोई बुनियादी कमी हो कि मैं एक लम्बे अरसे तक किसी को बाँधकर नहीं रख सकता ? या कि जीवन की ही यह सीमा हो

—जहाँ सभी वह रहे हों वहाँ बहुत देर तक कोई एक जगह ठहर नहीं सकता। हम बहे जाने को अभिशप्त हैं। कितना अजीब है कि अपने जीवन का सबसे पवित्र, श्रेष्ठ हिस्सा दूसरे पर उँड़ेल देने के बाद भी कुछ नहीं होता। एकाएक सब फुस्स।

जिससे करीब-करीब रोज मिलना, बात करना होता रहा हो, उससे यों एकाएक अलग हो जाना कि आवाज भी न सुन सकूँ! कैसा सुनसान हो आया है जीवन। मुझे इसका आदी होना होगा।

6 जुलाई, 1979

आज करीब-करीब पूरी रात मैं नहीं सोया। कलपता रहा। अपने कलपने को देखते हुए कलपता रहा। एक वक्त था जब मेरी ऐसी कोई बेचैनी उस तक पहुँच जाती थी, अगले दिन वह बोल भी देती थी। अब ? मैं उसके लिए मिठास अब भी महसूस करता हूँ, पर मिलने की इच्छा एकदम ठण्डी है। मैं जब उससे अलग रहकर सिर्फ अपने साथ चलने की सोचता हूँ तो दिमाग तो तैयार होने लगता है, लेकिन मन बैठ जाता है···

गड़बड़ी मेरी जीवनैषणा ने की, जो कुछ ज्यादा ही लम्बा कूद बैठी। हम शुरुआत कैसे तिल भर जगह से करते हैं, क्रमशः और-और जगह अँगोटते चले जाते हैं फिर एकाएक हम वहाँ जा पहुँचते हैं, जहाँ अब और आगे कुछ घेरा नहीं जा सकता, जब कि कोशिश वही रहो आती है—दूसरे को पूरा-का-पूरा समेटने की। परेशानी यहाँ शुरू हो जाती है, लेने-देने का अहसास बुझने लगता है।

अब तो तकलीफ यह भी नहीं कि हम एक-दूसरे को कुछ नहीं दे सकते, बल्कि यह है कि दूसरे के लिए कुछ करने की हमारी कोशिश बुझी चली जा रही है। यह ज्यादा बड़ी यातना है। लगता है कि निर्झर का स्रोत ही सूख गया।

11 जुलाई, 1979

शायद मैं जिन्दगी के उस दौर मे आ पहुँचा हूँ जहाँ लोग आपको छोड़ने लगते हैं, आपको यह अहसास दिलाते चले जाते हैं कि अब तुमको इसके या उसके सहारे नहीं, अपने सहारे रहना होगा। मेरे स्वभाव का वह अदृश्य तत्त्व जिसकी मदद से कहीं भी मैं आसानी से निबाह ले जाता था, वह जैसे मुझसे छूटता चला जा रहा है। इन दिनों ज्यादातर लोगो से मनमुटाव, खिचाव बेवजह पैदा हो जाता है। अक्सर मैं खुद को यह सोचता पाता हूँ कि मैं लोगो के लिए ठीक-ठाक···अच्छा··· तब तक रह सकता हूँ जब तक उनसे दूर, अपने अकेलेपन में बैठा रहूँ। कहीं मेरे भीतर कोई सख्त-सख्त चीज तो नहीं पैदा हो रही है जो मुझे अपने सभी नजदीकी

लोगों से काटकर रख देगी, नये रिश्ते बनाने नहीं देगी और मिलना-जुलना उन्हीं के साथ रखेगी जहां सम्बन्ध मात्र औपचारिक हों? मतलब'''अब मुझे जीने की शक्ति, उत्साह जीने का सबब'''सबकुछ अपने में ही ढूंढने होंगे।

टूटने का दर्द है'''किसी सम्बन्ध के टूटने का दर्द कैसे खुद के टूटने के दर्द जैसा ही हम तक आता है। हर बार आदमी को लौटकर खुद पर ही आना पड़ता है, खुद का ही साथ खखोरना पड़ता है। आखिर में अगर यही होना है तो हम क्यों बाहर की तरफ दौड़ते हैं, खुद के साथ क्यों नहीं रहे आते?

मेरे अपने सन्दर्भ में विशेष दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति इसलिए भी है कि मुझे यह भी नहीं मालूम कि मुझे क्या हासिल करना है जिसके लिए मैं आत्मनिर्भर होऊँ''और भीतर जहाँ टूटन-ही-टूटन हो, निराशा, विषाद की गसी हुई परतें हो'''वहाँ कोई क्या निकाल सकता है अपने लिए।

तभी लगता है कि यहीं से निकलेगा कुछ'' इसी वेदना से। इस हादसे ने भीतर जो इतना तहस-नहस किया है, वह व्यर्थ कैसे जा सकता है!

12 जुलाई, 1979

शाम को बारिश हुई। खूब अच्छा मौसम हो गया। ठण्डी हवा चेहरे पर, मन बेहद हल्का'''फिर सुवर्णा से मिलने का मन हो आया। उससे बिना समय लिये, यों ही मिला जा सकता है क्या अब? घुसते ही उसके चेहरे पर प्रश्नचिह्न होगा, वह सह सकेगी क्या'''और फिर मन वैसे ही भारी होता चला गया जैसे हल्का हुआ था। उदासी की अपनी तह पर आ लगा जैसे कि लहरों की मार खा-खाकर उतराता हुआ घड़ा डूब जाये और आखिर नीचे तल पर जा लगे।

जिस तेजी से हम सूखते जा रहे हैं उसे देखते हुए यह नहीं लगता कि इतना कुछ भी बच सकेगा जिसे याद करके कभी अपने लिये ही रस पैदा किया जा सके। जैसे हमारे बीच कभी कुछ हुआ ही नहीं या कि हम दोनों सिर्फ थोड़े दिनों के मामूली परिचयवाले व्यक्ति हैं। जिन्दगी का ऐसा वर्क क्या इस आसानी से फाड़कर फेंका जा सकता है?

प्रकृति'''आदमी से दूर, इन उलझावों-लिपटावों से दूर'''अपने आपमें एक सत्ता। क्यों नहीं मैं इसी में डूब जाता?

वह कहा करती थी -इस तरह के सम्बन्ध क्या कभी खत्म होते हैं'''क्या अब भी बचा है कुछ?

15 जुलाई, 1979

जीवन की बात मृत्यु से शुरू की जानी चाहिए। जहाँ समाप्ति ही नियति है, वहाँ हर कर्म क्षणिक और अपने लिए गढ़ा गया हर अभिप्राय भ्रम है। बगैर किसी भ्रम को पाले हुए यदि जीना है तो जीवन को सिर्फ एक छोटा-सा सफर समझो। सफर पर चलते हुए मन में यदि यह विश्वास उग सके (महज जानकारी नहीं) कि देर-सवेर, कहीं-न-कहीं हर किसी को उतर जाना है तो फिर यही रह जाता है कि जितनी देर बैठे, दूसरों का दुःख-दर्द बाँटते रहे, उन्हें स्नेह देते रहे'''सहयात्रियों के लिए करुणा, सहानुभूति, प्रीति। हमारी ऊँची-से-ऊँची प्राप्ति व्यर्थ है अगर वह इन मानवीय स्वरों की बढ़ोतरी नहीं करती। इस रास्ते मे बड़ी बाधा अपने होने का अहंकार है। यह अहंकार दो तरह से खत्म हो सकता है, हम स्वयं को दूसरे पर उत्सर्ग कर दें या ऐसी यातना से गुजरें जो हमारी नजरों मे हमारे अस्तित्व को शून्यवत करके रख दे। प्रेम में यह दोनों ही निहित होते है। प्रेम तकलीफ है'''पर आदमी बनने के लिए तकलीफ से गुजरना जरूरी है।

18 जुलाई, 1979

मुश्किल से दो महीने खींच सका। यह तय था कि अपने आपसे वह कभी फोन नहीं करेगी। उसके यहाँ ऐसी स्थिति में फोन करने का मतलब होता है—नीचे आ जाना। अपने को हमेशा ऊपर रखो, गोया कि प्रेम न हुआ, जंग हो गया! मैं सोचता था कि इतना खूबसूरत सम्बन्ध'''जिसने उतना दिया हो, वह एक छोटी-सी गलतफहमी, जिद या कि झूठे अहं पर कुर्बान किया जा सकता है क्या? फोन किया उसे।

मेरी आवाज सुनकर वह सकपका गयी। उसकी सकपकाहट मैं फोन पर साफ-साफ सुन सकता था ''उससे उठकर उसी की तरफ रेंगती हुई।

"तुम्हे भी तकलीफ हो रही है?" मैंने पूछा।

"हाँ!"

"मिलना चाहोगी?"

"हाँ!"

'' किस चीज में भीगकर 'हाँ' उठा, दोनों बार। एक इस शब्द में वह पूरी की पूरी हिल रही थी, बरसात में सिहरती पत्ती की तरह'''

"कब?"

"जब तुम चाहो'''" तय करने की सुविधा उसने मुझे दे दी थी इस बार।

हम जब आमने-सामने हुए तो थोड़ी देर झेंपते हुए से एक-दूसरे को देखते रहे।

"आय एम सौरी।" उसने कहा।

हमें अपनी भाषा वापस मिल गयी थी पीछे से लहकती हुई एक आश्वस्ति भी थी कि करीब-करीब खोकर पाया है तो हम इस भाषा को अब भूलेंगे नही। हम दोनो मे से कोई कुछ नही बोल रहा था, जरूरत ही नही थी और सचमुच बोलने की जरूरत या तो ऐसी भाषा के रेशा-रेशा निर्माण करते समय पड़ती है या फिर तब, जब हमारे पास यह भाषा होती ही नही।

मेरे सामने बैठी वह, अपने-आपमें सिकुड़ी-सिकुड़ी-सी कागज पर कुछ खीचती बनाती रही···बीच-बीच मे चेहरा रक्तिम हो आता था, उतरती भावना की किसी चुभन से या मात्र इस अहसास से कि हम एक-दूसरे के पास थे···

वह सामने···अपने में डूबी, कागज पर कुछ भी खीचती हुई, चेहरा रक्तिम पास ही मे मैं उसे निहारता हुआ···उस क्षण ऐसा आभास हुआ जैसे पिछले दिनो की वेदना ने हमारा सारा कलुष धो दिया है। हम दोनो मे ही एक निर्मल अभ्यन्तर का आविर्भाव हुआ है। हम मात्र वह नही हैं जो बाहर से दिखते हैं। ब्रह्माण्ड की विशालता का अंश···भले ही अणुसमान···हमारे भीतर है। बाह्य अब हमारी दृष्टि धुंधला नही सकेगा। सुवर्णा के निर्मल तत्त्व से मेरा साक्षात्कार निरन्तर रहेगा। उसके लिए मैं जो आलोकमय अनुराग अनुभव कर रहा था वह अपूर्व था···सम मे स्थिर अनुराग। उसके अन्तरतम के दीप्तिमण्डल की आभा मेरी आत्मा मे प्रकाश भर रही थी।

सहज ही मेरे नेत्रो ने द्वार बन्द कर लिये···प्रकाश को गहन होने दो।

फूलवालों की सैर

श्याम का जन्मदिन।

इस दिन उसे खूब खुश रहना चाहिए। अपने जन्मदिन पर सुवर्णा रहती है… खूब खुश, हर पल चहकती हुई। अपने सभी दोस्तों, यहाँ तक कि परिचितों को भी इस या उस बहाने पहले से ही खबर दे डालेगी। जन्मदिन पर सबेरे उठते ही श्याम और बच्चों की बधाइयाँ—कोई फूल के गुच्छे के साथ, कोई पहले से खरीदे किसी तोहफे के साथ। सबेरे से ही घर का फोन बजने लगेगा…बधाइयाँ…बधाइयाँ—शहर से, शहर के बाहर से। दफ्तर में घुसते ही मेज पर फूलों का गुलदस्ता सजा मिलेगा…ताजे-ताजे फूल। खूबसूरत दिन की कितनी खूबसूरत शुरुआत। वह जानती है कि आज किसने उससे पहले आने की कोशिश की होगी, कौन गुलदस्ते सजा गया होगा। पुलक से भर उठता है मन कि उसके ऐसे दोस्त हैं, उनमे इतनी कल्पना है। श्याम का फोन आयेगा। बधाई के बाद फूलों के कमरे मे होने के रहस्य को धीरे-धीरे खोला जायेगा, हालांकि सुवर्णा को पहले से ही मालूम होता है कि फूल श्याम के लाये हैं…फिर भी बात का धीरे-धीरे खुलना जैसे उन फूलों को और भी खूबसूरत बना देता है। फिर श्याम कमरे मे आयेगा, वे साथ कॉफ़ी पियेंगे। इस बीच ढेरों फोन, ढेर सारे लोग… बधाइयाँ, और बधाइयाँ। वह जैसे इन सबके बीच खड़ी खिलखिलाती होती है, खिलखिलाहट के रेशे उसके ऊपर फूल की पंखुड़ियों से बरसते चले जाते हैं। इस दिन वह कहीं से भी उदासी की कोई छाया पास फटकने नहीं देना चाहती।

अपने जन्मदिन पर श्याम काफी समय के लिए उसके पास रहना चाहता था पर सुवर्णा को एक दिक्कत आ पड़ी थी। उसे हफ्ते-भर के लिए एक प्रशिक्षण में जाना था, शहर में ही। वह दफ्तर में नहीं होगी उस दिन। इसलिए तय हुआ था कि श्याम प्रशिक्षण-स्थान ही आ जाये एक बजे, वहीं बैठेंगे।

श्याम समय पर आ गया। सुवर्णा उसके लिए घर से ही कुछ मिठाई लेती आयी थी। अहाते के बाहर एक छोटा-सा पार्क था…आयताकार। किनारे-किनारे

बड़े पेड़ों के नीचे जहाँ-तहाँ लगी कुछ बेंचें। वह कोई समय नहीं था वहाँ बैठने का लेकिन फिर और कहाँ बैठते? कहीं जाते तो समय आने-जाने में ही निकल जाता क्योंकि दो बजे से ही सुवर्णा का दूसरा क्लास था। वे पार्क की तरफ बढ़ गये, श्याम कभी सुवर्णा की बराबरी से, कभी पीछे चलता हुआ। बीच में बातें जिनमें सुवर्णा खिलखिलाहट भरती चलती थी। आज कोई शिकवा-शिकायत नहीं, कोई भुन-भुनाहट नहीं, सिर्फ हँसी-खुशी'''पत्थरों-कंकड़ों पर उछल-उछलकर बहती हुई जलधारा-सी।

संस्थान की आवाजें धीरे-धीरे पीछे छूटती गयी। अब साथ बरसात के बाद की तीखी धूप और वातावरण की उमस थी'''सड़क पर भागती मोटरों की सरसराहट और जब-तब किसी गुजरती बस की घर्राहट'''एक परिन्दा चिड़चिड़ाता हुआ एक पेड़ से दूसरे पेड़ की तरफ पैनी उड़ान में निकल गया।

वे एक दरख्त की छाँह में बेंच पर बैठ गये। सुवर्णा ने मिठाई का डिब्बा खोल बर्फी का एक टुकड़ा उठाकर श्याम के मुँह की तरफ बढ़ाया ही था कि पता नहीं कहाँ से एकाएक रमेश प्रकट हो गया। कब उसकी कार यहाँ आयी'''कहाँ से आयी'''सामने पार्क के उस तरफ खड़ी थी जिधर से सुवर्णा और श्याम आये थे। रमेश फौजी चाल में उनकी तरफ आया। न बात न चीत, सुवर्णा का हाथ पकड़कर कार की तरफ करीब-करीब घसीटने लगा। सुवर्णा की उँगलियों में चिपका बर्फी का टुकड़ा थरथराया, फिर छूटकर गिर गया, मिठास उँगलियों में चिपकी रह गयी।

"कार में चलकर बैठो!" आदेश!

रमेश का चेहरा सख्त था, उसकी आवाज की तरह। श्याम से उसने 'हलो' तक नहीं की। सुवर्णा समझ ही न सकी कि क्या देख रही है, क्या हो रहा है। तभी कार के भीतर से ड्राइवर इधर की तरफ टुकुर-टुकुर ताकता नजर आया'''रमेश का ड्राइवर, जिसे सुवर्णा रोज ही तरह-तरह की हिदायतें देती रहती है। अपना हाथ रमेश से झिटककर, बिना एक शब्द बोले वह कार की तरफ चल दी, कार में जा बैठी। पीछे से आकर रमेश दूसरी तरफ का दरवाजा खोलकर बगल में बैठ गया। कार चल पड़ी।

एक बार मुड़कर सुवर्णा ने काँच से छूटते हुए पार्क को देखा। अकेला खड़ा श्याम'''बेंच पर एक धब्बे-सा उछला हुआ मिठाई का डिब्बा। कैसा तो रंग हो आया था श्याम के चेहरे का'''आज उसका जन्मदिन था!

रास्ते में वह कुछ नहीं बोली। रमेश बोलने को हुआ तो एक सख्त और डाँट-भरे इशारे से सुवर्णा ने उसे चुप कर दिया---ड्राइवर के सामने कुछ नहीं। घर पहुँचते ही उतरकर तेज-तेज कदमों से वह अपने कमरे में गयी, पीछे-पीछे रमेश। कमरा बन्द कर वह रमेश पर बरस पड़ी।

"क्या बदतमीजी है। मैं कोई जानवर हूँ जो इस तरह घसीटते हो। तुम्हें कुछ

कहना ही था तो शाम का इन्तजार नही कर सकते थे, एकान्त में नही कह सकते थे। वहाँ श्याम के सामने इस तरह घसीटने का मतलब "तुम्हें यह भी खयाल नहीं रहा कि वहाँ तुम्हारा ड्राइवर भी मौजूद है? इस तरह सरेआम मुझे जलील करने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई···"

"जैसे तुम्हारी हुई मुझसे छिपकर दूसरों से मिलने की।"

"क्या···? मैं छिपकर मिलती हूँ···किससे? मेरे सभी सम्बन्धो के बारे में तुम्हे मालूम है। सबसे मिल चुके हो। वे यहाँ आते हैं और तुम्हारे सामने मैं उनसे बातें करती हूँ।"

"क्या तुमने मुझे बताया कि तुम आज इस वक्त श्याम से मिलोगी?"

"यह कोई बताने लायक बात थी···क्या हर छोटी-छोटी बात कोई किसी को बताता रहेगा?"

"मैं किसी की श्रेणी मे नही आता···तुम्हारा पति हूँ।"

"तुमने पहले कभी कहा क्या कि तुम्हे दूसरों के साथ मेरा उठना-बैठना पसन्द नही?"

"तुम्हें खुद ही समझना चाहिए···मेरे मुँह से सुनना ही जरूरी है तो सुनो—तुम अनन्त, श्याम और अरविन्द से कोई वास्ता नही रखोगी, उनसे एकदम नही मिलोगी!"

"क्यों?"

"यह तुम जानती हो क्यो? श्याम ने अपने घर के लिए ये घण्टियोंवाले पर्दे लिये और वैसे ही तुम्हें खरीद दिये जिन्हें तुमने लाकर यहाँ टाँग लिया। उसका दिया पैन···और यह घड़ी जो तुम हमेशा अपने से चिपकाये घूमती हो। कोई जरूरत नही···"

रमेश ने झपटकर उसका हाथ पकड़ लिया और खरोंचते हुए घड़ी निकाल ली। सुवर्णा चीखती रही—"ये मेरी चीजें हैं। तुम कौन होते हो इन चीजों को लेनेवाले!"

"तुम्हारे लिए न सही, दुनिया के लिए मैं तुम्हारा पति हूँ 'और बताऊँ—यह तुम्हारा कम्प्यूटर कलैण्डर जिसे सिरहाने रखती हो, साथ लिये सोती हो 'मुझे मालूम है, यह अरविन्द विदेश से लाया था।"

"तो···? वे मुझे देते हैं तो मैं भी उन्हें दे सकती हूँ, जब बाहर जाऊँगी तो कुछ ला दूँगी। क्या तुम अपने दोस्तों के लिए नही करते?"

"और वे सेंटीमेंण्टल बातें···जो अनन्त तुम्हारे लिए लिखता है। यह खत जो तुम्हारी दफ्तर की आलमारी से मिला···यह क्या है?"

"तुमने मेरी नामौजूदगी मे मेरी खानातलाशी ली?"

"मैंने वे सारी बातें भी फोन पर सुनी हैं, जो तुम लोगों के बीच होती हैं।"

"तुम इतना कैसे गिर गये रमेश !"
"यह तुम्हें अपने आपसे पूछना चाहिए कि तुम इतना कैसे गिर गयी ?"
"मैं···मैं तो शुरू से ही वही हूँ·· कब मेरे दोस्त नही थे ? और सब तुम्हारे
सामने थे। पहले तो तुमने ऐसी कोई बात नहीं की। ये तुम आदमी लोगों के फ्यूडल
संस्कार हैं कि तुम औरत को बराबर नीचा दिखाने की फिराक में रहते हो। उनके
हर सम्बन्ध में काला ही नजर आयेगा तुम्हें। मैंने तुमसे कभी नही छिपाया कि मैं
अपने दोस्तो को महत्त्व देती हूँ। वे मेरे जीवन मे इतना कुछ जोड़ते हैं। मुझे उन पर
गर्व है "

"वह तो जाहिर है, लेकिन अब यह सब नही चलेगा। काफी ढीला छोड़
चुका।"

"मैं क्या जानवर हूँ ? आदमी हूँ आदमी ··मेरी अपनी भी कुछ जरूरतें
दच्छाएँ हो सकती हैं।"

"जाहिर है तुम्हारी होगी और उन शादी-शुदा मर्दों की जो एक अदद बीवी
घर पर रखे हुए तुम-जैसो की तरफ दौड़ते हैं।"

"ओ नो 'तुम्हारा मन इतना काला है रमेश·· मैं न जानती थी। कितना
गन्दा सोचना होता है तुम्हारा। तुम-जैसा वाकई उन चीजों का अन्दाज ही कहाँ
कर सकता है जो मेरे दोस्त मुझमे जोडते हैं। मैं अपना रास्ता नही छोड़नेवाली।
मैं मिलूंगी, खूब मिलूंगी, देखूं तुम क्या कर लेते हो। जो करना था वह कर ही
चुके!"

"शट अप !"

दाँत पीसते हुए रमेश आगे बढ़ा और अगले क्षण एक जोर का हाथ सुवर्णा के
गाल पर पड़ा 'तिलमिलाहट

"ओ यू ब्रूट !" सुवर्णा चीखकर रह गयी। जिन्दगी मे पहली बार था कि
रमेश ··या कि कोई भी इस तरह पेश आया था।

"पैन और ये घड़ी, कम्प्यूटर और ये खत ··तुम्हारी ये प्यारी यादें अब मेरे
कब्जे में रहेंगी 'और आगे से तुम किसी से कोई प्रेजेण्ट नही लोगी·· समझी ?"

यह रमेश है · इसने उस पर हाथ उठाया ?

सुवर्णा रमेश को सीधे देखती खड़ी रही। वह मुलायम-मुलायम शख्स कहाँ
गया जो सुवर्णा की हर बात मे हाँ करता था, उसकी हर चीज की कद्र करता था।
वह सीधाई, सादगी सिर्फ एक चोला थी, असलियत यह·· यह छलकपट ? इतने
सालो से वह इस आदमी के साथ रह रही थी ? यही वह है जिसके साथ वह एक के
बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी रात हमबिस्तर होती है, जिसके साथ उसने दो बच्चे
पैदा किये है ? वही, जिसके माँ-बाप शादी का प्रस्ताव लेकर आये थे और जिसे
मानकर सुवर्णा ने उन पर और उनसे भी ज्यादा उस मामूली लड़के पर अहसान

कहना ही था तो शाम का इन्तजार नहीं कर सकते थे, एकान्त में नहीं कह सकते थे। वहाँ श्याम के सामने इस तरह घसीटने का मतलब···तुम्हें यह भी खयाल नहीं रहा कि वहाँ तुम्हारा ड्राइवर भी मौजूद है? इस तरह सरेआम मुझे जलील करने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई···"

"जैसे तुम्हारी हुई मुझसे छिपकर दूसरों से मिलने की।"

"क्या···? मैं छिपकर मिलती हूँ···किससे? मेरे सभी सम्बन्धों के बारे में तुम्हें मालूम है। सबसे मिल चुके हो। वे यहाँ आते हैं और तुम्हारे सामने मैं उनसे बातें करती हूँ।"

"क्या तुमने मुझे बताया कि तुम आज इस वक्त श्याम से मिलोगी?"

"यह कोई बताने लायक बात थी···क्या हर छोटी-छोटी बात कोई किसी को बताता रहेगा?"

[illegible]

[illegible]

नहीं?"

"तुम्हें खुद ही समझना चाहिए···मेरे मुँह से सुनना ही जरूरी है तो सुनो—तुम अनन्त, श्याम और अरविन्द से कोई वास्ता नहीं रखोगी, उनसे एकदम नहीं मिलोगी!"

"क्यों?"

"यह तुम जानती हो क्यों? श्याम ने अपने घर के लिए ये मछलियोंवाले पर्दे लिये और वैसे ही तुम्हें खरीद दिये जिन्हें तुमने लाकर यहाँ टाँग लिया। उसका दिया पेन···और यह घड़ी जो तुम हमेशा अपने से चिपकाये घूमती हो। कोई जरूरत नहीं···"

रमेश ने झपटकर उसका हाथ पकड़ लिया और खींचते हुए घड़ी निकाल ली। सुवर्णा चीखती रही—"ये मेरी चीजें हैं। तुम कौन होते हो इन चीजों को लेनेवाले!"

"तुम्हारे लिए न सही, दुनिया के लिए मैं तुम्हारा पति हूँ···और बताऊँ—यह तुम्हारा कम्प्यूटर कलैण्डर जिसे सिरहाने रखती हो, साथ लिये सोती हो। मुझे मालूम है, यह अरविन्द विदेश से लाया था।"

"तो··? वे मुझे देते हैं तो मैं भी उन्हें दे सकती हूँ, जब बाहर जाऊँगी तो कुछ ला दूँगी। क्या तुम अपने दोस्तों के लिए नहीं करते?"

"और ये सेंटीमेण्टल बातें···जो अनन्त तुम्हारे लिए लिखता है। यह खत जो तुम्हारी दफ्तर की आलमारी से मिला···यह क्या है?"

"तुमने मेरी गैरमौजूदगी में मेरी खानातलाशी ली?"

"मैंने वे सारी बातें भी फोन पर सुनी हैं, जो तुम लोगों के बीच होती हैं।"

"तुम इतना कैसे गिर गये रमेश !"

"यह तुम्हें अपने आपसे पूछना चाहिए कि तुम इतना कैसे गिर गयी ?"

"मैं···मैं तो शुरू से ही वही हूँ · कब मेरे दोस्त नही थे ? और सब तुम्हारे सामने थे। पहले तो तुमने ऐसी कोई बात नही की। ये तुम आदमी लोगो के फ्यूडल संस्कार हैं कि तुम औरत को बराबर नीचा दिखाने की फिराक में रहते हो। उनके हर सम्बन्ध में काला ही नजर आयेगा तुम्हे। मैंने तुमसे कभी नही छिपाया कि मैं अपने दोस्तो को महत्त्व देती हूँ। वे मेरे जीवन मे इतना कुछ जोड़ते हैं। मुझे उन पर गर्व है···"

"वह तो जाहिर है, लेकिन अब यह सब नही चलेगा। काफी ढीला छोड़ चुका।"

"मैं क्या जानवर हूँ ? आदमी हूँ आदमी ·मेरी अपनी भी कुछ जरूरतें इच्छाएँ हो सकती हैं।"

"जाहिर है · तुम्हारी होंगी और उन शादी-शुदा मर्दों की जो एक अदद बीवी घर पर रखे हुए तुम-जैसो की तरफ दौड़ते हैं।"

"ओ नो ·तुम्हारा मन इतना काला है रमेश·· मैं न जानती थी। कितना गन्दा सोचना होता है तुम्हारा। तुम-जैसा वाकई उन चीजो का अन्दाज ही कहाँ कर सकता है जो मेरे दोस्त मुझमें जोड़ते हैं। मैं अपना रास्ता नही छोड़नेवाली। मैं मिलूँगी, खूब मिलूँगी, देखूँ तुम क्या कर लेते हो। जो करना था वह कर ही चुके !"

"शट अप !"

दाँत पीसते हुए रमेश आगे बढा और अगले क्षण एक जोर का हाथ सुवर्णा के गाल पर पड़ा···तिलमिलाहट· ·

"ओ यू ब्रूट !" सुवर्णा चीखकर रह गयी। जिन्दगी में पहली बार था कि रमेश ··या कि कोई भी इस तरह पेश आया था।

"पैन और ये घड़ी, कम्प्यूटर· और ये खत ··तुम्हारी ये प्यारी यादें अब मेरे कब्जे मे रहेगी···और आगे से तुम किसी से कोई प्रेजेण्ट नही लोगी · समझी ?"

यह रमेश है ·इसने उस पर हाथ उठाया ?

सुवर्णा रमेश को सीधे देखती खड़ी रही। वह मुलायम-मुलायम शख्स कहाँ गया जो सुवर्णा की हर बात मे हाँ करता था, उसकी हर चीज की कद्र करता था। वह सीधाई, सादगी ··सिर्फ एक चोला थी, असलियत यह · यह छलकपट ? इतने सालों से वह इस आदमी के साथ रह रही थी ? यही वह है जिसके साथ वह एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी रात हमबिस्तर होती है, जिसके साथ उसने दो बच्चे पैदा किये है ? वही, जिसके माँ-बाप शादी का प्रस्ताव लेकर आये थे और जिसे मानकर सुवर्णा ने उन पर और उनसे भी ज्यादा उस मामूली लड़के पर अहसान

किया था ? कौनेज का वह लड़का जो सुवर्णा की तरफ आँख उठाकर देख भी न पाता था'''आज उसे डाँटता है, मारता है ?

यह वही, जिसे सुवर्णा सोचती थी कि वह प्यार करती है।

बिना कुछ कहे वह बरामदे में निकल आयी। इधर घर की इमारत, सामने और अगल-बगल दीवारें सीमेण्ट, ईंट, पत्थर। हरियाली की झीनी पर्त जहाँ-तहाँ से ढकने की कोशिश करती है पर चारदीवारी का नगापन छिपाये नहीं छिपता। हर तरफ से दीवारें झाँकती हैं सख्त और ठोस !

सामने चिनचिनाती धूप जैसे एक बड़े कटोरे में लबालब भरी हुई थी, लॉन का हरा तल पाकर और भी चिलकती हुई। सब तरफ दोपहर की वीरानी धूल की मानिन्द फैली थी, बाहर की गली और दरख्तों को भी लपेटे हुए।

पौधे मुर्झाये खड़े थे, उन्हीं के बीच कहीं वह भी'''

और बात नहीं हुई। रात सुवर्णा अलग कमरे में सोयी' ऐसे आदमी के एकदम बगल में कोई कैसे सो सकता है ! अब तो उसे यह भी सोचना होगा कि वह रमेश के साथ एक ही घर में कैसे रह सकती है ! हर बार जब वह छुयेगा या बोलेगा तो भीतर का वह काला आदमी क्या भुलाया जा सकेगा ?

अगली सुबह, बच्चों के स्कूल जाने के बाद चाय पीते हुए उसने रमेश से कहा—स्वर ठण्डा, सधा हुआ—"रमेश, मैं घर छोड़कर जाने का सोचती हूँ, मैं तुम्हारे साथ अब नहीं रह सकती। मेरे पास नौकरी है। मैं अपना खयाल रख सकती हूँ और बच्चों को पढ़ा-लिखा भी सकती हूँ।"

रमेश कुछ नहीं बोला। उठकर कमरे में चला गया, गोया कि उसकी बात को ऐसे ले रहा हो जैसे कि कोई भी पति अपनी पत्नी की हर बार की मायके जाने की धमकी को लेता है।

जल्दी ही वह वापस आया और बोला—"इसे देखती हो'' " उसके हाथ में पिस्तौल थी। "अगर तुम सोचती हो कि तुम मुझे छोड़कर इन तीन लफंगों में किसी एक को पकड़कर बैठ जाओगी तो इस घर दिमाग को भी समझ लो, अच्छी तरह से मैं तुम्हें और तुम्हारे साले साथियों को भून डालूँगा। मैं जिन्दगी को यूँ खत्म कर सकता हूँ ' " रमेश चुटकी बजाकर दिखा रहा था।

जहाँ जिन्दगी की ही कीमत नहीं तो फिर कोई मूल्य, कोई तहजीब की बात ही कहाँ उठती है। कैसे एकाएक रमेश अपने असली चोले में आ निकला—पुलिसवाला ! यह पुलिस का ही तरीका था—उस समय छापा मारो जब बिल्कुल उम्मीद न की जा रही हो'''और चौतरफा घेरा डालो। इसीलिए एक साथ उसने फोन टेप कराये, उसकी नामौजूदगी में घर से कुञ्जी ले जाकर उसके दफ्तर में चोर की तरह तलाशी ली, पति होने की आड़ लेते हुए उसकी चीजों पर कब्जा कर लिया और श्याम के साथ उसे पकड़ने की कोशिश की'''सारा कुछ ऐसे जैसे कि आप

कोई दफ्तरी कार्यवाही कर रहे हों, यह बिल्कुल खयाल नही कि मसला इन्सानों का है, और यहाँ भी ऐसा जिसका ताल्लुक आपकी अपनी बीवी से है ! और अब पिस्टल ··

"यह तो ब्लैकमेल है ।" सुवर्णा ने कहा ।

' 'जो कुछ भी तुम समझो···लेकिन यह पक्का समझ लो कि तुम्हें मेरे साथ ही रहना है और अब आगे मेरे हिसाब से रहना है ।"

उस आदमी से आगे क्या बात की जा सकती थी, वह उठ गयी ।

प्रशिक्षण खतम कर जिस रोज सुवर्णा दफ्तर पहुँची उसी रोज श्याम मोहन भड़भड़ाया-सा दिखता आ पहुँचा । कोई इस तरह उसके बाहर रहने के दिन गिने हुए बैठा हो इससे भीतर कैसी खुनखुनाहट होती सुवर्णा मे, पर आज श्याम के लिए सूखा-सूखा स्वागत भी मुँह तक नही आया । किसी तरह खोचकर भीतर मे सुवर्णा ने 'हलो' निकाला जो श्याम तक पहुँचते-पहुँचते ही बुझ गया ।

श्याम मामने बैठ गया । दोनो एक-दूसरे को अजीब खाली-खाली नजरो से देखते हुए ··खेत मे आमने-सामने खड़े दो बिजूके । सुवर्णा श्याम में अपना पुराना दोस्त ढूँढने की कोशिश कर रही है । उस हादसे ने जिसमे श्याम का कोई कसूर नही ··ऐसा क्या कर दिया कि श्याम अपरिचित हो गया ।

"घर पर उस दिन झगड़ा हुआ था ?"

"नही ।" सुवर्णा सपाक से झूठ बोल गयी ।

"चलो, 'आल इज वैल दैट एण्ड्स वैल' । मैं तभी सोचता था कि रमेश आया है तो बैठेगा, मिठाई खायेगा ·और तब जायेगा । मैं उसकी जगह होता तो यही करता । तुम्हे ले ही जाना था तो किसी बहाने से ले जाता और घर मे चाहे जो बात करता । यहाँ वह बाहर ऐसा व्यवहार करता है, घर में कुछ नही · पर चलो हो जाता है कभी ऐसा भी । हम अपने आप पर काबू खो बैठते हैं···"

सुवर्णा कुछ नही बोली ।

"मुझे अफसोस है कि मेरे वहाँ जाने से यह हो गया । उसी दिन तुमसे मिलना है·· यह उतावलापन न होता तो मैं न वहाँ जाता और न रमेश को तुम्हारे साथ वैसा व्यवहार करने का मौका मिलता ।"

······

"गुस्सा तो बहुत हुए होगे रमेश भाई !"

"वह नही चाहता कि मैं तुमसे, अनन्त या अरविन्द से मिलूँ !"

"रमेश को यह सोचना चाहिए कि हम शिक्षित समाज के लोग हैं, हमारी सोसाइटी मे यह सब चलता है । लोग पार्टियो मे एक-दूसरे की बीवियों के साथ

डांस भी करते हैं। पति-पत्नी हर जगह तो साथ बने नहीं रहते।"

"रमेश की शिकायत है कि वह श्रीमती श्याम मोहन के साथ इस तरह नहीं घूम सकता जैसे तुम मेरे साथ घूम लेते हो।"

"वे दोनों घूमते तो मुझे तो कोई मलाल नहीं होता। अब मेरी बीवी उस स्वभाव की नहीं है" तो इसका मैं क्या करूँ। रमेश जाये और वैसी दोस्ती पैदा कर ले जैसी तुम्हारे-मेरे बीच है।"

सुवर्णा ने कुछ नहीं कहा। ऐसा लगा जैसे कब्र मे बोल रही हो, बोलते-बोलते थक आयी हो। क्या गन्दगी उछाल रहे हैं ये "जैसे बरबादअली बच्चे एक-दूसरे पर कीचड़ उछालनेवाला खेल खेलते हैं। जिस विषय को वह दूर रखने की कोशिश कर रही है, श्याम भी उसी की तरफ घसीटने चला आया। शायद अब बात करने को यही रहे, काफी दिनों तक। श्याम से दबी-दबी वितृष्णा महसूस कर रही है "क्या सिर्फ इसलिए कि वह वाकया हुआ तब जब वह श्याम के साथ थी, या इसलिए कि श्याम के खिलाफ रमेश का कितना कुछ अनाप-शनाप सुवर्णा के कानों मे पड़ता रहा है पिछले दिनों। अगर वितृष्णा इन कारणों से है तो गलत है। पर कुछ हुआ जरूर है, वह नहीं चाहती श्याम के पास होना, श्याम का कोई कुसूर नहीं है फिर भी···

"तुम कहो तो मैं रमेश को जाकर समझाऊँ?"

"कुछ मत कहो उससे अभी! किसी के देने से समझ नहीं मिल जाती। उसे भीतर से उगना चाहिए!"

"वैसे रमेश ने अपनी गलती जरूर महसूस की होगी। वह समझ जायेगा। तुम परेशान मत हो उसके व्यवहार को सीरयसली लेने की जरूरत नहीं है···भूल जाओ। सब चलता है यार "नाउ बी चियरफुल, कम आन···"

अगले ही क्षण श्याम की संजीदगी उड़ गयी···जैसे हल्के-फुल्के बादल का कोई बिखरा-बिखरा गिरोह किसी बस्ती पर से ऊपर-ऊपर गुजर गया हो। फकक से बाहर निकल आया उसका वही पुराना चेहरा - हर पल हँसता हुआ, हर चीज को हँसी मे उड़ाता हुआ। कितना आसान "सुवर्णा अचरज से देखती रही" क्या रमेश ने जो किया उसे वह इस आसानी से उड़ा सकती है, श्याम के साथ अगर ऐसा कुछ हुआ होता तो उसे भी क्या ऐसे ही फूँक करके उड़ा सकता था वह? उड़ाया भी जा सके तो क्या उड़ाया जाना चाहिए? चाहे जितना बड़ा-से-बड़ा कुछ हो जाय··· उसे भी झाड़ दो, भूल जाओ "कैसी बेहयाई और लीपा-पोतीवाली संस्कृति है यह"

"वैसे तुम अगर रमेश के कहने पर चलना चाहती हो तो मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं, मियाँ-बीवी के बीच क्यों कोई कबाब में हड्डी बने"" श्याम ने उठते हुए कहा "
"पर क्या तुम सिर्फ रमेश के कहने पर खुद को बदल सकती हो "अब, भाभी

जिन्दगी बिता चुकने के बाद ?"

"कोशिश की जाय तो कोई खराब बात भी नही है' पर मैं वह नही कर रही हूँ। पता नही क्या कर रही हूँ, क्या करूँगी सिर्फ कुछ दिनों के लिए एकदम अलग रहना चाहती हूँ।"

"मतलब 'आउट आफ सर्कुलेशन' रहोगी ?"

सुवर्णा का ही फिकरा था वह—जब भी तीन-चार दिनो के लिए कही बाहर जाना होता था, या किसी वजह से दोस्तो से मिलने की स्थिति नही होती थी, वह पहले से ही सबको बता देती थी कि फलां तारीख तक वह सर्कुलेशन मे नही रहेगी —आज उसे ही ओछा लग रहा था, जैसे उसने खुद को कोई सिक्का, कोई चीज बना दिया था ? साफ-साफ देख रही थी कि वह मुहावरा सुवर्णा को नही बयान कर सकता था अब। वह एकदम अलग रहना चाहती है जैसे भीड़-भड़क्केवाले शहर के किसी शोर-शराबेवाले इलाके मे दिन-भर गुजारने के बाद एकाएक सुनसान मे होने की तबियत हो आती है।

सुवर्णा ने सिर्फ फीकी हँसी के साथ सिर थोडा-सा हिला दिया "श्याम कुछ भी समझ ले, क्या फर्क पड़ता है"

सुवर्णा सोचती थी कि जिन्दगी चहचहाने के लिए है "दुनिया की खूबसूरती अपने भीतर लो और उसे खुश-खुश दूसरों में बांटो। हर के पास कुछ-न-कुछ देने को है, हर कोई कुछ-न-कुछ पाना भी चाहता है। लेने-देने की हिस्सेदारी ही जीवन है" और अगर इसे हासिल करने में थोड़ा-बहुत शरीर भी बीच मे आ जाता है तो बहुत हर्ज नही है "आखिर ये 'टैबूज' ही तो हैं ! सबसे लो और इस तरह अपने अनुभव का दायरा बढाओ। आदमी का निजी दायरा तो कितना छोटा होता है" कुएँ में पडे मेंढक की तरह उछलते-कूदते रहे तो क्या जिये ? इसीलिए सुवर्णा को हर व्यक्ति का अच्छा हिस्सा खटाक-से दिख जाता था और वह उस तरफ बढ़ जाती थी। जहाँ तक हम अच्छा लेते-देते हैं, वही तक किसी सम्बन्ध की अहमियत है, जहाँ एक-दूसरे के जीवन मे 'निगेटिव' भरने लगे कि समझो, अलग होने का समय आ गया।

सुवर्णा निर्बन्ध होकर बहती रही, पर रमेश का खयाल बराबर रखा उसे बहने मे। पर ये दोनों—उसका बहना और रमेश—जैसे ताश के महल थे, एक फूंक मे ढह गये। उसके लिए न अब रमेश फिर से वह होगा, न वही पहले की तरह बह सकेगी।

कैसे तेज-तेज चलती रही वह "और पहुँचना यहाँ था ? अब क्या है उसके पास"कौन लोग ? रमेश से तो सबकी बाते कर लेती थी, रमेश की बातें किससे करे "करेगी तो अपनी ही तौहीनी है। कहाँ हर समय लगता था कि उसके चारो

डांस भी करते हैं। पति-पत्नी हर जगह तो साथ बने नही रहते।"

"रमेश की शिकायत है कि वह श्रीमती श्याम मोहन के साथ इस तरह नही घूम सकता जैसे तुम मेरे साथ घूम लेते हो।"

"वे दोनो घूमते तो मुझे तो कोई मलाल नही होता। अब मेरी बीवी उस स्वभाव की नही है" तो इसका मैं क्या करूँ। रमेश जाये और वैसी दोस्ती पैदा कर ले जैसी तुम्हारे-मेरे बीच है।"

सुवर्णा ने कुछ नही कहा। ऐसा लगा जैसे कब से बोल रही हो, बोलते-बोलते थक आयी हो। क्या गन्दगी उछाल रहे हैं वे" जैसे बरबादअली बच्चे एक-दूसरे पर कीचड़ उछालनेवाला खेल खेलते हैं। जिस विषय को वह दूर रखने की कोशिश कर रही है, श्याम भी उसी की तरफ घसीटने चला आया। शायद अब बात करने को यही रहे, काफी दिनो तक। श्याम से दबी-दबी वितृष्णा महसूस कर रही है' क्या सिर्फ इसलिए कि वह वाकया हुआ तब जब वह श्याम के साथ थी, या इसलिए कि श्याम के खिलाफ रमेश का कितना कुछ अनाप-शनाप सुवर्णा के कानो मे पड़ता रहा है पिछले दिनो। अगर वितृष्णा इन कारणों से है तो गलत है। पर कुछ हुआ जरूर है, वह नही चाहती श्याम के पास होना, श्याम का कोई कुसूर नही है फिर भी···

"तुम कहो तो मैं रमेश को जाकर समझाऊँ?"

"कुछ मत कहो उससे अभी! किसी के देने से समझ नही मिल जाती। उसे भीतर से उगना चाहिए!"

"वैसे रमेश ने अपनी गलती जरूर महसूस की होगी। वह समझ जायेगा। तुम परेशान मत हो 'उसके व्यवहार को सीरयसली लेने की जरूरत नही है भूल जाओ। सब चलता है यार नाउ बी चियरफुल, कम आन···"

अगले ही क्षण श्याम की संजीदगी उड़ गयी···जैसे हल्के-फुल्के बादल का कोई बिखरा-बिखरा गिरोह किसी बस्ती पर से ऊपर-ऊपर गुजर गया हो। फक्क से बाहर निकल आया उसका वही पुराना चेहरा 'हर पल हँसता हुआ, हर चीज को हँसी मे उड़ाता हुआ। कितना आसान "सुवर्णा अचरज से देखती रही' क्या रमेश ने जो किया उसे वह इस आसानी से उड़ा सकती है, श्याम के साथ अगर ऐसा कुछ हुआ होता तो उसे भी क्या ऐसे ही फूंक करके उड़ा सकता था वह? उड़ाया भी जा सके तो क्या उड़ाया जाना चाहिए? चाहे जितना बडा-से-बडा कुछ हो जाय··· उसे भी झाड़ दो, भूल जाओ "कैसी बेहयाई और लीपा-पोतीवाली संस्कृति है यह'

"वैसे तुम अगर रमेश के कहने पर चलना चाहती हो तो मैं तुम्हे रोकूँगा नही, मियाँ-बीवी के बीच क्यों कोई कबाब में हड्डी बने ··" श्याम ने उठते हुए कहा··· "पर क्या तुम सिर्फ रमेश के कहने पर खुद को बदल सकती हो "अब, आधी

जिन्दगी बिता चुकने के बाद ?"

"कोशिश की जाय तो कोई खराब बात भी नहीं है पर मैं वह नहीं कर रही हूँ। पता नहीं क्या कर रही हूँ, क्या करूँगी 'सिर्फ कुछ दिनों के लिए एकदम अलग रहना चाहती हूँ।"

"मतलब 'आउट आफ सर्कुलेशन' रहोगी ?"

सुवर्णा का ही फिकरा था वह—जब भी तीन-चार दिनों के लिए कहीं बाहर जाना होता था, या किसी वजह से दोस्तों से मिलने की स्थिति नहीं होती थी, वह पहले से ही सबको बता देती थी कि फलां तारीख तक वह सर्कुलेशन में नहीं रहेगी—आज उसे ही ओछा लग रहा था, जैसे उसने खुद को कोई सिक्का, कोई चीज बना दिया था ? साफ-साफ देख रही थी कि वह मुहावरा सुवर्णा को नहीं बयान कर सकता था अब। वह एकदम अलग रहना चाहती है जैसे भीड़-भड़क्केवाले शहर के किसी शोर-शराबेवाले इलाके में दिन-भर गुजारने के बाद एकाएक सुनसान में होने की तबियत हो आती है।

सुवर्णा ने सिर्फ फीकी हँसी के साथ सिर थोड़ा-सा हिला दिया···श्याम कुछ भी समझ ले, क्या फर्क पड़ता है···

सुवर्णा सोचती थी कि जिन्दगी चहचहाने के लिए है 'दुनिया की खूबसूरती अपने भीतर लो और उसे खुश-खुश दूसरों में बांटो। हर के पास कुछ-न-कुछ देने को है, हर कोई कुछ-न-कुछ पाना भी चाहता है। लेने-देने की हिस्सेदारी ही जीवन है·· और अगर इसे हासिल करने में थोड़ा-बहुत शरीर भी बीच में आ जाता है तो बहुत हर्ज नहीं है···आखिर ये 'टैबूज़' ही तो हैं! सबसे लो और इस तरह अपने अनुभव का दायरा बढ़ाओ। आदमी का निजी दायरा तो कितना छोटा होता है' कुएँ में पड़े मेंढक की तरह उछलते-कूदते रहे तो क्या जिये ? इसीलिए सुवर्णा को हर व्यक्ति का अच्छा हिस्सा खटाक-से दिख जाता था और वह उस तरफ बढ़ जाती थी। जहाँ तक हम अच्छा लेते-देते हैं, वहीं तक किसी सम्बन्ध की अहमियत है, जहाँ एक-दूसरे के जीवन में 'निगेटिव' भरने लगे कि समझो, अलग होने का समय आ गया।

सुवर्णा निर्बन्ध होकर बहती रही, पर रमेश का खयाल बराबर रखा उसे बहने में। पर ये दोनों—उसका बहना और रमेश—जैसे ताश के महल थे, एक फूंक में ढह गये। उसके लिए न अब रमेश फिर से वह होगा, न वही पहले की तरह बह सकेगी।

कैसे तेज-तेज चलती रही वह ··और पहुँचना यहाँ था ? अब क्या है उसके पास··कौन लोग ? रमेश से तो सबकी बातें कर लेती थी, रमेश की बातें किससे करे ··करेगी तो अपनी ही तौहीनी है। कहाँ हर समय लगता था कि उसके चारों

तरफ दोस्त-ही-दोस्त हैं, कितनी भरी-भरी है उसकी दुनिया···लेकिन एक हादसे ने ही सब चरमराकर रख दिया। वे गोग "सितारों का वह हुजूम"·फूं हो गया एकाएक, जैसे ऊपर तनी सिर्फ भाप की चादर थी कुहासा" एक तीखी किरण और उड़ गया। है कोई 'किसी को पुकार सकती है वह?

उसके सामने एक तस्वीर झूलने लगती है—

सुवर्णा दौड रही है एक चक्कर मे, जिसमें जगह-जगह लोग खड़े हैं—अरविन्द, श्याम, अनन्त, रमेश! कुछ दूसरे लोग भी। चक्करों मे एक से दूसरे तक दौड़ते-दौड़ते वह गिर पड़ी है। सबकी तरफ देख रही है कि कौन आकर उसे उठायेगा। कोई नही हिलता 'उसके गिरते ही वे लोग मूर्तियाँ हो गये हैं, जीवित होगे अगर वह फिर से दौडने लगे। पर वह उठ सके तभी न···?

क्या है जो उसे थामेगा—उठायेगा? अब तक दौड़ने के अलावा क्या किया ' दौड़ने ने कुछ ऐसा दिया जो उसकी मदद कर सके? अपने भीतर भी कुछ वह उगाया नही जिसके सहारे उठ खड़ी हो।

खालीपन वहाँ, जहाँ अमूमन भरा-भरा रहता था "अब इतना खाली-खाली कि हवा भी नही ठहरती। सुवर्णा लुढकती जा रही है 'अपने भीतर, अँधेरे मे" ढलान पर ऊपर से नीचे जाती कंकड़ी की तरह।

बरामदे से ही सुवर्णा ने मुझे आते हुए देखा···चेहरे पर कोई भाव नही···जैसे कोई ऐसे व्यक्ति को देखता है जो वक्त-बे-वक्त आता ही रहता है, जिसका आना-जाना कुछ नही होता।

एक नजर मेरी तरफ फेंककर वह व्यस्त हो गयी। बच्चों और उनके मास्टर-जी से बातें कर रही थी। मैं काफी दिनों बाद उसके घर आ रहा था। कई दिनो मे फोन पर भी बात नही हो सकी थी। उसकी तरफ से फोन आने बन्द थे। जब मैं करता, वह एक-दो वाक्य बोलकर, बाद मे बात करेंगे' ऐसा कुछ कहकर रख देती। फिर उसका फोन नही आता। मैं थोड़ा गये वक्त-जैसा तटस्थ था कि अगर दूर-दूर रहने मे ही वह खुश है तो मुझे भी उसी दूरी का अभ्यास डाल लेना चाहिए "पर फिर मेरी कस्बई पस्ती में उजाले की एक किरण थिरकने लगी—उसे तुम्हारी जरूरत हो सकती है!

मुझे देखकर भी वह भीतर चली गयी। मास्टरजी वापस हो रहे थे, बच्चे इधर-उधर हो गये थे। मैं जब बरामदे मे पहुँचा तो वहाँ कोई नही था। अन्दर आवाजें थी "उसी की, रामू को कुछ हिदायतें दे रही थी। मैंने घण्टी बजायी।

थोड़ी देर मे वह निकली, पीली साड़ी-ब्लाउज। दुबली हो गयी थी, चेहरा सूखा था, सिकुड़ा हुआ···उदासी की घनी पर्तें जैसे वहाँ चिपककर रह गयी थी।

मुझे देखकर कुछ नही बोली···बस देखती रही, वह भी उचटे-उचटे। पहले ऐसे मे वह कुछ गर्मजोशी के साथ 'हा···य' कहती।

"क्या बीमार थी?" मैंने पूछा।

"फूलवालो की सैर जा रही हूँ। बच्चे जिद् कर रहे थे। रमेश वहीं हैं।"

उसके हाथ में एक कार्ड था, जिसे वह पंखे की तरह हिला रही थी।

"ठीक है, तो मैं चलता हूँ। वह पत्रिका दोगी क्या···"

"पत्रिका···कौन-सी?"

"जो तुमने माँगी थी, जिसमें वह लेख था—'आधुनिक और चिरन्तन जीवन-मूल्य'। तुमने कहा था पढ़ चुकी हो, कभी भी आकर ले जाना।"

वह उलझनों से भर आयी। याद कर रही थी, और याद नही आ रहा था··· या कि एक बृहत्तर सन्दर्भ मे वह और ही छोटी हुई जा रही थी।

"*आज ही चाहिए···अभी···?*"

"ठीक है, फिर देख लेना ··मेरे एक मित्र यहाँ आये थे, सिर्फ चार दिनों के लिए। वे माँग रहे थे। इसलिए।"

"*देखूँगी···ढूँढ़ना होगा।*"

वह बार-बार इधर-उधर देखती थी··लाचार-सी। कहाँ उसका पुराना रूप—आत्मविश्वास की जीती-जागती तस्वीर! कहाँ यह···जैसे कोई पौधा सिर्फ एक पतली जड़ के सहारे जमीन से हिलगा हो, तेज़ हवा में उड़ा-उड़ा जाता···अब उखड़ा, अब उखड़ा···

बरामदे से निकलकर हम थोड़ी देर बाहर खड़े हुए, आमने-सामने। वही लम्बी काया, उजली-उजली, खूबसूरत पर मुर्झायी-सी। जब वह तैयार होकर दफ्तर के लिए निकलती है तो कितनी ताजा···जैसे साक्षात बसन्त इधर-उधर दौड़ रहा हो। आज सिर्फ एक छोटा दुबला-पतला अमलतास था···निस्पन्द।

"कैसे हो?"

खाली-खाली चेहरे में उगकर वह सवाल मुझ तक आया, सूखा, मरा हुआ··· कि जवाब में कुछ कहने की जरूरत ही न रहे, न ही उधर से कोई वैसी अपेक्षा ही। उसका चेहरा जो लहरों में खिचता-तनता रहता था, आज एकदम शून्य था··· 'ब्लैंक'···जैसे कोई पथरीली गोट चारों तरफ से उसे मढ़ती चली जा रही थी। आँखें एकदम भावहीन, अर्से से खाली पड़े किसी घर की तरह। उसकी नजरें मेरी तरफ थी पर वह मुझे नहीं देख रही थी, मेरे पार कहीं···शायद कहीं भी नहीं देख रही थी।

"फोन नहीं करती आजकल?"

"नहीं···क्या?"

वह आगे बढ़ गयी जैसे कि अपना कुछ कहना और सुनना दोनों ही बेकार लग

रहा था उसे, बैताल उड़कर जा चुका था। हम दोनों ही उस दिशा को टटोल रहे थे, जिधर को वह उड़ा था शायद मैं ही, वह तो सिर्फ एक खोल की तरह चल रही थी। पता नहीं वह किसी ट्रान्स में थी या कि चेहरे पर उगता हुआ यह पथरीलापन किसी भयकर बीमारी की शुरूआत थी। थोड़ी देर में ही मृत्यु को प्राप्त होनेवाले व्यक्ति के चेहरे पर भी कुछ ऐसा ही पथरीलापन फैलने लगता है।

बच्चे तैयार होकर बाहर आ गये थे। वे सब कार की तरफ बढ़ गये। पहले बच्चे बैठे, फिर वह। मुझे देखती रही···वैसी ही शून्य-शून्य। कार चल पड़ी तब जैसे उसे कुछ ध्यान आया और उसने अपना निर्जीव-सा हाथ हिलाया ··पर तब तक कार आगे जा चुकी थी।

फूलवालों की सैर। रमेश और उसका परिवार विशेष अतिथि। सुवर्णा और बच्चों का एक विशेष परिवार की तरह स्वागत। एक समय था जब अपना यों महत्वपूर्ण होना सुवर्णा के भीतर भी कोई खुनक पैदा करता था। अब यह सब खोखला लग रहा है। स्वागत करनेवाला जहाँ ले आया वहाँ चली आयी, जहाँ बैठने को कहा बैठ गयी। उसकी एक तरफ रमेश, दूसरी तरफ बच्चे। रमेश के चेहरे पर फ़ख्र—देख लो···मैं तुम्हें यह दे सकता हूँ···इतनी इज़्ज़त।

चारों तरफ उत्साह-ही-उत्साह। गाजे-बाजे के साथ पखा-पखी निकाले जा रहे हैं ··रंग-बिरंगे फूलों से जड़े हुए। एक-से-एक डिजाइनें। यह फूलों का मेला है। हर तरफ रंग।

"मम्मी, वह देखो। कौन-से फूल हैं वे···पीले-पीले।" छोटा कुरेदता है।

"मुझे नहीं मालूम बेटे।"

"कितने सुन्दर हैं···हैं न?"

"हाँ।"

रमेश उठकर बच्चों की तरफ चला जाता है। उनके बीच में जाकर बैठ जाता है और फिर उन्हें बातों में उलझा लेता है। 'यह मेल-मिलाप का त्यौहार है···' वह बच्चों को बता रहा है···

सुवर्णा बात नहीं करती, बच्चों से भी नहीं—रमेश सोचता है—घर की तरह यहाँ भी मुँह फुलाये बैठी है। अपनी 'पोजीशन' का जरा भी खयाल नहीं। यहाँ सभी की नजरें उन पर हैं, कम-से-कम यहाँ तो

रमेश ने जरूरत से ज्यादा ढील दे रखी थी। सुवर्णा ने उसका नाजायज फायदा उठाया। बजाय कृतज्ञ होने के वह रमेश को ही ढीला-ढीला समझने लगी···ऐसे

हुक्म चलाती थी जैसे रमेश उसके दफ्तर का ही कोई क्लर्क हो। रमेश जितना उसकी हाँ-में-हाँ करता चला गया, उतना ही वह अपना चलाने की आदत डालती चली गयी। कुछ भी जो उसके खिलाफ पडता हो वह सुनना भी बर्दाश्त नही। आखिर रमेश को सख्त होना पड़ा। सुवर्णा के सामने एकाएक ऐसे सुबूत रख दिये कि सुवर्णा की सारी दिलेरी निकल गयी' अब आगे रमेश की ही चलेगी। सुवर्णा का हौसला पस्त है। रमेश जानता है सुवर्णा को धक्का पहुँचा है ''पर यही तो वह चाहता था। एकाएक जब सख्त रवैया अपनाओ तो झटका तो लगता ही है नींद मे झूलते सिपाही को एकाएक तनकर खडा होना है। सख्ती की योजना का सारा दारोमदार यही है कि दिमाग पर इस तरह हावी हो जाओ कि वह सोच ही न सके। बेशक, इसके पहले तैयारी पूरी होना चाहिए। सख्ती जरूरी है, सख्त न हो तो लोग कमजोर समझते हैं। सुवर्णा पढ़ी-लिखी है, कमाती है तो इसके यह मायने तो नही कि कुछ भी करती रहे, वह सब भी जिससे रमेश का सिर शर्म से झुकता है। न पढ़ती-लिखती न जाये दफ्तर क्या जरूरत! इनसे रमेश को क्या मिलता है। दफ्तर औरत को फ्लर्टिंग का मौका देता है— साला मियाँ घर मे बैठा फाँके मार रहा है और तुम! डैम इट! बीवी की हिस्सेदारी तो नही की जा सकती।

सुवर्णा कहती है वह कोई जायदाद नही है। शादी के बाद अगर सिर्फ पति का ही हक है तो जायदाद नही तो और क्या हुई? सुवर्णा कहती है—हक प्यार से, एक दूसरे का खयाल करने से पैदा होता है बकवास! कितने सालो से वह साथ रह रहे हैं। सुवर्णा ने पहले कभी यह सब न सोचा। जब से उस अनन्त के बच्चे से दोस्ती हुई कि सुवर्णा के दिमाग मे यह सब फितूर भरने लगा। अरे भाई ''आपका घर है। आपने अपने लिए घर में रहना चुना है, पति है, बच्चे हैं' उनको देखो, सँवारो' यही तुम्हारी जिन्दगी का मकसद है''और क्या अनाप-शनाप ढूँढ़ते फिरते हो। यह हीर-राँझा, सोहनी-महीवाल का कोई वक्त है क्या 'विज्ञान के युग मे ऐसी बातें बीमार लोग करते हैं। हम साथ रहें, जमीन-जायदाद मे बढ़ोतरी करें, हम और हमारे बच्चे आगे बढ़ें, तरक्की करें और क्या चाहिए। प्यार-वार जितना चाहिए वह रात को चलता ही रहता है '

और उर्वशी?

रमेश की गाड़ी यहाँ अटकती है। सुवर्णा को रमेश और उर्वशी के बारे मे इतना ही मालूम है कि वे सहकर्मी हैं। सुवर्णा को कभी शक तक नही हो सका। रमेश चीजो को दिमाग से चिपकाये नही घूमता कि घर में अपने आदमी के बगल में ही लेटे हुए हैं और मन मे घूम रहा है कोई और। उर्वशी भी रमेश के मिजाज की है। कभी दोनो की तबियत हुई, वक्त हुआ ''किया और दिमाग से उतारा। एक चीज जिसका ताल्लुक शरीर से है वह दिमाग को क्यो खराब करती रहे ''यही आधुनिक ढंग से सोचना है। रमेश और उर्वशी ''दोनो दोस्त हैं तो एक-दूसरे का

नहीं मालूम कि ऐसा जीना क्या होता है, पर सोचती है कि जीते-जीते पता लग जायेगा। अगर वह बन्द होकर पड़ रही तो फिर तो गुंजाइश ही नहीं बचेगी। इसीलिए उसके सम्बन्ध है, तरह-तरह के लोगों से तरह-तरह के। अनन्त कहता है—जिन्दगी का सबसे बड़ा मूल्य प्यार है' पर प्यार भी तो इसीलिए न कि जीने का एक और पक्ष खोले' 'उसमें कुछ जोड़े? असली चीज है जीना, जिसके लिए सबकुछ है।

सुवर्णा जीना चाहती है ' अपने ढंग से, जी भरकर उसके ये सम्बन्ध इसलिए जरूरी हैं कि वे सुवर्णा को जीने का अहसास कराते हैं—वह हर आदमी के साथ एक अलग अन्दाज मे जी लेती है। सुवर्णा चाहती है कि लोग उसकी कद्र एक आम से ज्यादा अक्लमन्द और एक ऐसे व्यक्ति के रूप मे करें जो हर तरह से स्वतन्त्र है, जो सिर्फ अपने पर आश्रित है। आदमी और औरत की बात तो कहीं आना ही नही चाहिए। थोड़ा-बहुत ऐसा भी हो भी लेता है। उसके सभी सम्बन्धो की शुरूआत एक-दूसरे के गुणो की तारीफ और कद्र से ही हुई, लेकिन पता नही कहाँ क्या हो जाता है कि थोडी दूर चलकर औरतपना और आदमीपना कही से घुस आता है। सामनेवाला उसकी खूबसूरती की तारीफ करता होता है और उसे उस तारीफ मे मजा आता होता है। कुछ के साथ बात थोड़ा और आगे बढ़ जाती है, फिर सुवर्णा को कोशिश करना पड़ती है कि वह अपने को बचाये भी रखे और दूसरे व्यक्ति के साथ जीती भी रहे। बाहर चलती इस जद्दोजहद से फर्क रमेश की बात भी नही है। रमेश की भी तकलीफ यही है कि वह उसे पत्नी के रूप मे पाकर भी पूरी तरह नही पा सका लेकिन क्या कोई किसी को इस तरह पा सकता है, पा भी लेता है तो क्या यह अपने-आपमे किसी हत्या से कम है? फिर पाने की यह हवस क्यो?

कभी-कभी वह खुद को कोसती है कि अगर उसका सोचना यही होना था तो फिर किसी के साथ पत्नी के रूप मे क्यो बँधी? लेकिन बीस-इक्कीस की उम्र मे यह समझ ही कहाँ थी कि बन्धन क्या होते हैं। अब यहाँ पहुँचकर बन्धनो को वह चाहे जितना झुठलाये, वे रहेंगे और गड़ते रहेंगे। दरअसल जिस तरह वह उन्हें सीधा सामने आकर झुठलाना चाहती है वैसा कभी होने नही दिया जायेगा। उस समाज मे जहाँ लड़की को अकेला घूमते देखकर ही लोग पीछे लग जाते हैं, वहाँ बन्धनों को वह चोरी-छिपे ही झुठला सकती है। कितनी बार उसका मन किया है कि आधी रात में सुनसान सड़को के अँधेरों को पीकर वह अपनी रूह मे उतारे, बारिश मे भीगती हुई घास पर दौडती चली जाये, लम्बी-लम्बी सैरो पर अकेली निकल जाये, सुनसान पगडण्डियो पर घण्टो पैदल चलती रहे, अकेली किसी नदी मे तैरे-उतराये · पर क्या इसमे से कुछ भी कभी वह कर सकी? क्यो ऐसा है कि प्रकृति को अपने मे भरने के लिए भी आदमी का साथ चाहिए "रमेश को दिलचस्पी या फुरसत नही,

तो किसी दूसरे का साथ। अक्सर ऐसा हुआ है कि वह किसी के साथ दरख्तों के नीचे घूमती होती है और मन करता है कि बगलवाला आदमी कुछ न बोले, एकदम ठप पड़ जाये, उसे सीधा-सीधा दरख्तों से बात करने दे…

रमेश को उसके सम्बन्ध पसन्द नहीं। वह कुछ खास लोगों से न मिले-जुले… क्यों? वह खुश होगा। मतलब वह बीवी भी नहीं, लौंडी हो गयी। रमेश की एक बड़ी दलील यह होगी कि वह खुद बीवी के अलावा किसी औरत से किसी तरह के सम्बन्ध नहीं रखता—वफा! पर यह किस किस्म की वफा है जो दूसरे को अपने-आपके प्रति वफादार होने की गुंजाइश नहीं छोड़ती। हम क्यों एक चीज का बदला ठीक उसी चीज से पाना चाहते हैं। तुम्हारे लिए वफा निभाने चली तो पता चला मैं ही खत्म हो गयी यार · रमेश अगर यह वफा देता रहा है तो वह भी उसे प्यार देती रही है ··उससे बेहतर जो रमेश से उसे मिला, जिसके लायक वह नहीं है और सुवर्णा के हाथ क्या आया? सुरक्षा, एक ओहदेवाले आदमी की बीवी का स्टेटस, समाज में इज्जत! कौन-सा समाज? वह भूखा समाज ·जहाँ आपको जबर्दस्ती हमेशा खुश दिखना है, बेवजह बातें करना है ·जहाँ सिर्फ परिचित है, दोस्त एक भी नहीं· ·जहाँ कहने को सुख का लगातार चलता हुआ सिलसिला है पर असली खुशी का महसूसना नहीं के बराबर। खालीपन का एक वीरान रेगिस्तान और उसमें रंगीन गुब्बारों से डूबते-उतराते लोग· ·कुछ तो था कि वह ऊबकर उन सम्बन्धों से खिसकती चली गयी, जिस पर आज रमेश को एतराज है। क्या यह इन्हीं सम्बन्धों की वजह से नहीं था कि वह अपनी जिन्दगी की बोरियत अब तक सहती चली आयी, रमेश को प्यार करती रह सकी…

अब यहाँ पहुँचकर जब न वे सम्बन्ध हैं, न रमेश के लिए प्यार··तो जैसे वह ही खत्म हो गयी है। क्या उसका होना सिर्फ इन्हीं से जाना जाता था ·इनके अलावा क्या कुछ भी नहीं थी वह···जिसे अब निकालकर कुछ भी खुद को दिखा सके। अपने बाहर जो मोह-जाल हम फैलाते हैं वह कितना कमजोर होता है!

धूप कब की जा चुकी, सुवर्णा को पता ही न चला। अँधेरा झर-झर उसके ऊपर गिर रहा है। सुवर्णा बैठी हुई है, बैठी रहती है। क्या उसे उठना चाहिए··उठकर क्या करना चाहिए?

· ·
· ·

शक्तिपूजा

मुझे एकाएक अपने कमरे में पाकर वह सकपका गयी, फौरन उठी और खिड़की पर जाकर बाहर देखने लगी। किसी अज्ञात भय ने चेहरे के बाकी सभी रंगों को चूस लिया था।

जाड़े खत्म नहीं हुए थे, पर धूप की निचली सतह में पास आती गर्मी का पैनापन था। दफ्तर की बाहरी दीवार के पार जो जलाशय था, वह खाली था, नीचे की सख्त सतह पर छितरी पड़ी हुई मैली काई···कहीं गाढ़ी, कहीं झीनी-झीनी, पर हर जगह ही गीली और लिसलिसी···हरे कीचड़ की तरह।

"बाहर तुम्हें रमेश की कार दिखायी दी?" उसने खिड़की पर हिलगे हुए ही पूछा।

"मैंने ध्यान नहीं दिया। वैसे भी मैं ठीक-ठीक पहचानता नहीं, न ही नम्बर याद है···क्यों।"

दीवार के इस पार जितनी कारें खड़ी थी उन सब पर नजर फेरकर वह वापस अपनी कुर्सी पर बैठ गयी।

"तुम क्यों आये मैंने कहा था कि कुछ दिनों तक मैं नहीं मिल सकती।"

"तो चला जाऊँगा! आय, क्योंकि बगैर आये रह नहीं सका। तीन-चार महीने हो गये तुम्हारे समाचार भी ठीक से नहीं मिले। कुछ अजीब लगता रहा। फोन जल्दी बन्द करने की तुम्हारी बेताबी, उस दिन घर में तुम्हारा व्यवहार! लगा कि कुछ गड़बड़ है। मैं अपनी सीमाएँ मानता हूँ—बेवजह दखल नहीं करूँगा और न ही वह जानना चाहूँगा जो तुम बताना नहीं चाहतीं।"

"तुम मेरा इतना खयाल क्यों रखते हो?"

उसका स्वर मुलायम कतई नहीं था, उल्टे शिकायत थी जैसे मेरा उतना खयाल बोझ ही था उस पर।

"रमेश आजकल इसी तरफ डोलता रहता है···निगरानी में कि मेरा यहाँ कौन

आता-जाता है। उसने मेरी चाभी चुराकर इन आलमारियों की तलाशी ली। मेरे फोन टेप कराता है वह। अनन्त, मैंने कभी नहीं सोचा था कि रमेश इस पर उतर सकता है। अभी भी कभी-कभी लगता है कि यह सब सपना है, असलियत नहीं''

"शुरू से ही उसे मालूम था। मेरे एक-एक सम्बन्ध के बारे में वह जानता रहा है''अब कहता है, मैं तुमसे, अरविन्द और श्याम से न मिलूँ''

बाँध फूट पड़ा था। मुझे बहुत ताज्जुब नहीं हुआ। आज नहीं तो कल यह होना ही था।

रमेश की कब से दबायी जाती भावनाएँ आखिर एकाएक उबल पड़ीं और फिर जितना वे दबी रही थीं उतने ही उग्र रूप में बाहर आयीं।

"तुम चले जाओ अनन्त' वह कभी भी आ सकता है। आजकल यों ही बिना बताये कभी भी आ धमकता है। कहता है कि यहाँ किसी के आने पर कोई रोक-टोक नहीं है तो उसके आने पर क्यों हो' 'ऐसे आकर बैठ जायेगा जैसे गश्त पर निकला हो।"

"श्याम और अरविन्द को बताया?" मैंने पूछा।

"उन्हें तो वैसे ही मालूम है' 'अपने जन्मदिन पर श्याम मेरे पास ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट आ गया अब देखो, यह क्या बड़ी बात हो गयी। रमेश वहाँ पहुँच गया और एक तमाशा खड़ा कर दिया। मुझे कार में भरा और घर ले आया, मेरी कोई इज्जत ही नहीं···"

"तुम्हें उसे समझाना चाहिए था।"

"समझाना 'वह मार-पीट पर उतर आता है। दो बार उसने मुझे थप्पड़ मारा। अनन्त, ये तमाम साल मैं एक जानवर के साथ रह रही थी!"

मैंने देखा कि वह बुरी तरह टूटी हुई थी। जिसे एक सम्पदा की तरह कलेजे से चिपकाये वह इन तमाम दिनों घूमती रही थी, वह एक गुब्बारा निकला। जरा में फट बोल गया। उसे एक जबर्दस्त धक्का लगा था और वह एकदम तितर-बितर थी, हर पल अपने को रेशा-रेशा बिखरे देखते हुए।

"देखो भाई, जहाँ तक रमेश की भावनाओं का सवाल है''ऐसा नहीं है कि वह समझ में न आता हो।"

"पर वह कौन-सी नयी बात हो गयी थी, मेरे दोस्त शुरू से ही रहे हैं। जब मेरा पहला दोस्त बना था, रमेश तब टोकता? मैं क्या करूँ अब, अनन्त···"

"अरविन्द और श्याम क्या कहते हैं?"

"रमेश का व्यवहार उन्हें भी बहुत खराब लगा, फिर भी दोनों अलग-अलग रमेश से बात करने को तैयार थे। मुझे, सच अपने दोस्तों पर नाज है इस मायने में। मैंने ही मना कर दिया उन्हें, आने और फोन करने को भी। मैं नहीं चाहती कोई ऐसी-वैसी स्थिति पैदा हो जाये''तुम जानते हो मेरी जिन्दगी में इस तरह की

'कूरैप' कभी रही रही, इसलिए यह बर्दाश्त नहीं होती ''रमेश का क्या भरोसा। देखो तो उस दिन उसी का ड्राइवर था, उसके सामने रमेश ने मुझे उस तरह घसीटा। क्या सोचते होंगे ये लोग 'यही कि हम जो सभ्य बनते हैं''यह सब होता है उनके यहाँ ? मुझे नहीं मालूम था कि रमेश इतना बेवकूफ है कि यह भी नहीं सोच सकता कि अपनी बीवी को इस तरह सबके सामने ज़लील करके तुम आखिर अपने-आपको ही ज़लील कर रहे हो···और यह वह आदमी था जिसे मैं इन तमाम सालों प्यार करती रही "

वह उबल-उबल पड़ती थी, जैसे अर्से से उसे कोई नहीं मिला था अपनी बात कहने को। तात्कालिक वैसे भी उससे चिपक जाता था—चाहे वह दफ्तर की कोई बात हो या अपनी बीमारी—फिर यह तो एक बड़ा हादसा था, विशेषकर उसके-जैसे जीवन के लिए जो खुश-खुश, बिना किसी रुकावट के अब तक बहा था। उसने अपने आसपास शायद कही कभी लड़ाई-झगड़ा तक नहीं देखा था, फिल्मों को छोड़कर।

"अनन्त, तुम अब जाओ "

कहाँ शुरू के दिनों का उसका आत्मविश्वास, जब वह कहा करती थी कि वह कुछ भी छिपाकर नहीं करती, रमेश को यह तक बता सकती थी कि उसे मैं बहुत अच्छा लगता हूँ और कहाँ यह—प्रतिपल सशंकित, डरी हुई ! क्या उसकी वह हिम्मत ओढ़ी हुई थी···बाहरी ?

मैंने उसके आग्रह की तरफ ध्यान नहीं दिया। उसके जीवन में एकाएक सब भरभराकर गिर पड़ा था ··वह सबकुछ जो दिखायी देता था और जिसे ही वह सच मानती थी। मैं उसके लिए कुछ कर नहीं सकता था पर थोड़ी देर को पास तो हो सकता था।

"मैं सोचता हूँ कि यह वह समय है जब घबराहट, उतावलापन, हीनभाव··· इन सबसे खुद को उलझाने की बजाय हिम्मत से भीतर झांकना चाहिए। शायद तुम्हारा सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध मुझसे है···और अपनी कहूँ तो मेरे लिए यह इतना पवित्र है कि मेरे मन मे रमेश से या किसी से कहने मे कोई हिचक नहीं उगेगी। मन मे मैं किसी को पूजता हूँ, यह शर्म की बात कहाँ से हो गयी···और जहाँ प्यार पूजा के स्तर तक उठ जाये···तब कैसी पवित्रता व्यापती है जीवन मे, सोचो तो ! ऐसे मे तुच्छ हो ही क्या सकता है ? मुझे तो लगता है यही जीवन का श्रेष्ठ है जिस तक मैं उठ तो नहीं सका हूँ अभी, पर कभी-कभी उसे छू जरूर लेता हूँ···"

वह भीग रही थी···थोड़ा-थोड़ा बेसुध, जैसे दूर निकल गयी हो···अपने से बहुत दूर। अपमान, तनाव, छटपटाहट की जो खरोंचें पिछले दिनों उसके चेहरे पर उभरती चली गयी थीं···वे तिरोहित हो गयी थीं। चेहरा धुला-सा निकल आया था···किसी अज्ञात मिठास में पिघलता हुआ···आंखों मे अदेखे स्वप्नों के रंग। ऐसे

व्यक्ति के साथ कोई वह व्यवहार कैसे कर सकता था जो रमेश ने किया था।

भीतर के सौन्दर्य का आलोक सुवर्णा के चेहरे पर बहुत देर तक टिका नहीं रह सका। वहाँ उलझनों का जाल फिर उछल आया ''आड़ी-तिरछी तनी हुई नसों का जाल'''तब महसूस हुआ कि जो हुआ था उमने उसके भीतर कितना तहस-नहस किया था।

"रमेश और तुम्हारा सम्बन्ध विवाह के पहले अगर उस तरह का नहीं था तो बाद में हो सकता था'' ऐसा जो भीतर उतरता, एक-दूसरे की आत्मा मे। वैसा न होने से वह केवल एक आवरण मात्र रहा'''दिमाग के स्तर तक सीमित रहनेवाले विश्वास में तुम दोनों को यह प्रतीति देता रहा कि तुम पति-पत्नी हो। बच्चों के रूप मे इस सम्बन्ध ने सामाजिक जड़ें तो फैला ली, लेकिन जो ज्यादा जरूरी था''' आत्मिक'''वह नहीं हो सका'''

"कभी-कभी मुझे लगता है कि तुम्हारे सारे सम्बन्ध अधूरे हैं, सिर्फ'''अंशों में हैं। वे तुम्हें पूरा नहीं भरते'''"

मेरी तरफ देखते-देखते वह पार देखने लगी। ऐसे वह तभी देखती थी जब किसी बात को बहुत गौर से सुन रही हो। उसे देखो तो जरूर उलटा ही आभास होता था।

अगले कुछ क्षण हममे से कोई कुछ नहीं बोला। मैं उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करता रहा, वह भीतर-भीतर उमड़ती-घुमड़ती रही।

"मैं कुछ समझाऊँ, रमेश को'''" चुप्पी के मकड़ी-जाले को फाड़ते हुए मैंने कहा।

"ऊँ'''" वह जागी'''"क्या कहा?"

"मेरे बात करने से कुछ होगा?"

"किससे ''रमेश से? बेकार है! वह मुझे पिस्टल दिखाता है। कभी-कभी सोचती हूँ कि बीवी—मुझ-जैसी गयी-गुजरी या कि कैसी भी से ऐसा सुलूक करने का हक कहाँ से मिलता है किसी को। अब तो सवाल यह है कि मैं इस-जैसे आदमी के साथ कैसे रह सकती हूँ।"

"ऐसे कदम बगैर साहस के नहीं उठाये जा सकते। इसके लिए अपने भीतर नैतिकता जगाना होगी। जहाँ विश्वास हो, वहाँ आसान होता है, नहीं तो फिर वे विश्वास ढूँढ़ना होते हैं'''जिनकी खातिर आप मर-मिटने को तैयार हो।"

"मेरे कौन-से विश्वास हैं, अनन्त'''?"

असहायता की पराकाष्ठा थी वह ''जो एकाएक उसकी पस्ती की ऊपरी सतह पर उतरा आयी। उसके स्वर मे पस्ती'''गाढ़ी-गाढ़ी निराशा तो आ ही गये थे''' पर यह कराह थी जो निकली। सुवर्णा मुझे देख रही थी—बेहद उदास, लाचार, अशक्त'''जैसे दूर-दूर तक खोखलेपन के विस्तार के अलावा उसे और कुछ नहीं

दिखता था, कोई ठूंठ भी नही जिससे हिलग सकती। वे आँखें जिनमें आँसू मुश्किल से आते थे, दूसरो के सामने तो कभी नही'''वे नमी मे झिलमिल थी। वह बार-बार रोने को हो आती पर किसी-किसी तरह समेटती खुद को। अगर वह अकेली होती तो उस क्षण वह फूट-फूटकर रोती, बहुत रोती, ऐसा, जैसा वह जीवन मे कभी नही रोई थी।

मैं ग्लानि से भर आया। यह वह समय नहीं था जब उस पर भारी-भरकम बातें लादता, सिर्फ उसके दुख को बाँटना चाहिए था पर यही तो वह समय था जब उसे सोचना था, इसी वक्त तो ऐसे विचारो की जरूरत थी।

"वह कहता है कि अगर मैं उसे छोड़कर गयी तो वह मुझे मार डालेगा'''मुझे किसी भी हालत मे घर छोड़ने नही देगा ''"

"और तुम डर गयी'''यहीं आकर पता चलता है कि हमारी परवरिश, हमारी संस्कृति ने हमे क्या दिया। डर तभी लगता है जब हमारे विश्वास हमसे ओट होते है, *हममें शक्ति नही भर पाते! मैं तुम्हारे मूल्य, विश्वास ठीक-ठीक नही जानता।* उन्हें तुम अपने भीतर टटोलो ''और तुम्हे वे मिलेंगे। हर के होते हैं, सिर्फ पहचान और आस्था की जरूरत होती है'''और वह कष्ट की घड़ी मे ही मिलती हैं। हमे कोई भी निर्णय डर के दबाव में आकर नही, बल्कि अपने विश्वासो के आलोक मे करना चाहिए।"

मैं उसे भड़का नही रहा था, मेरा क्षोभ उस लुंज-पुंज व्यक्ति के लिए था जिसे यह शहरी-संस्कृति गढ़ती है, जो बाहर तो ऐसा दिखायेगा कि उसका सरोकार बड़ी-बड़ी बातो से है, लेकिन जब मौका आयेगा तो झट-से समझौता करेगा, कोई ऐसा मूल्य भी गढ़ लेगा जिसकी आड़ ली जा सके। मैं जानता था वह कुछ नही करेगी। कुछ दिनों ऐसे ही भनभनायेगी और फिर जो रमेश कहेगा वह करेगी। बाहर और अपने लिए भी यह कहती फिरेगी कि आखिर बच्चों का तो सोचना ही था।

"मेरी माँ को यह सब पता चलेगा तो वह बर्दाश्त न कर सकेंगी, वह इतनी 'कल्चर्ड' हैं। ऐसे मामलो की एक दिक्कत यही है। कुछ करो तो अपनी ही फजीहत होती है। सब रमेश की तरह बेशरम तो नही हो सकते।"

"अन्दर जब खोखला हो तो बाहर की सजावट से क्या? *क्या हो गया है हमें* जो असलियत को छोड़कर दिखावे की ही फिकर करते रहते है?"

"तुम जाओ अब!"

"इतना क्यो डरती हो?"

"नही, एक चीज शराफत भी होती है। मैं नही चाहती यहाँ दफ्तर मे कोई तमाशा हो। रमेश पर मुझे अब जरा भी एतबार नही रहा है'''वह कब क्या कर बैठे।"

"अच्छी बात है "हो सके तो यह महसूस करने की कोशिश करना कि तुम अकेली नहीं हो। वे सभी जो दुख सह रहे हैं, इस क्षण हमारे साथ हैं ' भले ही हम उन्हें न जानते हों। हम दोनों अलग-अलग अपना सलीब ढो रहे हैं ' तुम भी, मैं भी। तुम चाहो तो···"

"मैं समझती हूँ·· " उसने अपनी हथेली मेरे हाथों में देते हुए कहा। "मुझे ताकत मिलती है, तुमसे। अक्सर लगता है तुम मेरे ही भावों को शब्द दे रहे हो।"

चलते समय मैंने उसके सिर पर हाथ रखा···ईश्वर उसकी मदद करे! वह जिस तरह की बनी है उसे देखते हुए यह मुश्किल था कि वह आसानी से किसी की मदद लेगी···भीतर-ही-भीतर घुलती रहेगी, जब तक खुद किसी निर्णय तक नहीं पहुँच जाती· 'और उसके लिए जो ताकत चाहिए क्या वह अपने में ढूँढ पायेगी? रमेश ने ठीक नहीं किया। जिसे हम चाहते हैं, उसके साथ क्या ऐसा सुलूक करते हैं? पर वहाँ चाहना कहाँ है···वहाँ तो सिर्फ एक खूबसूरत महिला के पति होने के गौरव का सवाल है जिसे बचाये रखना है जैसे कि वही कोई सिंहासन हो!

12 फरवरी, 1980

हम खोखले होते जा रहे हैं क्योंकि यातना से कतराते हैं, हमेशा खुश रहना चाहते हैं···और इसके लिए एक-से-एक तर्क ढूँढ़ रखे हैं हमने। हमारा उच्चवर्ग और उसका नकलची उच्च-मध्यवर्ग भी प्रेम महसूस करने की क्षमता खोता चला जा रहा है। प्रेम नहीं करना क्योंकि उसमें यातना है, तो फिर किसी के लिए भी कुछ नहीं करना·· क्योंकि उसमें तकलीफ है। ऐसे व्यक्ति को कुछ नहीं मिलता क्योंकि वह पाने का ही कायल है—सफलता हर समय, हर क्षेत्र में। हर समय कुछ-न-कुछ हथियाने की भड़भड़ाहट। अगर यही चलता रहा तो मानव-सभ्यता जो दूसरों के लिए कुछ करने की बात से शुरू हुई, क्या जल्दी ही वहाँ नहीं पहुँच जायेगी जहाँ हर आदमी अपने स्वार्थ को चाटता हुआ, स्वयं को बचाने की लगातार कोशिश में, हर पल सशंकित, असुरक्षित अपनी गुफा में बैठा रहा करेगा—हर दूसरे व्यक्ति से घबराया हुआ? कहाँ प्रेम में स्वयं को उत्सर्ग करना, कहाँ यह? जानते हुए भी आज का आदमी उलटी दिशा में चला जा रहा है, कालवश हुए कुम्भकर्ण की भाँति।

चीजों का गुजरना "बीतना' अपने आपमें यही कितनी बड़ी यातना है और चूँकि जीवन, बीतने के क्रम का ही नाम है ' इसलिए जीवन का सत्य यातना ही है। सुवर्णा के हिरने की यातना अब आयी है"इससे वह निश्चित ही शुद्ध होकर निकलेगी।

क्या मेरे भीतर ठण्डी तटस्थता उतरती जा रही है? हर चीज के लिए "सुवर्णा के लिए भी? ऐसा नहीं है"'सिर्फ यह मानने लगा हूँ कि जीवन जो है अपनी पूर्णता

में ही है' 'इसलिए अच्छा-बुरा, सुख-दुख दोनों ही समान रूप से स्वीकार्य होने चाहिए।

कितना कुछ गुजर चुका'''हम दोनों के ही ऊपर से'''कुछ साथ-साथ, कुछ अलग-अलग, लेकिन अगर वह साथ हो तो बिल्कुल पहले-जैसा ही भर उठूँगा मैं''' मेरे व्यक्तित्व को कितना विस्तार मिलता है उससे।

वही टोहती हुई आँखें, वही मुग्ध-जैसा देखना

सुवर्णा खूबसूरत है 'वह याद करने की कोशिश करती है, जैसे बहुत दूर कहीं घण्टियाँ बज रही हों, कोई बहुत ही पुरानी बात हो''हाँ, लोग उसे इसीलिए ऐसे देखते हैं।

वह सुवर्णा की सहकर्मी जुनाकी को साथ लेकर आया है। अभी जुनाकी महत्त्व-पूर्ण है। जुनाकी सुवर्णा से परिचय करा देगी तो फिर जुनाकी को पैर से किसी स्टूल की तरह एक किनारे खिसका दिया जायेगा' क्यों मिस्टर?

गोल-गोल शरीर'''जैसे एक बिन्दु पर पहुँचकर ऊपर उठना खत्म हो गया और फिर शरीर की बाढ़ अगल-बगल ही, गोल-गोल मांसपेशियों में ऐंठती-सिकुड़ती चली गयी हो। अपनी तरफ से इस शख्स ने मांसपेशियों को खूब कसकर रखा हुआ है। वह कमर-कसर नहीं लगता, उलटे चुस्ती में चहक-चहक उठता है। वैसे चहक जो बज रही है उस पार, वह रूप की नहीं है क्योंकि हो नहीं सकती'' बुद्धि की है, सिगरेट खूब पीता है!

"अगर हम यही सोचते बैठे रहे कि कुछ नहीं हो सकता'''बुद्धिजीवियों में भी यह पस्ती का भाव आ गया तब तो देश के लिए कोई उम्मीद ही नहीं बचती। यह सोचिए कि आखिर बात क्या है—आदमी वही हैं, विदेश पहुँचकर क्या से क्या हो जाते हैं और यहाँ सुस्त, निकम्मे? जी नहीं, यह हो नहीं सकता कि हमारे आदमी की क्वालिटी खराब है, गड़बड़ी सिस्टम में है। हमें एक-एक संस्था जाकर उनके सिस्टम बदलने में उनकी मदद करना होगी'''आखिर करेंगे तो वे ही, पर हम उन्हें बतायें'' विशेषज्ञ की तरह'''"

उत्साह है, एक नयी संस्था को कैसे खड़ा किया जाता है—यह भी जानता है। ब्योरों के साथ बताता चला जाता है कि शोध-संस्था जो हम बनायेंगे उसमें ऐसे-ऐसे लोग होंगे, संस्था देश के बड़े-बड़े उद्योग मण्डलों के पास जाकर अपनी सेवाएँ उन्हें सुलभ करायेगी ''बाकायदे वैज्ञानिक ढंग से किया गया अध्ययन और सुझाये गये ठोस-ठोस उपाय भी। पैसा यहाँ-यहाँ से आयेगा, काम करनेवाले ये-ये होंगे और शुरू में यह-यह प्रचार होगा ताकि हम धमाके के साथ उभरकर आयें। इस तरह जमीन हासिल की जायेगी, ऐसे इमारत बनेगी। अपने 'नो हाऊ' को हमेशा पूरा

रखने के लिए विदेश आते-जाते रहना होगा···

योजना आकर्षक है। बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स में कुछ बड़े-बड़े लोगों के साथ सुवर्णा का नाम भी चाहता है वह···क्यों ? सुवर्णा की कोई खास योग्यता ? कहता है कि कुछ उत्साही और काम करनेवाले भी तो चाहिए·· जैसे कि एक वह खुद ! सुवर्णा को प्रस्ताव दिलचस्प लगता है, बातें सुनते-सुनते बात करनेवाला भी अच्छा लगने लगा है– उत्साह, अपने छोटे से दायरे से बाहर निकलकर देश के स्तर का सोच, उस स्तर पर कुछ करने की कशिश···और यह मुस्कान, सुकुमार मुस्कान··· बारीक-बारीक·· ऐसी तो कहीं देखी नहीं—कि सामनेवाले का सारा तीखापन तोड़कर रख दे और अपनी मिठास में बहाकर ले जाये। इस मुस्कान के साथ तो यह आदमी कोई भी विचार, प्रस्ताव · कुछ भी बेच सकता है·· मोहक है···

सुवर्णा खिंचती चली जाती है। पिछली दिनों की खिच-खिच के इतने दिनों बाद आज कुछ वे बातें जो प्रीतिकर हों, ऊपर उठाती हों, वह व्यक्ति जिसको लेकर कोई संशय मन में न उठता हो···जिसके साथ-साथ निर्बाध वह दूर तक बही चली जा सकती हो···अच्छा लग रहा है। इस आदमी को लेकर तो रमेश को कोई आपत्ति नहीं होगी। सुवर्णा जानती है कि उसे सिर्फ थोड़ा-सा ढीला छोड़ना है खुद को कि अगले रोज से ही दोनों दोस्त हो जायेंगे···कितनी जल्दी, कैसे जिन्दगी खलबलाकर दौड़ पड़ती है···छोटी-सी है न, इसलिए···

नहीं, जी नहीं··अभी देश है, संस्था है, शोध है, योजना है···पूरा जंगल बिछ रहा है। जल्दी ही सब साफ हो जायेगा। सिर्फ रह जायेंगे···यह और मैं, पुरुष और स्त्री। हवा की तरह खींचते हुए सुवर्णा को सुड़कना शुरू कर देगा यह। जो अब तक होता रहा उससे कुछ फर्क क्योंकर होगा। सुवर्णा फिर भागती दिखायी देगी। बाहर से तरह-तरह के, अलग-अलग किस्म के दिखायी देते ये सम्बन्ध एक पर्त नीचे हो किस भयंकर रूप से एक तरह के होते हैं, अपने-आपसे कितना दूर ले जाते हैं हमें ! सुवर्णा पिछले दिनों सबसे दूर रही है तो जैसे अपने पास भी रह सकी।

"मैं एक संगीत संस्था को जानती हूँ। ऐसे ही बड़े-बड़े आदर्शों को लेकर शुरू की गयी···बच्चों में भारतीय संगीत के संस्कार जगाना वगैरह-वगैरह···बम्बई से गायकों के 'शो' करा-कराकर पैसा इकट्ठा किया गया। संगीत महाविद्यालय के लिए लम्बी-चौड़ी जमीन एलॉट करा ली गयी, प्रधानाचार्य के घर के नाम से श्रीमान ने एक बंगला हथिया लिया। आप ताज्जुब करेंगे कि प्रधानाचार्य को मिलाकर सभी को संगीत की सिर्फ बहुत ही मामूली जानकारी थी। यह भी नहीं कि कुछ जानकार संगीतज्ञ नौकरी पर रख लेते ··अपने रिश्तेदारों को ही भरते रहे···"

सुवर्णा एकाएक उबल पड़ी, वैसे भी इन दिनों सधे-सधे मुश्किल से बोल पाती है वह।

"वहाँ तो आप खुद होंगी, यह एकदम आपके हाथ में होगा कि आप ऐसा न

होने दें।"

बजाय भभक उठने के सामनेवाला सिर्फ मुस्कुरा रहा है। बारीक मुस्कान अपनी नोक से जैसे सुवर्णा की उन तीखी-तीखी बातों को बुहारने चल पड़ी है।

"यह तो आपके-हमारे ऊपर होगा कि इसे वाकई बड़े काम की तरह लें। एक बड़ा उद्देश्य, जिससे लगकर अपने छोटे-छोटे, व्यक्तिगत किस्म के सरोकारों से ऊपर उठ जाये। कमाते, खाते-पीते-सोते तो सभी हैं। हमें जनहित या देशहित के किसी काम में भी लगना चाहिए।"

"एक मुश्किल यह है कि यह देशहित और जनहित के काम भी हम अपने स्वार्थ के लिए ही करते हैं ''गवर्नरों की बीवियाँ समाजसेवा, अपंगों की मदद-जैसे काम ले लेती हैं तो यह नहीं कि वे वाकई उनकी सेवा करके सुख महसूस कर रही हैं। सुखी होती हैं वे स्वयं को, दूसरों को अपने चरित्र की यह विशेषता दिखाकर। काम के लिए काम कौन करता है?'''जिसे करना होता है वह करता है'''आपको और हमें बताने नहीं आयेगा'''"

सुवर्णा लड़ रही है, अपने खिलाफ ही। वह जानती है कि ऐसे किसी काम में लग जाने की कितनी ललक है उसके मन में, लेकिन यह भी जानती है कि यहाँ सिर्फ *वही नहीं होगा, इस आदमी का साथ भी होगा। सुवर्णा के लिए ऐसे किसी काम को* इस तरह प्लेट पर रखकर कोई नहीं लायेगा, सुवर्णा को चुपचाप अपने लिए ढूँढ़ना होगा। कोई दूसरा समय होता तो इसमें भी लग लेती कि शायद यही'''लेकिन इन दिनों अपनी जीवनशैली बदलने का संकल्प भी भीतर कहीं तेजी से आकार ले रहा है—जितना अभी सबके साथ रही है, उतना ही अब सबसे दूर रहेगी'''अपने साथ, सिर्फ अपने साथ। वह भी देखना चाहिए सुवर्णा को। क्या रमेश के चीखने-चिल्लाने से यह बदलाव आया है? वैसा हो भी तो क्या, कोई-न-कोई बहाना या माध्यम तो होता ही है पर दूर रहने की बात सोचते ही लोगोंवाली सूची में पहला नाम रमेश का ही होता है।

सामनेवाले ने अब भी हार नहीं मानी, मुस्कान अब भी चेहरे पर ज्यों-की-त्यों, जरा भी नहीं सिकुड़ी। यह आदमी जरूर बहुत कामयाब होगा'''आज के समय का एक जबर्दस्त गुण उसके पास है'''हर हाल में मुस्कुराते रहना! सुवर्णा फिर भी नहीं ढहती, मजबूती से खड़ी है। उसे यह कोशिश शुरू कर देना चाहिए''' लोगों के सामने न ढहने की, अपनी जगह खड़े रहने की। इधर-उधर सब जगह जो वह यहाँ-वहाँ फिरती रही '''इसी में उसकी शक्ति बँटती-बिखरती रही, कहीं इकट्ठी हो ही नहीं पायी कि सुवर्णा को इसका आभास मिल पाता। कोई शक्ति नहीं इसलिए वह टूटा महसूस करती है। सुवर्णा को कण-कण बिखरी अपनी शक्ति एक जगह बटोरकर लाना होगी, तभी उसका सहारा भी ले सकेगी'''

खोया हुआ नाम

दरवाजे पर हल्की-सी दस्तक।

"आइए"···वही शब्द, उसी आवाज मे जिसमे दफ्तर मे बोला जाता है। बोलकर सुवर्णा सामने बैठे अपने सहायक से बात करती रही, पूर्ववत सामने खुली पड़ी फाइल के बारे में।

दरवाजा हल्के से खुला। एक महिला बगैर कोई आवाज किये हुए मेज तक आयी और खाली कुर्सी पर बैठ गयी। सुवर्णा की नजर महिला पर पड़ी तो लगा, कमरे मे अजीब सिहरती हुई-सी खामोशी घुस आयी है। सुवर्णा, महिला को देखे जा रही थी, कुछ बोलना चाहती थी, पर जुबान टस-से-मस न होती थी। उसने खुद को झकझोरा और 'थोड़ी देर बाद लेंगे इसे' कहकर सहायक को जाने का इशारा किया।

"नही, आप काम खत्म कर लें।" महिला ने कहा।

"कोई बात नही ··बाद में हो जायेगा।"

सहायक आश्चर्य से महिला को देखते हुए उठा। क्या हुआ कि सामान्य-सा दफ्तरी वातावरण एकाएक कुछ और हो गया था···क्या और क्यों समझने की कोशिश करते हुए वह धीरे-धीरे कमरे से बाहर हो गया।

सहायक के जाने पर कमरे की खामोशी गाढ़ी हो गयी। बराबरी से जैसे कमरे की हर चीज कुछ-न-कुछ बोल भी रही थी—सामने रखे कागज, पेपरवेट, टेलीफोन, टेबिल लैम्प···सभी। एक पर चलते पंखे की मद्धिम आवाज, मरी-मरी कराह की तरह चक्करों में सरकती थी।

"कैसी हैं आप? क्या लेंगी ··चाय या कॉफ़ी?"

और दूसरी तरफ से बगैर किसी उत्तर की अपेक्षा किये हुए सुवर्णा ने चपरासी के लिए घण्टी बजा दी और दो चाय के लिए कह दिया।

महिला अजनबी नहीं है सुवर्णा के लिए, दो-तीन बार पहले भी मुलाकात हो चुकी है ··लेकिन उनका यहां दफ्तर में आना? कुछ ये दिन जिनसे आजकल गुजरना

हो रहा है···ये ऐसे हैं कि कुछ भी होना·· होने की शुरूआत···कि आशकाओं का जाल फैलने लगता है सुवर्णा के चारो तरफ। दो दिन हुए अरविन्द का फोन आया था। उसने बताया कि रमेश उससे मिला था, आगाह कर गया है कि वह सुवर्णा से मिलना बन्द कर दे नही तो अरविन्द के घर भी वही अशान्ति फैल जायेगी जो आजकल रमेश के घर पर फैली हुई है। अरविन्द, जैसी उसकी आदत है, हर बात शान्ति से सुनता रहा था। रमेश के जाने के बाद उसने सुवर्णा को फोन किया। आखिर मे सुवर्णा से एक छोटा-सा सवाल—'तुम क्या कहती हो?'

'कुछ नही सिर्फ इतना ही कि अभी मैं तुमसे मिल नही सकती।' सुवर्णा इतना ही कह सकी थी।

'मैं क्या करूँ?' अरविन्द ने फिर पूछा था।

'जो तुम्हे ठीक लगे।' कहकर सुवर्णा ने फोन रख दिया था। आजकल किसी से बात करने का मन नही होता· खासकर उस विषय के इर्द-गिर्द।

श्रीमती श्याम मोहन कुछ बुझी-बुझी थी· वैसी एकदम नही जो तब थी जब रमेश और सुवर्णा उनके यहाँ गये थे, या कि श्याम के साथ जब वही उनके घर आयी थी, खाने पर। सुवर्णा स्वयं क्या इस वक्त उस रंग मे थी, जिसमे तब थी? क्या उन दो आदमियो की वजह से वह चमत्कार था?

"कैसी हैं?" सुवर्णा ने फिर बात शुरू करना चाही।

"ठीक!"

"काफी दिनों बाद मुलाकात हुई।"

"जी, हाँ।"

"श्याम ठीक है?"

"आपको नही मालूम?"

"इधर काफी दिनो से उससे मुलाकात नही हुई।"

"क्यों···?"

सुवर्णा से कुछ जवाब देते नही बना। तभी बेयरा चाय रखने आ गया और सवाल वहीं-का-वही टँगा रह गया। सुवर्णा ने ट्रे अपनी तरफ खिसका ली। उधर श्रीमती श्याम अपनी अँगूठी घुमाने मे लगी हुई थीं।

"चीनी?" सुवर्णा ने पूछा।

"बिल्कुल नहीं।"

"एकदम नहीं?"

"हाँ, मीठा मुझे रास नहीं आता। आप अभी मेरी उम्र में नही पहुँची न।"

बाहर से तो सुवर्णा ने हँसकर बात टाल दी लेकिन उस बात में जो चोट थी वह उसमें एक चौकन्नापन भर हो गयी···तैयार हो जाओ!

"पहुँच जाऊँगी···देर-सबेर पहुँचना तो वही है।" सुवर्णा ने चाय डालते हुए

कहा।

"कोई जरूरी नहीं और खैर, टाला तो जा ही सकता है। आप हमारी तरह क्यों समय से पहले बूढ़ी हों?"

बात को आगे बढाना व्यर्थ लगा। जिसका जो होना है वह प्रकृति के हाथ है, चहकने या कुढने की कोई तुक ही कहाँ है उसमें?

श्रीमती श्याम मोहन का प्याला उनकी तरफ खिसकाकर वह चुपचाप अपने प्याले में शक्कर घोलती रही। घूमती हुई चम्मच प्याले से टकराकर हल्का संगीत पैदा कर रही थी, सुवर्णा को अच्छा लग रहा था। आदमियों के बोल से ज्यादा मीठी होती हैं बेजान चीजों से निकली ऐसी आवाजें।

"रमेश ये दे गये थे।"

श्रीमती श्याम मोहन ने पर्स से निकालकर घडी और पैन मेज पर रख दिये। एक नजर उन दो चीजो पर और सहसा सुवर्णा छूँछी हो आयी" एकदम खाली, भीतर हवा खोल के कोनों से इधर-उधर टकराती हुई—अपने होने"शरीर के भार का भी कोई अहसास नहीं। धीरे-धीरे जब अहसास लौटा तो उसने फिर से उन चीजों को देखा"'कैसी बेबसी आ चिपकी थी उनके इर्द-गिर्द। उस दिन रमेश उन्हें हाथों में लिये लहरा रहा था। जब श्याम ने उसे दी थी तब यही चीजें कितनी सजीव थीं! आज जैसे उनका रग उड़ा हुआ था। उनसे एक बासीपन निकलता जो सुवर्णा के चेहरे पर बिछता जा रहा था।

सुवर्णा को लगा कि ढकेलकर उसे दीवार तक लाया जा चुका है। सब मिलकर उस पर कीचड थोपने को आमादा हैं। उसने अपने-आपको समेटा"'ऐसे तो ये सब खा जायेंगे।

"तो मैं क्या करूँ'''?" उसने पलटकर जवाब दिया, आवाज कुछ सख्त हो आयी।

"ये आपकी चीजें हैं'''आपको दी गयी थीं।"

"लेकिन रमेश उन्हें वापस कर गया है, आपको दे गया है।"

"मैं क्या करूँगी इनका?"

"श्याम को दे दीजियेगा।"

"आप नही दे सकती थीं उसे वापस?"

सुवर्णा कुछ नहीं बोल सकी "कैसे कहती कि यही तो उसका रोना था—रमेश ने मौका ही नहीं दिया। कैसी विडम्बना है यह कि भारतीय स्त्री को अपने पति की हर नीचता का भागीदार होना पड़ता है!

"दरअसल"'ये चीजें न मेरी हैं, न रमेश की "वे श्याम की भी नहीं रहीं जब उसने इन्हें आपको दिया। ये आपकी हैं। आप चाहें तो इन्हें अपने पास रख लें।"

बड़ा ही सम्भ्रान्त स्वर था श्रीमती श्याम मोहन का। सुवर्णा जानती थी कि

वह परिवार कितना सभ्य था ।

"रमेश यह भी कह गये कि मैं श्याम को मना करूँ वह आपसे मिले-जुले नही । इससे आप लोगो की जिन्दगी मे खलल पड रहा है ।"

"तो मना करिए ।"

"मैंने श्याम को समझाया । वह मान भी गया है । कहता था कि उसे नही मालूम था कि रमेश को कुछ आपत्ति थी ।"

सुवर्णा के जबड़े भिच आये···तो श्याम का रवैया भी रमेश से तय होगा । रमेश की तकलीफ महत्त्वपूर्ण है, उसकी नही जिससे श्याम के सम्बन्ध रहे हो··· सिर्फ इसीलिए कि वह औरत है ?

"आप श्याम को रोकें, रमेश मुझे रोकें···जैसे कि हम पागल हैं, लुटेरे लोग हैं, बस्ती तबाह करके रख देंगे—" सुवर्णा एकाएक उत्तेजित हो गयी—"आखिर हमने किया क्या है जो आप लोग यो हम पर कीचड उछाल रहे हैं । हम कहाँ के पापी हो गये कि आपको हमें सुधारने की तकलीफ सालने लगी है । रमेश को आप डाँटकर नही भगा सकती थी कि वह खुद को तो जलील कर ही रहा है, साथ ही अपनी पत्नी को, श्याम को, यहाँ तक कि आपको भी जलील कर रहा है ?"

श्रीमती श्याम मोहन सहम गयीं । ऐसी प्रतिक्रिया एकाएक फूट पड़ेगी यह उम्मीद नही थी उन्हें । सुवर्णा अपनी तरफ से बात सँभालने की बहुत कोशिश करती रही लेकिन इतने दिनों से जो थामे हुई थी, वह फूट पड़ा और अब बलल-बलल करके बाहर चला आ रहा था ।

"कैसी कमजोर औरतें हैं आप लोग···एक आदमी—आपका पति समझाता है कि मेरा और उसका सम्बन्ध ठीक है क्योंकि एक दूसरे आदमी—मेरे पति—को कोई आपत्ति नही है···और आप मान लेती हैं । एक दूसरा आदमी–अब मेरा पति —आपको उलटा-सीधा समझा जाता है और आप फिर उसके कहने पर चल पड़ती हैं—श्याम को सुधारने, मुझे सुधारने । कही ऐसा तो नही कि आपके मन मे भी वही मैल था जो रमेश के मन मे···उसे जाहिर करने का मौका अब मिला आपको···"

"ऐसा होता तो मैं ये चीजें आपको देने आती ?"

"मुझे नही चाहिए ये चीजें···ले जाइए और न ही मुझे श्याम से मिलकर इन्हें वापस करने की औपचारिकता बरतने की जरूरत है।···इट्स आल सो डिजगस्टिंग···ये चीजें · श्याम···रमेश···मैं··· सबकुछ···"

श्रीमती श्याम मोहन ने घड़ी और पैन वापस पर्स में डाल लिये । मुँह मे उतरा आये पसीने को पोंछा और कमरे के बाहर निकल गयी ।

पीछे छूट गयी सुवर्णा···बौखलायी, पस्त । उसका जीव जैसे टुकड़े-टुकड़े होकर इधर-उधर गिर रहा था और वह सँभाल नहीं पा रही थी । जिसके व्यक्तित्व का यह प्रभाव रहा हो कि जहाँ भी वह हो, सबके ऊपर चमकती हुई चले···उसे आज

लोगों के सामने यों पेश होना पड़ रहा है जैसे मुँह पर कालिख पुती हुई है, वह चोर है'''कलंकिनी है। आखिर उसने किया क्या है ऐसा ?

सब सिर्फ रमेश की वजह से' उस आदमी के साथ क्या वह अब भी रह सकती है ?

अरविन्द के घर भी वह जायेगा। उसकी पत्नी भी एक रोज उसे इसी तरह अपमानित करने आयेगी'''अगर वह भी इन लोगों की भाषा में बात करे तो इन पत्नियों से कह सकती है कि वे खुद क्यों इतनी कमजोर हैं कि अपने आदमियों को सँभालकर नहीं रख सकतीं। रमेश के स्तर पर उतरे तो उससे पूछ सकती है कि क्या है वह, जिसे पाने उसकी पत्नी दूसरों के पास जाती है'' जिसे वह नहीं दे सका'''

एक सवाल बार-बार उसके सामने आकर खड़ा हो जाता है—कितने दिनों चलेगा ऐसे ''कैसे रह सकती है वह रमेश-जैसे आदमी के साथ ?

आज भी घर लौटकर सुवर्णा ने रमेश से कोई बात नहीं की, जैसे उस दिन नहीं की थी जब पता चला था कि उसने अरविन्द से जाकर पता नहीं क्या-क्या कहा था। अरविन्द से कहना तो फिर भी समझ में आता है—एक जले-भुने व्यक्ति का सीधे-सीधे उस आदमी से बात करना जिससे उसकी शिकायत है, लेकिन ये बीवियों के पास जाना, उनसे सुवर्णा को ज़लील कराना' दिस इज़ श्योरली हिटिंग बिलो द बैल्ट ! ऐसा करने के पहले रमेश को श्याम और अरविन्द के परिवार के बारे में भी तो सोचना चाहिए कितने अच्छे लोग हैं ये, उनके यहाँ जाकर कीचड़ उछालना ? लगता है दिन-ब-दिन रमेश और और नीचे स्तर पर उतरता चला जा रहा है। वह रमेश के साथ-साथ कितना नीचे गिरेगी, किस-किससे और किस हद तक अपमानित होती रहेगी। और जो सबसे बुनियादी बात है कि क्या इस सबके बाद भी वह रमेश को चाह सकती है 'नहीं तो उसके साथ रहना क्या वही ढोंग नहीं होगा जो हर दूसरी औरत करती है ''क्या सुवर्णा की भी वह ढोंग करने की मजबूरी है ? वह कहीं तो फ़र्क है जैसे कि वह मानती भी आयी है, क्या है वह'''?

नींद की गोली, फिर भी नींद नहीं।

अनन्त कितना चिढ़ता है। कहता है—आज का शहरी'''पढ़ा-लिखा आदमी कम्पोज खा-खाकर काम करता है और नींद की गोली खाकर सोता है, सहने की ताकत भी गोलियों से पैदा करना चाहता है, गोली खा-खाकर और कमजोर होता चला जाता है।

सुवर्णा कमजोर हो रही है या गोलियों की मदद से अपने को खींच रही है किसी-किसी तरह ? उसका एक मकसद जरूर है—कहीं इस टूटन की आवाज

बाहर न पहुँचे, पर क्या यह भी हो पा रहा है ? बचाये जरूर है वह खुद को पर किसलिए, किसके लिए'' रमेश के लिए ?

उसका 'मालिक' बगल में खुर्राटे लेता हुआ !

चार महीनों से ऊपर तो हो गये, उनकी बातचीत उतनी ही हुई है जितनी जरूरी थी, सिर्फ मतलबवाली बातचीत। उसे छूने की हिम्मत रमेश की नहीं हुई। कोई शक्ति तो है उसमें'''कौन-सी'' क्या यह शक्ति और नहीं उभारी जा सकती ? अनन्त कहता था कि हम जब भी अपने अन्दर ताकत ढूँढ़ते हैं, हमें मिलती है। बात सिर्फ उसे सँजोने और उसके लिए सचेत होने की है।

ड्रेसिंग-टेबिल पर रखी घड़ी का डायल चमक रहा है'''अँधेरे में हरे रंग की महीन रोशनी का एक छोटा-सा घेरा, दो से ऊपर रात पहुँच गयी। अब तक नींद की एक झपकी भी नहीं। अब तक नहीं तो आगे क्या वह बिस्तर से उठ जाती है। बैडरूम का दरवाजा खुला रहता है इन दिनों, बच्चों का कमरा सामने है। यहाँ फिर से सोना शुरू हुआ तो रमेश ने पहले की तरह कमरा बन्द करना चाहा था कि एक सख्त चीख भीतर से तीर की तरह छूट गयी थी' 'यहाँ से बच्चों के कमरे तक सनसनाती हुई—'दरवाजा खुला रहेगा, मैं बच्चों के सामने रहूँगी।' बच्चे भी सहमकर इधर देखने लगे थे। रमेश फिर दरवाजा बन्द नहीं कर सका ''आगे आनेवाले दिनों में भी नहीं।

बच्चे सो रहे हैं' बेखबर, पर उनके इर्द-गिर्द कुछ हो रहा है—ऐसा कुछ जो गैर-मामूली है — इतनी खबर है उन्हें। वह बेशक दिखायी नहीं देता, न ही उन्हें यह अन्दाजा है कि यह तूफान अपनी चपेट में उन्हें भी ले लेगा। किस इत्मीनान से सो रहे हैं—मम्मी पास है, सामने है' 'खुले दरवाजे के पार ही'' इतना पास कि वे उसे देख सकते हैं, दौड़कर छू सकते हैं—फिर क्या चिन्ता ? मम्मी के चेहरे पर जरा भी तनाव देखा कि वे खुश-खुश चेहरे एकाएक कैसे मासूम हो उठते हैं, असहाय। क्या घोंसले में पल रहे चिड़ियों के बच्चों पर भी ऐसा भाव उभर आता होगा, जैसे ही उन्हें माँ-बाप में से कोई एक न दिखायी दिया'' लेकिन उनके यहाँ बच्चों के पलने तक माँ-बाप में ऐसी तनातनी होती ही नहीं होगी। यह तो हमीं हैं''' आदमी ''

वह चुपचाप बाहर निकल आयी। रात के रेंगने की आवाज'' बूँद''बूँद''' उसकी साँसों के रास्ते भीतर उतरने लगी। लॉन की घास पर वह नंगे पैर उतर आयी'''तलुओं में खुनक जगाती ठण्डक, हल्की-हल्की। ऊपर तारे अनगिनत, जैसे नीचे पृथ्वी पर धब्बों से बिछे पड़े अनगिनत प्राणी, उनमें वह भी कहीं ''एक''

एक बूँद पत्ते पर अटकी हुई'' अब गिरी, अब गिरी ''गिरने से डरती हुई, गिरेगी तो किसी दूसरे पत्ते पर ही'' पर पत्ते पर ही क्यों—घास पर या सूखी कँकरीली ठोस जमीन पर क्यों नहीं ? पृथ्वी का उतना हिस्सा ठण्डा ही करेगी ''

ओस की इस बूँद से सितारों तक''कहीं भरा रात का अँधेरा कहीं दिन का उजाला, कहीं नींद का आलम तो कहीं जागने की चहल-पहल। गर्भ के बच्चे में कैसे जान आती है एकाएक ''ज़रा-सी हवा शरीर में कैद कैसी थिरकनें पैदा करती है, निकल जाती है तो हम, हमारा सारा अहं, मिट्टी का ढेला—हू-ब-हू होने लगता है। ईश्वर तुम हो 'तुम्हारा दिया गया यह जीवन अगर अपने प्रति ही ईमानदार न हो सका तो किसके लिए क्या हो सकेगा फिर''

रमेश और उसके बीच बात गलतफहमी या किसी भूल-भर की नहीं है। क्या वह इस आदमी को प्यार कर सकेगी, जैसे अब तक कर सकी'' नहीं तो उसके साथ हम-बिस्तर होने और वेश्या बनने में क्या फर्क है? रमेश और सुवर्णा के अपने दोस्त—अरविन्द, श्याम, अनन्त'''जो उन चीजों का विस्तार थे जो रमेश में नहीं थीं'''इन सबसे मिलकर एक सन्तुलन बनता था जिससे वह रमेश को और घर को अपना दुलार देती थी। दोस्तों को क्या दे सकती थी वह इन सीमाओं में। अनन्त ने कितनी बार कहा कि वह देती-ही-देती है, लेती कुछ नहीं लेकिन वही जानती है कि वह क्या करती थी—एक तितली की तरह यहाँ उड़ी, वहाँ उड़ी'''यहाँ से यह लिया और वहाँ से वह और सब ले जाकर उँड़ेल दिया घर पर। वह सन्तुलन टूटा तो घर कैसे बचेगा?

उसने सोच लिया, क्या'' इतनी जल्दी'''लेकिन अगर हर बार भीतर से वही आवाज उठती हो तो ''? चौबीसों घण्टे अपमान और नफरत में घुटते रहना। घर में होने पर भी यह अहसास बना रहना कि यह उसका नहीं है—होता तो पहले की तरह जहाँ कुछ भी गड़बड़ी दिखायी दी, झपाक से उठती नहीं वह दुरुस्त करने? रात उस आदमी के बगल में सोने की मजबूरी जिसने उसे'' और उस शहर में रहना जहाँ कोई इज्जत नहीं - आज श्याम की बीवी लपेड़ जाती है, कल अरविन्द की आ सकती है दफ्तर में बैठे हुए हर पल डर—और नहीं तो कहीं श्याम, अरविन्द, अनन्त ही न आ जायें पीछे से रमेश'''फोन पर डर, हर पल चौकन्ना रहने की मजबूरी

कैसे रहा जा सकता है?

यह घर सात साल से वह यहाँ है। इस घर की छोटी-से-छोटी चीज उसकी बनायी हुई है—बरामदे का यह झूला, बायीं तरफ के कमरे में मन्दिर, ड्राइंगरूम के बीच में आलमारी'' किताबों के लिए, सामने फूलों की क्यारियाँ, पीछे सब्जी की क्यारियाँ ''पानी जाने का रास्ता'''चप्पे-चप्पे पर वह अपनी छाप देख सकती है यहाँ'' लेकिन कैसे एकाएक सबकुछ अजनबी-सा हो गया है। बरामदे के छोरवाले खम्भे पर वह चमेली की बेल'''झाड़ होकर ऊपर फैल गयी, ज्यों-ज्यों उसका अपना जिस्म गदराता और भरता चला गया। सफेद बुंदकियों से फूल' जिन्हें चुन-चुन-कर वह मन्दिर में चढ़ाती रही ईश्वर! तो, अब यह बड़ा फूल भी श्री-चरणों

में···

बरामदे में हल्की खटरखट ··रमेश है। बरामदे से बैत की दो कुर्सियां लाकर वह सुवर्णा के पास डाल देता है। वे बैठ जाते है। रात की खामोशी···बीच-बीच मे उठती चौकीदार की चिल्लाहट से फटती हुई। ऊपर आसमान की चादर पर टँकी हुई बूंदों से सितारे·· चिलकते हुए।

"आइ एम सौरी डार्लिंग·" रमेश फुसफुसाता है।

"रमेश, मैं अब वहाँ पहुँच गयी हूँ जहाँ इन शब्दो के कोई मतलब नही निकलते ··तुम पिस्टल ले आओ!"

"मैं काबू नही रख सका···आय एम टैरीबॅली सौरी।"

"पीछे की बातों का ताना-बाना उधेड़ने से क्या फायदा। तभी चली जाती तो फैसले का घमण्ड अपना होता · इसलिए सही-गलत की पसोपेश भी रहती। अब जाना है। तुम्हारे साथ रहना नही हो सकेगा, रमेश!"

"यह सब चलता है यार· ·मैंने कहा न, मुझे माफ कर दो!"

"जो हुआ वह तो माफी मांग लेने से मान लो धुल भी जाय ·हो चुकने के इतने दिनो बाद वह बहुत महत्त्व का भी नही रहा, पर तुम्हारे जिस सोच से वह सब हुआ···वह तो इतनी आसानी से नही धुल सकता? वह भी धुल जाय और मुझे यह भी विश्वास हो जाय कि तुम उस तरह नही सोचते अब ·तो भी मैं इस हकीकत से कहाँ भाग सकती हूँ कि अब मैं तुम्हें नही चाहती···"

"कोई बात नही···मगर तुम रहो। हमारे देश मे कितने आदमी-औरतें सारा जीवन पति-पत्नी रहते हैं, क्या सब चाहते ही हैं एक-दूसरे को? चलो, अब बेकार मत सोचो, खुद को परेशान मत करो!"

"मैं सबकी श्रेणी में नही आती इसलिए मुझे वह ढकोसला नही करना चाहिए। मैं माँ-बाप के पास भी नही रहूँगी। तबादला माँग रही हूँ।"

"क्या हम इस बात पर समझौता नही कर सकते कि तुम इन तीनो को छोड़कर चाहे जिससे मिलो ··और मेरी तरफ से यह वायदा कि ऐसा फिर कभी नही होगा।"

"मैं यह नही मानती कि सिर्फ इसलिए कि तुम मेरे पति हो, तुम यह तय करो कि मैं इससे मिलूं, उससे न मिलूं। बात तीन-चार आदमियो की नही है, उस स्वतन्त्रता की है जो ईश्वर ने मुझे दी है और जिसे तुम हड़प लेना चाहते हो ··पर बहस की क्या जरूरत ··तुम इन लोगो से मिलने की बात मान भी लो तब भी मेरा फैसला वही रहेगा।"

"क्यो?"

"इसलिए कि अब मैं तुम्हे नही चाहती।" सुवर्णा शान्त थी।

"क्या पूछ सकता हूँ कि फिर किसे चाहती हो?"

"कोई जरूरी है कि एक को चाहना बन्द तो दूसरा फौरन शुरू' या हो चुका हो और हमे पता भी चल चुका हो? बगैर किसी को चाहे भी तो रहा जा सकता है।"

"यही तो मैं कहता हूँ— यह प्यार-व्यार सिर्फ कच्ची उम्र की बातें हैं या फिर तुम्हारे अनन्त-जैसे दोस्तो की···सिक माइण्ड्स !"

"बच्चे तकलीफ न पायें इसलिए तुम मानो तो कुछ समय के लिए ऐसा दिखा सकते हैं कि बच्चो को पता न लगे· यो आखिर मे तो पता लगेगा ही, लेकिन तब तक वे मानसिक रूप से तैयार हो चुके होगे। मैं अपनी जगह उन्हे ले जाऊँगी और वही पढाऊँगी। तुम आते-जाते रह सकते हो।"

"मैं अगर यह न मानूँ तो· ·?"

"तो बताओ तुम क्या चाहते हो?"

"तुम यही रहो।"

"यह मुमकिन नही है। घिसटते रहने की मैं कायल नही हूँ और मुझे धीरे-धीरे अब अपने विश्वासो को पहचानना और उन पर अमल करना आ रहा है।"

"यह भी तो हो सकता है कि थोड़ा वक्त गुजरने पर तुम्हारा यह मलाल धुल जाय। आखिर जो मैंने यह सब किया अपनी-तुम्हारी भलाई सोचकर ही किया। तुम्हे अभी नही रोकता तो कब रोकता फिर? इतने दिनो तो जब्त किया ही। हो सकता है धीरे-धीरे तुम यह समझने लगो और तुम्हारा मन मेरे लिए पहले-जैसा हो जाये··"

"जब ऐसा होगा तब मैं वापस आ जाऊँगी।"

"मतलब मेरा इस्तेमाल करोगी, क्यों? जब माफिक पड़ा चली जाओगी, जब चाहा आ जाओगी!"

"आऊँगी तुम्हारी रजामन्दी से ही। जो मैं अपने लिए चाहती हूँ, तुम्हे भी दूँगी हमेशा। तुम स्वतन्त्र हो, रहोगे। मैं तुम्हारे साथ भी रही तो याद करो मैंने तुम पर किसी तरह की पाबन्दी नही लगायी। किसी भी समय किसी औरत-आदमी से तुम्हारे सम्बन्ध को लेकर तुम्हे नही टोका। शकबाजी, टटोलबाजी· कुछ नही।"

"पाबन्दियाँ मेरी लगायी नही, उस सस्था की हैं जिसे विवाह कहते हैं।"

"विवाह या कोई भी सस्था हमारी जिन्दगी से बड़ी तो नही होती। कही बन्धन लाचारी हो सकते है, हम दोनो के साथ वह होने की जरूरत नही है। मेरे लिए यह जाना घर छोड़ना नही है वैसे तुम चाहो तो ऐसा सोच सकते हो, तलाक मांगोगे, वह भी दे दूँगी। मेरे लिए अभी जाना मुझे वह मौका देगा जब मैं अपने जीवन के बारे मे, तुम्हारे-अपने बारे मे थमकर, ठण्डे-ठण्डे सोच सकूँगी 'अगर मुझे लगा कि यह सिर्फ काई थी जो मेरे मन पर उतरा आयी और मैं अब भी तुम्हे चाहती हूँ तो बता दूँगी। फिर रहना दोनो की मजूरी से होगा। फिलहाल मुझे

तुमसे ''अलग ''दूर रहने की जरूरत है।''

रमेश खीझकर उठ गया।

''मैं जानता था—वे उचक्के मेरा घर उजाड़कर दम लेंगे''कैसा टेढ़ा-टेढ़ा सोचती हो तुम, सीधे चल ही नही सकती, उफ्''"

जाते-जाते वह पलट आया।

''ओ. के. तुम जाओ ! एक दिन अपनी गलती समझोगी। ये सब खूबसूरती के साथी हैं'''अय्याश साले ! और देखो, तुम मेरे बच्चों को नही ले जाओगी। वे यहीं रहेंगे और पढ़ेंगे। तुम्हारा यह बहकना उन्हें भी बीमार कर देगा। और अब मेहरबानी करके जल्दी खत्म करो। जो करना चाहती हो जल्दी करो। अपने साथ-साथ तुम मुझे भी पागल करती जा रही हो'''"

चीख मे टुकड़े-टुकड़े होता आदमी। सुवर्णा देखती रही—रमेश को चिल्लाते हुए। फिर घर के भीतर जाते हुए। बैडरूम में जाकर वह पानी पियेगा और फिर बिस्तर पर सीधा लेट जायेगा। थोड़ी देर तक ऊपर सीलिंग की तरफ देखता रहेगा, फिर करवट लेगा और आँखें बन्द कर लेगा। थोड़ी देर मे खुर्राटे चल निकलेंगे।

ऊपर से नीचे तक शान्ति'' कब से ऐसा महसूस नही किया था। शायद अब तक यह अनुभूति जिन्दगी मे गिनी-चुनी बार हुई थी'''ज्यादातर अनन्त के साथ।

बेचारा रमेश ! कैसे रहेगा उसके बिना'''वह जो छोटी-से-छोटी चीज के लिए सुवर्णा पर इतना आश्रित है ! तो क्या फिर वह रुक जाये, धोखा जो उसने रमेश के साथ अब तक नहीं किया, अब करे''रमेश की रजामन्दी से उसे ही धोखा देती रहे ? रमेश तैयार हो जायेगा, इसके लिए भी। वह आदी है'''उन सुविधाओं का जो सुवर्णा घर में उपलब्ध कराती है, एक मौजूदगी का जो घर को वीरान नही बनाती, स्टेटस का''रोबदाबवाली कुर्सी और सुन्दर बीवी ! वह सिर्फ रमेश के जीवन की सजावट ही बनने की कोशिश करती रहे, अपने लिए कुछ न करे ?

अँधेरे में डूबा उसका घर'''एक से मकानों की कतार में एक यह भी। सड़क में थोड़ी-थोड़ी दूर पर टँगे हुए सफेद रॉड। ठीक नीचे चौंधियाती रोशनी। शाम होते ही कैसे बेताब परवानों की भनभनाहट सड़क-भर मे उतरा आती है। अब, सब खामोश है।

सुवर्णा को हमेशा यह लगता रहा कि वह एक सफर पर है''खुद को ढूँढ़ने निकली है, लेकिन वह गलत थी। अब तक जो था वह तो दरअसल भटकाव था—जिस किसी से प्रभावित हो जाना, झट परिचय'' परिचय झट घनिष्ठता में बदल जाना। बहे-बहे फिरना'''अपना कोई रंग ही नही—इसके पास गये तो लाल हो गये, उसके पास गये तो नीले। उस आदमी को प्यार करने का भ्रम सालों पाले रही, जिसने उसे सिर्फ एक चीज दी'''अपना नाम—श्रीमती ''

सहसा अपने क्वाँरे नाम की ललक से भर उठा सुवर्णा का मन।

"कोई जरूरी है कि एक की चाहना बन्द तो दूसरा फौरन शुरू"या हो चुका हो और हमें पता भी चल चुका हो ? बगैर किसी को चाहे भी तो रहा जा सकता है।"

"यही तो मैं कहता हूँ— यह प्यार-व्यार सिर्फ कच्ची उम्र की बातें हैं या फिर तुम्हारे अनन्त-जैसे दोस्तों की" सिक माइण्ड्स !"

"बच्चे तकलीफ न पायें इसलिए तुम मानो तो कुछ समय के लिए ऐसा दिखा सकते हैं कि बच्चों को पता न लगे"यों आखिर में तो पता लगेगा ही, लेकिन तब तक वे मानसिक रूप से तैयार हो चुके होंगे। मैं अपनी जगह उन्हें ले जाऊँगी और वहीं पढ़ाऊँगी। तुम आते-जाते रह सकते हो।"

"मैं अगर यह न मानूँ तो"?"

"तो बताओ तुम क्या चाहते हो?"

"तुम यहीं रहो।"

"यह मुमकिन नहीं है। घिसटते रहने की मैं कायल नहीं हूँ और मुझे धीरे-धीरे अब अपने विश्वासों को पहचानना और उन पर अमल करना आ रहा है।"

"यह भी तो हो सकता है कि थोड़ा वक्त गुजरने पर तुम्हारा यह मलाल धुल जाय। आखिर जो मैंने यह सब किया अपनी-तुम्हारी भलाई सोचकर ही किया। तुम्हें अभी नहीं रोकता तो कब रोकता फिर? इतने दिनों तो जब्त किया ही। हो सकता है धीरे-धीरे तुम यह समझने लगो और तुम्हारा मन मेरे लिए पहले-जैसा ही जाये"'"

"जब ऐसा होगा तब मैं वापस आ जाऊँगी।"

"मतलब मेरा इस्तेमाल करोगी, क्यों? जब माफिक पड़ा चली जाओगी, जब चाहा आ जाओगी!"

"आऊँगी तुम्हारी रजामन्दी से ही। जो मैं अपने लिए चाहती हूँ, तुम्हें भी दूँगी हमेशा। तुम स्वतन्त्र हो, रहोगे। मैं तुम्हारे साथ भी रही तो याद करो मैंने तुम पर किसी तरह की पाबन्दी नहीं लगायी। किसी भी समय किसी औरत-आदमी से तुम्हारे सम्बन्ध को लेकर तुम्हें नहीं टोका। शकबाजी, टटोलबाजी कुछ नहीं।"

"पाबन्दियाँ मेरी लगायी नहीं, उस संस्था की हैं जिसे विवाह कहते हैं।"

"विवाह या कोई भी संस्था हमारी जिन्दगी से बड़ी तो नहीं होती। कहीं बन्धन लाचारी हो सकते हैं, हम दोनों के साथ वह होने की जरूरत नहीं है। मेरे लिए यह जाना घर छोड़ना नहीं है "वैसे तुम चाहो तो ऐसा सोच सकते हो, तलाक माँगोगे, वह भी दे दूँगी। मेरे लिए अभी जाना मुझे वह मौका देगा जब मैं अपने जीवन के बारे में, तुम्हारे-अपने बारे में थमकर, ठण्डे-ठण्डे सोच सकूँगी "अगर मुझे लगा कि यह सिर्फ काई थी जो मेरे मन पर उतरा आयी और मैं अब भी तुम्हें चाहती हूँ तो बता दूँगी। फिर रहना दोनों की मंजूरी से होगा। फिलहाल मुझे

तुमसे···अलग· ·दूर रहने की जरूरत है।"

रमेश खीझकर उठ गया।

"मैं जानता था—वे उचक्के मेरा घर उजाड़कर दम लेंगे·· कैसा टेढ़ा-टेढ़ा सोचती हो तुम, सीधे चल ही नही सकती, उफ़्·· "

जाते-जाते वह पलट आया।

"ओ. के. तुम जाओ ! एक दिन अपनी गलती समझोगी। ये सब ख़ूबसूरती के साथी हैं···अय्याश साले ! और देखो, तुम मेरे बच्चो को नही ले जाओगी। वे यही रहेंगे और पढ़ेंगे। तुम्हारा यह बहकना उन्हें भी बीमार कर देगा। और अब मेहरबानी करके जल्दी खत्म करो। जो करना चाहती हो जल्दी करो। अपने साथ-साथ तुम मुझे भी पागल करती जा रही हो···"

चीख में टुकड़े-टुकड़े होता आदमी। सुवर्णा देखती रही—रमेश को चिल्लाते हुए। फिर घर के भीतर जाते हुए। बेडरूम में जाकर वह पानी पियेगा और फिर बिस्तर पर सीधा लेट जायेगा। थोड़ी देर तक ऊपर सीलिंग की तरफ देखता रहेगा, फिर करवट लेगा और आँखें बन्द कर लेगा। थोड़ी देर मे खुर्राटे चल निकलेंगे।

ऊपर से नीचे तक शान्ति·· कब से ऐसा महसूस नही किया था। शायद अब तक यह अनुभूति जिन्दगी मे गिनी-चुनी बार हुई थी···ज्यादातर अनन्त के साथ।

बेचारा रमेश ! कैसे रहेगा उसके बिना···वह जो छोटी-से-छोटी चीज के लिए सुवर्णा पर इतना आश्रित है ! तो क्या फिर वह रुक जाये, धोखा जो उसने रमेश के साथ अब तक नही किया, अब करे · रमेश की रजामन्दी से उसे ही धोखा देती रहे ? रमेश तैयार हो जायेगा, इसके लिए भी। वह आदी है···उन सुविधाओ का जो सुवर्णा घर में उपलब्ध कराती है, एक मौजूदगी का जो घर को वीरान नही बनाती, स्टेटस का···रोबदाबवाली कुर्सी और सुन्दर बीवी ! वह सिर्फ रमेश के जीवन की सजावट ही बनने की कोशिश करती रहे, अपने लिए कुछ न करे ?

अँधेरे में डूबा उसका घर···एक से मकानों की कतार मे एक यह भी। सड़क मे थोड़ी-थोड़ी दूर पर टँगे हुए सफेद रॉड। ठीक नीचे चौंधियाती रोशनी। शाम होते ही कैसे बेताब परवानों की भनभनाहट सड़क-भर में उतरा आती है। अब, सब खामोश है।

सुवर्णा को हमेशा यह लगता रहा कि वह एक सफर पर है··खुद को ढूँढने निकली है, लेकिन वह गलत थी। अब तक जो था वह तो दरअसल भटकाव था—जिस किसी से प्रभावित हो जाना, झट परिचय···परिचय झट घनिष्ठता मे बदल जाना। बहे-बहे फिरना···अपना कोई रंग ही नही—इसके पास गये तो लाल हो गये, उसके पास गये तो नीले। उस आदमी को प्यार करने का भ्रम सालो पाले रही, जिसने उसे सिर्फ एक चीज दी···अपना नाम—श्रीमती ··

सहसा अपने क्वाँरे नाम की ललक से भर उठा सुवर्णा का मन।

संजोग-वियोग की कहानी न उठा

आसमान में छायी चिलचिलाती धूप चीड़ के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के रास्ते नीचे जमीन पर उतरती है, टूटकर धब्बे-धब्बे हो जाती है। छोटे-बड़े धब्बे जाकर जमीन से चिपकते हुए। न पूरी छाया है, न धूप···पहाड़ पर दोपहर की उदासी है, दरख्तों के बीच से उडती-गुजरती एक काँ···काँ प्यासी, बेचैन···

सुवर्णा दरख्तों के नीचे-नीचे चली जा रही है, यूँ ही···अनिश्चित।

फौरन ही तबादला नहीं मिला था तो छुट्टी ही ले ली और माँ-बाप के पास चली आयी। यहीं से नयी तैनाती का पता कर लेगी और सीधा वहाँ पहुँच जायेगी···फिर नया शहर, नया काम, नया जीवन···

जैसे सुवर्णा—जो भी वह थी—पीछे छूट गयी है। वह हर पल का भागते रहना-सा—एक माहौल से दूसरे में, एक व्यक्ति से दूसरे के पास, एक काम के बाद दूसरा काम···अक्सर एक साथ कई माहौल, कई व्यक्ति, कई काम बराबरी से··· कि बाहर पिच-पिच भी लगे। सुवर्णा को भ्रम था कि जब वह कइयों चीजों को एक साथ चलाती होती है तभी वह अपनी शक्तियों का सबसे अच्छा इस्तेमाल करती है, तभी उसके व्यक्तित्व का श्रेष्ठ निकलकर बाहर आता है। दौड़ ही में जैसे सुवर्णा, सुवर्णा थी···लेकिन दौड़ को अब पीछे छोड़ आयी तो जैसे भारहीन हो गयी है, वह सब फालतू था जो छँटकर गिर गया। कहाँ हर पल कोई-न-कोई साथ··· ऊब की हद तक साथ, अब अपने साथ केवल वह स्वयं है।

यह एक छोटी-सी पहाड़ी बस्ती है, हिल-स्टेशन की आम चमक-दमक से कोसों दूर, पर ऊँचाई और ठण्डक में कुछ ज्यादा ही। अपनी सुन्दरता और शान्ति में डूबी, एक किनारे पड़ी हुई···साफ-सुथरी, थोड़ा उदास भी। नीचे गहरी घाटियाँ, दरख्तों से लबालब भरी हुई। चीड़ के ऊँचे-ऊँचे पेड़। सामने पहाड़ियों का लहरियेदार सिलसिला।

रिटायर होने के बाद से ममा-पापा यहीं रहते हैं। उन्हें कुछ बताने का मन एकदम नहीं था, लेकिन ममा की नजरों से बचा नहीं जा सका। पापा से जरूर अब

वे दोनों बचा रहे है। ममा कहती हैं कि वे नयी जगह पर सुवर्णा के साथ रहेंगी ·· कैसा है यह समाज कि सुवर्णा अकेले सिर्फ इसलिए नही रह सकती कि वह औरत है !

. एकाएक चल पड़ी इस रास्ते पर। क्या कुछ दिनों और सोचकर देखती ? लेकिन सोचने लगो तो सोचते ही रहो और फिर धीरे-धीरे घिसटने पर उतर जाओ। यह नही कि सुवर्णा सोचते-सोचते कही पहुँची। उसे खूब याद है कि एकाएक रोशनी-सी फूटी, रास्ता दिखायी दे गया · और वह चल दी। ऐसा तो नही कि सशय उठता ही नही मन मे ··पर उदासी ज्यादा है, जिसे काटकर छोड़ आयी उसके अलग होने का दर्द···

छोटे बेटे की याद आती है···इतना खयाल करती रही फिर भी दुबला। कही लेटा देख लेगा तो दौड़कर आ जायेगा और सुवर्णा के पेट पर अपना चेहरा रख देगा। पेट का खुला-खुला गोरा-गोरा हिस्सा उसे बहुत अच्छा लगता है। उसका चेहरा पेट पर लोटता रहेगा और सुवर्णा की उँगलियाँ उसके बालो पर। कभी-कभी वैसे लेटे-लेटे, कभी गर्दन मे झूलकर पूछेगा—'मम्मी, तुम मुझे इतनी अच्छी क्यों लगती हो ?' कैसा इत्तिफ़ाक कि अनन्त भी बिल्कुल यही फुसफुसाता था, सिर्फ मम्मी की जगह सुवि· ·

"गुड्डू बेटे, तेरी माँ अच्छी नही है। देख, तुझे छोड़कर आयी। पर मैं आऊंगी बेटे···जल्दी ·या ममा-पापा जाकर तुम्हें ले आयेंगे ·तुम दोनों के बगैर मैं कैसे रह सकती हूँ !"

सोंधी-सोंधी यह गन्ध कहाँ से फूटती है ? अडिग पहाड़ियो से· ·आँखो की समेट मे न आ पाती इन दरख्तो की फुनगियों से या कि इनके मोटे-मोटे तनो से··· नम, गीलेपन से हल्के-हल्के उधड़ते हुए तने ! ये पेड़ ही तो है जो मैदान मे नही होते · या कि फिर जमीन ही की कोई खासियत है· पौधनुमा पेड़, घास-फूस, कंकड़-पत्थर, सूखे पत्तो और बिखरे हुए कूड़े-कचरे के नीचे दबी पड़ी जमीन··· अदृश्य। जो धूल की जमी हुई पर्त नज़र आती है, जिस पर सुवर्णा चल रही है · उसे भी जमीन कैसे कहा जाये, फिर कहाँ है जमीन ? इसके भी नीचे···कहाँ··· कितने नीचे···

कुछ दिनो पहले तक सब बँधा-बँधा था—सवेरे उठना, दौड़-दौड़कर तैयार होना, भागते हुए दफ्तर, दफ्तर मे एक के बाद दूसरे काम · थके हुए लौटना, फिर घर के काम। सवेरे की चाय से लेकर रात के खाने तक हर चीज 'टाइम' और 'स्पेस' मे बँधी हुई। आगे आनेवाली जिन्दगी भी साफ दिखती थी—बच्चे बड़े होंगे, ब्याहकर अपना घर बसायेंगे, वह और रमेश अपनी-अपनी नौकरियो पर रहेंगे। दोस्त—कुछ दोनों के एक ही, कुछ अलग-अलग। दोनों आस-पास रिटायर होंगे··· बुढ़ापा साथ-साथ। सारा खाका एक झटके मे लिप-पुत गया, सबकुछ बिखरा

संजोग-वियोग की कहानी न उठा

आसमान में छायी चिलचिलाती धूप चीड़ के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के रास्ते नीचे जमीन पर उतरती है, टूटकर धब्बे-धब्बे हो जाती है। छोटे-बड़े धब्बे जाकर जमीन से चिपकते हुए। न पूरी छाया है, न धूप···पहाड़ पर दोपहर की उदासी है, दरख्तों के बीच से उड़ती-गुजरती एक काँ···काँ···प्यासी, बेचैन···

सुवर्णा दरख्तों के नीचे-नीचे चली जा रही है, यूँ ही···अनिश्चित।

फौरन ही तबादला नहीं मिला था तो छुट्टी ही ले ली और माँ-बाप के पास चली आयी। यहीं से नयी तैनाती का पता कर लेगी और सीधा वहाँ पहुँच जायेगी···फिर नया शहर, नया काम, नया जीवन···

जैसे सुवर्णा—जो भी वह थी—पीछे छूट गयी है। वह हर पल का भागते रहना-सा—एक माहौल से दूसरे में, एक व्यक्ति से दूसरे के पास, एक काम के बाद दूसरा काम···अक्सर एक साथ कई माहौल, कई व्यक्ति, कई काम बराबरी से··· कि बाहर घिच-पिच भी लगे। सुवर्णा को भ्रम था कि जब वह कइयों चीजों को एक साथ चलाती होती है तभी वह अपनी शक्तियों का सबसे अच्छा इस्तेमाल करती है, तभी उसके व्यक्तित्व का श्रेष्ठ निकलकर बाहर आता है। दौड़ ही में जैसे सुवर्णा, सुवर्णा थी···लेकिन दौड़ को अब पीछे छोड़ आयी तो जैसे भारहीन हो गयी है, वह सब फालतू था जो छँटकर गिर गया। कहाँ हर पल कोई-न-कोई साथ··· ऊब की हद तक साथ, अब अपने साथ केवल वह स्वयं है।

यह एक छोटी-सी पहाड़ी बस्ती है, हिल-स्टेशन की आम चमक-दमक से कोसों दूर, पर ऊँचाई और ठण्डक में कुछ ज्यादा ही। अपनी सुन्दरता और शान्ति में डूबी, एक किनारे पड़ी हुई···साफ-सुथरी, थोड़ा उदास भी। नीचे गहरी घाटियाँ, दरख्तों से लबालब भरी हुई। चीड़ के ऊँचे-ऊँचे पेड़। सामने पहाड़ियों का लहरियेदार सिलसिला।

वे दोनों बचा रहे है। ममा कहती हैं कि वे नयी जगह पर सुवर्णा के साथ रहेंगी· कैसा है यह समाज कि सुवर्णा अकेले सिर्फ इसलिए नही रह सकती कि वह औरत है !

एकाएक चल पड़ी इस रास्ते पर। क्या कुछ दिनो और सोचकर देखती ? लेकिन सोचने लगो तो सोचते ही रहो' और फिर धीरे-धीरे घिसटने पर उतर जाओ। यह नही कि सुवर्णा सोचते-सोचते कही पहुँची। उसे खूब याद है कि एक रोशनी-सी फूटी, रास्ता दिखायी दे गया और वह चल दी। ऐसा तो नही कि सशय उठता ही नही मन में ··पर उदासी ज्यादा है, जिसे काटकर छोड़ आयी उसके अलग होने का दर्द···

छोटे बेटे की याद आती है···इतना खयाल करती रही फिर भी दुबला। कही लेटा देख लेगा तो दौड़कर आ जायेगा और सुवर्णा के पेट पर अपना चेहरा रख देगा। पेट का खुला-खुला गोरा-गोरा हिस्सा उसे बहुत अच्छा लगता है। उसका चेहरा पेट पर लोटता रहेगा और सुवर्णा की उँगलियाँ उसके बालो पर। कभी-कभी वैसे लेटे-लेटे, कभी गर्दन में झूलकर पूछेगा—'मम्मी, तुम मुझे इतनी अच्छी क्यों लगती हो ?' कैसा इत्तिफ़ाक कि अनन्त भी बिल्कुल यही फुसफुसाता था, सिर्फ ममी की जगह सुवि

"गुड्डू बेटे, तेरी माँ अच्छी नही है। देख, तुझे छोड़कर आयी। पर मैं आऊंगी बेटे· जल्दी ··या ममा-पापा जाकर तुम्हें ले आयेंगे तुम दोनों के बगैर मैं कैसे रह सकती हूँ !"

सोंधी-सोंधी यह गन्ध कहाँ से फूटती है ? अडिग पहाड़ियो से· आँखो की समेट मे न आ पाती इन दरख्तों की फुनगियो से या कि इनके मोटे-मोटे तनो से··· नम, गीलेपन से हल्के-हल्के उधड़ते हुए तने ! ये पेड़ ही तो है जो मैदान मे नही होते या कि फिर जमीन ही की कोई खासियत है पौधेनुमा पेड, घास-फूस, ककड़-पत्थर, सूखे पत्तों और बिखरे हुए कूडे-कचरे के नीचे दबी पडी जमीन·· अदृश्य। जो धूल की जमी हुई पर्त नजर आती है, जिस पर सुवर्णा चल रही है ·· उसे भी जमीन कैसे कहा जाये, फिर कहाँ है जमीन ? इसके भी नीचे···कहाँ··· कितने नीचे···

कुछ दिनो पहले तक सब बँधा-बँधा था—सवेरे उठना, दौड़-दौड़कर तैयार होना, भागते हुए दफ्तर, दफ्तर मे एक के बाद दूसरे काम · थके हुए लौटना, फिर घर के काम। सवेरे की चाय से लेकर रात के खाने तक हर चीज 'टाइम' और 'स्पेस' मे बँधी हुई। आगे आनेवाली जिन्दगी भी साफ दिखती थी—बच्चे बड़े होंगे, ब्याहकर अपना घर बसायेंगे, वह और रमेश अपनी-अपनी नौकरियो पर रहेंगे। दोस्त—कुछ दोनो के एक ही, कुछ अलग-अलग। दोनो आस-पास रिटायर होंगे··· बुढापा साथ-साथ। सारा खाका एक झटके मे लिप-पुत गया, सबकुछ बिखरा

दिखता है "अब क्या ? वह बूढ़ी होगी तो ?

छर छर छर छर" एकरस आवाज, जैसे पास कहीं घने दरख्तों के नीचे से रेल चली जा रही हो। हवा दरख्तों में से गुजर रही है या कि पत्ते छरछरा रहे हैं। नीचे घाटियों मे दोपहर की वीरानी फैली है, सामने की ऊँची पहाड़ी कैसी बौनी-बौनी " चोटी पर पेड़-पौधे तो दूर जैसे घास भी नहीं उगी !

ममा अक्सर सामने बैठकर नजरों से सुवर्णा को उकेरने की कोशिश करती हैं। वे जिस तरह देखती हैं, वह लाचारी-सा कुछ भर जाता है सुवर्णा में। कुछ हम हिन्दुस्तानी औरतों मे भी खराबी है। बन्धनों की ऐसी आदत हो जाती है कि वे थोड़ी देर से न हुए कि मन फिर उन्हीं की तरफ ललकता है—हाय मेरा पति ! हाय मेरे बच्चे ! अरे कौन-सा पति—वही न जो ब्याहता का बिल्ला तुम्हारे माथे पर चिपकाने, तुम्हारे मुँह मे सुरक्षा की बबलगम डाल देने के बदले तुम्हे किसी भी समय, कैसी भी तकलीफ देने का अधिकार स्वयं को दे लेता है" और बच्चे जो तब तक ही आपके हैं, जब तक बड़े नहीं हुए। बड़े होते ही वे कुछ-के-कुछ हो जाते हैं—हमे रंगीन टी. वी. चाहिए, वीडियो लाओ" हमारे दोस्तों के घर पर है, हम भीख नहीं माँग रहे "और जिस दिन उन्होंने अपनी बीवियों की शक्लें देख ली कि माँ-बाप का किया-कराया सब साफ "पैदा किया था तो करना ही था, क्या अहसान कर दिया !

सिहरन की एक लकीर सुवर्णा में उतरती है और भीतर टेढ़े-मेढ़े दौड़ते हुए उसे हिलाकर रख देती है"क्या है जो तुम्हारा हुआ ? वह दोपहरी की हवा को छूने की कोशिश करती है, त्वचा पर हल्का गरम-गरम अहसास !

उसने स्वयं को लाकर यहाँ प्रकृति की गोद मे डाल दिया है। पहले सोचती थी कि हर नये व्यक्ति का साथ उसको अपने विकास मे मदद कर रहा है, करता भी रहा होगा थोड़ा-बहुत"" लेकिन एक मोटी बात जो नहीं सूझी, वह यह कि जब हम हमेशा कभी इसके, कभी उसके पास होते है तो अपने पास फिर कब रहते हैं ? जब दूसरो के ही अक्स लेते रहते हैं तो अपना तो और धुँधलाता चला जायेगा ? खुद के साथ हुए बगैर कैसे अपने को पहचान सकेंगे और कौन-सा विकास पा सकेंगे ? जिन रिश्तों के बगैर सुवर्णा सोचती थी कि वह रह ही नहीं सकती वे, अब ऐसा लगता है, वे ज्यादा कुछ नहीं थे। उनसे जीवन भरा-भरा दिखता था, पर वे नहीं हैं तो बहुत खाली भी नहीं लगता। उलटे कभी-कभी तो ऐसा लगता है जैसे वे सब बोझ थे जिन्हे उतार फेंका तो अब हल्का-फुल्का है। बगैर किसी को अपनी पीठ पर लादे हुए अब वह घूम-फिर सकती है, जी सकती है।

इसी तरह एक और चीज थी—बौद्धिकता की बीमारी ! अपने को बुद्धि के सहारे ही चलाना, जो कुछ हम कर रहे हैं वह ठीक है " बहुत अच्छा है ! अपने तर्कों से अपने छोटे-से-छोटे काम के आकार को भी गुब्बारे की तरह फुला लेना और

फिर चहके-चहके घूमना। अपने स्वार्थों को पोसते हुए चलना, कभी इसमें तो कभी उसमें अपने महत्त्व के भ्रम को पालते हुए और उसे दूसरों को जताते हुए भी—हमने दफ्तर का यह बड़ा काम और वह भी इस खूबी से किया, हमें हर तरह की जानकारी-दिलचस्पी है, हम खूब पढ़े-लिखे और सोचने-समझनेवाले हैं, हम कलाकार हैं, साहित्य में, नाच में रुचि है, स्कूल खोलेंगे और अपनी कला को बाँटेंगे—मतलब, अपने महत्त्व को जगह-जगह परिभाषित करते फिरना, बुद्धि के किसी क्षेत्र में अपने को जमा हुआ देखने की बेचैनी ''आधुनिक महिला की बीमारी !

सुवर्णा सोचती थी कि ये सब चीजें और उसके कई सम्बन्ध उसका रास्ता साफ करेंगे पर उस चक्कर में जैसे अपने हिस्से की जमीन में हर इंच पर उसने कुछ-न-कुछ रोप डाला—*भूल गयी कि जमीन को खाली ही न छोड़ा, हर जगह घास-फूंस* रोप ली तो फिर क्या उगेगा यहाँ'''।

सुवर्णा आँखें मूँद लेती है'''अब कुछ नहीं तो जैसे सबकुछ है—ऊपर नीला आकाश, उजली धूप, पेड़, पहाड़, जमीन'''और यह हवा मुँह पर थप-थप करती हुई, रोम-रोम को छूती हर पल साथ बहती हुई। अपने में से सबकुछ उलीच डालो'''और तब जो उगेगा वही असल होगा'''

ईश्वर का दिया हुआ यह जीवन पूरी विनम्रता में बहने दो'''हमारी प्राप्तियाँ भी अपने आकार से छोटी ही रहें'''चलते रहो यों ही पेड़ों के नीचे-नीचे, अगल-बगल से'''

कितनी दूर निकल आयी वह ?

बाहर कोई सुवर्णा को पूछ रहा है।

आवाज उठते ही अन्दर बैठी सुवर्णा तक पहुँच गयी। इस आवाज को हर मरोड़, हर उतार-चढ़ाव में, पास से, दूर से, धीमे-ऊँचे' 'इतना सुना है कि वर्षों बाद भी कहीं दो टुकड़े कान में पड़ जायेंगे तो वह पहचान लेगी' लेकिन उचककर बाहर जाने की बजाय वह वैसे ही बैठे रहती है। भीतर खबर आती है तो ममा की नजरें उठती हैं, चश्मे के पार आशा की चमक चिलक उठती है—रमेश माफी माँगने आया है, लेने आया है बेटी वापस चली जायेगी, घर के झगड़े घर-जैसे ही होते हैं आखिर'''

ममा बाहर जाती हैं, पीछे-पीछे सुवर्णा रेंगती हुई और फिर उसकी अपनी सधी हुई आवाज उसके ही कानों में'''

"आओ, अनन्त आओ'''!"

सुवर्णा ममा से परिचय कराती है—उस शहर का एक दोस्त जिसे अब वह छोड़ आयी है, लेकिन ममा तक जो परिचय पहुँचा है, उसे वह उनकी आँखों में

तैरता साफ-साफ देख सकती है—वह आदमी जिसकी वजह से सुवर्णा का घर टूट रहा है !

बातें···बस्ती, घर, मौसम की। ममा बातों के दर्म्यान, चाय के पहले और दौरान कुरेद-कुरेदकर देखती रहती हैं अनन्त को। उससे तरह-तरह के सवाल पूछती हैं। अनन्त को अविवाहित जानकर उनका शक और पक्का हो जाता है···और इस सबके बीच सुवर्णा चुप है करीब-करीब औपचारिक बातों में शरीक होते हुए और फौरन ही अपने में लौटते हुए, जैसे उसे बहुत मतलब न ममा से हो, न अनन्त से ही। ममा इधर-उधर से झटके दिये जा रही हैं। सुवर्णा ममा की आँखों में सीधा-सीधा नहीं देख सकती, नजरें झुकी हैं ··मगर क्यों···सुवर्णा तन उठती है, सीधा बैठ जाती है।

अनन्त से परिचय के फौरन बाद जो कड़वाहट ममा के चेहरे पर उग आयी थी वह घुल रही है, धीरे-धीरे, अब करीब-करीब गायब है, पर उनके चेहरे का जाना-पहचाना मिठासवाला वह रस भी नहीं है।

अनन्त भीतर-ही-भीतर छटपटा रहा है···सुवर्णा देख सकती है, शायद ममा भी। दोनों में कोई कहे कि उन्हें थोड़ी देर के लिए अकेला छोड़ दिया जाय···इसके पहले ममा अपने आप ही उठ जाती हैं।

बस्ती को घेरने बादल उमड़े चले आ रहे हैं। छाँव में घरों, सड़कों, पेड़-पौधों के नक्श गहराते जा रहे हैं। आज बारिश होगी···मौसम की पहली बारिश। जिस्म पर रेंगती हल्की फुरफुराहट।

वे क्या पहली बार मिल रहे हैं ? बात करने को एकान्त माँग रहे थे और जब अकेले हुए तो जैसे शब्द ही खत्म हो गये हैं। अनन्त सिर्फ देख रहा है, पिघलते हुए। बड़े ही महीन स्वर में बजती बूँदें···अदृश्य, पत्तों पर आसन्न-वृष्टि की थपक।

"तुमने बताया भी नहीं···" अनन्त की प्यार-भरी शिकायत, तानपूरा की उठती झंकार-सी।

"······"

"दफ्तर से पता चला कि तुमने तबादले की दर्ख्वास्त दी, फिर छुट्टी ले ली। तुम्हारा वहाँ न होना·· मैं समझ गया तुम यहीं होगी। गलत किया मैंने क्या जो यहाँ आया ?"

मोटी-मोटी बूँदें पहाड़ी पर···पट···पट···पट···भीगती जमीन से महक का झोंका ऊपर उठता है।

"क्या सोचा है ?" अनन्त आगे पूछता है।

"कुछ नहीं !"

"कुछ तो सोचा होगा···ऐसे ही यहाँ आ गयी ?"

"शायद सोचना नही था वह। सोचते-सोचते तो कही नही पहुँच सकी थी··· एकाएक लगा···जैसे!"

"हाँ, मैं भी कभी-कभी सोचता हूँ कि इतना बड़ा ब्रह्माण्ड···उसमें यह छोटी-सी पृथ्वी, उस पर धब्बों से चिपके हम लोग··अपनी हर छोटी उछल-कूद को इतना बड़ा समझते है। सोचते हैं कि जो होता है, वह हमीं करते हैं·· लेकिन हम बहुत-से-बहुत अपने हिस्से का ही तो कर सकते हैं, उससे तो कुछ होता नही। अब रमेश जो करता है वह तुम्हारे हाथ मे है क्या···कभी था?

फिर जब कुछ हमारे खिलाफ होता दिखता है तो हम पगलयाने लगते हैं—अपने सोचने को कोसते हैं, छानबीन करते है, गलतियाँ ढूंढते हैं। मुझे तो लगता है हमारा यह मानना कि हम यह सोचेंगे, ऐसा करेंगे तो ऐसा ही होगा···यह घमण्ड ही है। चीजें होती हैं, हमारे बावजूद। हमारे सोच से फर्क पड़ता है थोडा-बहुत, पर आदमी है कि अपने आपको भाग्यविधाता मानता है। जिन्दा होने का, जिन्दगी का नशा शायद यही है। नशा उतरता है एकाएक···जब कोई झटका लगता है —कोई हादसा, कोई मौत या ऐसा कुछ जो तुम्हारे साथ हुआ···और तब लगता है कि अरे आप तो कुछ भी नहीं हैं। सोचने का सारा तरीका, जिन्दगी के लिए हमारा नजरिया ही बदल जाता है एकाएक···अरे, मैं ही बोले जा रहा हूँ।"

"तुम्हें सुनना अच्छा लग रहा है।"

"लेकिन मैं तो सुनने आया था। तबादले की दरख्वास्त क्यो दी? यहाँ एका-एक···?"

"ये छोटी चीजें है। पानी की धार किधर जा रही है, वह महत्त्व का होता है न कि ऊपर के ये बुलबुले।"

"आगे···?"

"तुम्ही तो कहते हो, सोचना नही चाहिए!" सुवर्णा के होठों पर हल्की मुस्कान।

"नही···सोचने का घमण्ड न हो···सोचना कहाँ रुक सकता है जब तक जीवन है। मेरा खयाल है तुम्हें घर लौट जाना चाहिए। तुम यहाँ सुखी नही होगी।"

"तुम गलत भी तो हो सकते हो। जानते हो यहाँ आते समय और आने के बाद कुछ दिनो तक जबर्दस्त अपराध-भावना घेरे रही, फिर एक दिन एक खत आया जिसने मेरी आँखें खोल दी। रमेश के एक औरत के साथ सम्बन्ध थे··वे साथ सोते थे।"

"क्या··? मै विश्वास नही करता।"

"मैं भी न करती लेकिन वह खत उसी औरत का था—उर्वशी··रमेश की ही सर्विस की है। मैं जानती हूँ उसे··उसने खुद कबूल किया।"

"तुम्हें लिखने का उसका क्या मकसद हो सकता है?"

"कुछ भी ''उसने जो लिखा है वह यह कि रमेश ने जो मेरे साथ किया उससे उसे बहुत तकलीफ पहुँची।"

"शादीशुदा है?"

"नहीं!"

"तो यह भी तो हो सकता है कि उर्वशी तुम दोनों के बीच की खाई को और चौड़ा करके रमेश को हथियाने की योजना बना रही हो।"

"हो सकता है, लेकिन इससे जो उनके बीच था' वह हकीकत तो नहीं बदल जाती। मैं जानती थी कि वे दोनों खासे घनिष्ठ थे, लेकिन इस हद तक''यह जरूर कभी न सोच सकी थी। यह होते हुए भी रमेश की हिम्मत हुई कि मुझे''"

"पत्र मिलते ही तुमने वापस जाने का नहीं सोचा?"

"मेरी जगह कोई दूसरी होती तो फौरन भागकर जाती और रमेश पर कब्जा बनाये रखने में जुट जाती। पहले जो मैं थी ''तो शायद मैं ही यही करती। अब यह सब''छीना-झपटी सोचकर ही मितली आती है। ईश्वर का धन्यवाद करती हूँ कि मुझे यह खबर मिल गयी। अब यह तो नहीं लगा करेगा कि रमेश ने तो मेरे अलावा कभी किसी के बारे मे सोचा भी नहीं और मैं''उसे छोड़ भी आयी।"

"क्या तुम कह सकती हो कि यहाँ तुम सुखी हो?"

"बात अगर सुखी होने की नहीं, कम दु:खी होने की हो तो?"

बड़ी हो गयी सुवर्णा तुम तो इस बीच' इतनी जल्दी! अनन्त की नजरें सुवर्णा की पनियायी आँखो मे उतरने लगी जल-राशि में तिरती नीचे जाती सीपियों-सी। सुवर्णा मोम की तरह टप-टप चू रही है अपने मे ही''बरसात भीतर, उठकर खिड़की खोल देती है।

बारिश थम गयी है, पर इतने मे ही सबकुछ धुला-धुला निकल आया है। सामने बादलों का धुआँ मोटी धार मे गिर रहा है, नीचे पहाड़ियों के बीच, घाटी में 'आओ, मुझे भर दो!

"मैं 'हैपी होम' मे ठहरा हूँ। शाम को आ सको तो ''तुमसे बहुत बाते करना है।"

'बाहर कहीं मिलने के लिए न कहो अनन्त! जब से घर छोड़ा तो जैसे बाहर अकेले में किसी से मिलने की हिम्मत ही जाती रही। पहले कुछ भी गलत नहीं लगता था।"

"अब गलत लगता है?"

"नहीं। शायद हाँ 'जिस जमीन पर खड़ी हूँ, उसका पूरा अहसास चाहती हूँ।"

"रमेश से अलग होने का सोच रही हो?"

"मुझे नहीं मालूम!"

"बच्चे ?"

"अभी वहीं है · कुछ दिनों मे यहाँ आ जायें शायद देखो ?"

"बच्चे क्या चाहते हैं ?"

"वे क्या चाहेंगे बेचारे। मुझे बच्चो की बहुत याद आती है अनन्त ! मेरे बिना वे कैसे रहते होंगे। रमेश को बच्चों का कुछ भी करना नही आता···न ही उसमे वह भावना है। वह जान-बूझकर उन्हे रखे हुए है ताकि मैं लौट आऊँ, उसकी शर्तों पर उसके साथ रहने लगूँ। मैं बच्चों के बिना नहीं रह सकती ··देखो न उन बेचारो का कोई कुसूर नही, टकराते है दो के अहं और सबसे ज्यादा दु:ख उठाना पड़ता है बच्चो को, हमेशा ही। यह ठीक नही है।"

"इसीलिए तो मैंने कहा था—तुम्हें लौट जाना चाहिए।"

वापस वहीं ? वही घिनौनी दुनिया· कीचड़ मे भिन-भिन करते लोग। जैसे रमेश-उर्वशी, वैसे ही सुवर्णा · थोड़ा कम या ज्यादा। कोई किसी के लिए कुछ बेहतर, थोड़ा पवित्र-सा कुछ महसूस करे तो रमेश या उस-जैसा कोई उसे अपने तंग सोच के गलीज़ धरातल पर घसीट लायेगा। अपना ही कीचड़ दूसरो पर उछालते लोग !

"रमेश के साथ रहूँ · एक तरह की उम्र-कैद ! जानते हो जिस दिन श्याम के सामने उसने मुझे उस तरह पकड़कर घसीटा था, तब से एक मिनट के लिए मैं कभी यह नही भूल सकी कि मैं एक जानवर के साथ रह रही हूँ। तभी यह भी खयाल आता है कि जो रमेश ने किया वह रमेश की जगह कोई और हो वह भी कर सकता है बिल्कुल वैसा ही !"

"तुम दोनों को बच्चों का सोचना चाहिए।"

"रमेश मेरी कमजोरी जानता है· 'बच्चों को अपने साथ रखकर ब्लैकमेल कर रहा है, करेगा। मुझे अच्छी नहीं लगती अपनी यह बुनावट कि मैं स्वतन्त्रता भी चाहती हूँ और बच्चे भी—अपनी सारी शिक्षा के बावजूद बुनियादी तौर पर मैं कहीं हिन्दुस्तानी औरत हूँ ··क्या होगा मेरा अनन्त ?"

उन सुन्दर आँखो में···जहाँ खिलते हुए कितनी तरह के रंग मैंने देखे थे··· आज जैसी छटपटाहट देख रहा था वैसी कभी नही देखी थी। छटपटाहट ··भयंकर तकलीफ मे किरकिराती हुई ·इतना बोझ कि पिघलकर आँसुओं में बह नही सकता था। बोझ के मारे सुवर्णा का मुँह सूख-सूख आता था। उसकी तकलीफ को उतना पास से देखता, महसूस करता हुआ भी मैं लाचार था। यह वह बिन्दु था जहाँ हम अपनी तकलीफ में अकेले होते हैं · नितान्त अकेले।

"कभी-कभी मन बहुत भारी हो जाता है ··यह सोचकर कि इस सबके लिए काफी-कुछ जिम्मेदार मैं हूँ।" मैंने कहा।

"तुमसे मुझे बहुत मिला है, वर्ना तो मैं बस बहती ही रहती। थमना, खड़े

होना'''थोड़ा, तुम्हीं से तो सीखा है ''इसलिए खड़ी भी हूँ, वर्ना तो कब की टूट गयी होती।"

"मैं नहीं जानता कि आखिर तुम्हारा निर्णय क्या होता है' 'और पता नहीं आगे मौका मिले या नहीं, इसलिए अभी कह देता हूँ—तुम्हारे साथ जीवन बिताने को मिले तो मेरा एक सपना पूरा होगा सुवर्णा ' "

"तुम मुझे कितना चाहते हो ' खूब समझती हूँ। सिर्फ मैं ही खुद को तुम्हारे लायक नहीं पाती। कुछ था जो मुझे इस तरह गढ़ गया' 'अधूरा, थोड़ा गलत, असली की कीमत पर भी नकली से हिलगे रहनेवाला। कहीं धीरे-धीरे बँधती हूँ तो फिर सहसा अपने को अलग कर लेती हूँ। काश, जैसा तुम मुझमें डूबते हो, मैं भी डूब सकती! जब तक ऐसा नहीं कर सकूँगी, मुझे कुछ कचोटता ही रहेगा, तुमसे हीनता तक महसूस होती है अक्सर। शायद मेरी शिक्षा परवरिश ने जबर्दस्त गड़बड़ी की है कहीं। कभी-कभी तो लगता है मेरी 'कण्डीशनिंग' हुई है' बहुत कुछ सुखा दिया गया।"

"मैं इन्तजार करूँ ' इससे तो नहीं रोकोगी मुझे ?"

"पता नहीं 'तुम्हारे साथ रहकर थोड़ा-थोड़ा समझने लगी हूँ पर फिलहाल तुमसे एक चीज चाहती हूँ—इन दिनों तुम मेरे लिए बहुत सुलभ न रहो! मैं कमजोर नहीं होना चाहती। मुझे कमजोर करने के बजाय ताकत दो!"

"तुम जानती हो ''"

"तो अब फिर नहीं आना, जब तक मैं इस सबसे निकल नहीं जाती ''इस पार या उस पार!"

अपनी आँखों में आँसुओं की चमक वह महसूस करती है। सामने अनन्त का चेहरा मुस्कुराता हुआ ' अनन्त'' एक तुम्हीं हो जो मेरे बारे में इतना परेशान होते हो, मुझे इतना समझते हो, सहते हो। तुम्हारा चेहरा जरा भी नहीं मुरझाया, उलटे चमक उठा है। मैं यही माँग रही थी—यह अलग होना नहीं है।

अनन्त जाने के लिए उठ खड़ा हुआ है। धीरे-धीरे सुवर्णा के पास आता है। अपने बालों पर वह अनन्त की हथेली महसूस करती है' 'गरम-गरम हथेली, अपने हाथों में उतार चूम लेती है ''"उदास मत होना!"

अनन्त उसके दोनों हाथ थपथपाता है—"तुम अपना खयाल रखना' यह हमेशा सोचना कि तुम सिर्फ अपनी नहीं, दूसरों के लिए भी कुछ हो। इसलिए''''"

सुवर्णा की पलकें खुलती हैं, बन्द होती हैं 'जल्दी-जल्दी, जैसे बार-बार वह किसी तस्वीर को पलकों के भीतर समेटती, फिर मूँद लेती हो। गीली-गीली पलकें। उलझे हुए फूलों से हाथों में बन्द हाथ।

"फोन करूँगी।"

दोनों हँस पड़ते हैं; पहले अनन्त, पीछे-पीछे वह।

हरी-हरी घाटी से निकलकर बादलो का सफेद धुआं अब ऊपर जा रहा है··· जैसे कोई प्रिय मेहमान वापस जा रहा हो। फिर धीरे-धीरे नीचे उभरती आती सूनी घाटी, लेकिन बादलों की नमी से धुली, नहायी हुई ··हरीतिमा उदास, पर निखरी हुई।

22 जून, 1980

सुवर्णा ने सदा मेरे भीतर का श्रेष्ठ उभारा, हमेशा मुझे तुच्छता ·स्वार्थ लांघ जाने की प्रेरणा दी। अपनी इसी शक्ति के लिए उसे कितने कष्टो मे से गुजरना पडा? उसकी परेशानी का एक कारण मैं भी हूं· ·मेरा प्रेम। प्रेम जो आदमीयत की पराकाष्ठा है!

जैसे मेरे भीतर वेदना बराबर बैठी थी, सुवर्णा के साथ ने केवल उसे आच्छादित कर रखा था···अब वह फिर सिर उठा रही है, पर आत्मीय भी लगती है। सुवर्णा के साथ की यात्रा समाप्त, उससे मिलना अब नही होगा यह टीस है, पर मेरा कोई अंश मुझसे अलग खीच लिया गया है ऐसा नही लगता। सुवर्णा जैसे लगातार साथ है, रहेगी। एक रोशनी-सी भीतर लगातार जलती रहती है, हमारे सम्बन्ध का सत्व शायद यही है···आत्मिक। इस निर्मम और करीब-करीब जड होते जाते ससार में यह हम दोनों को ही अपने-अपने दायित्वों को निबाहने की ताकत देगा। इसकी मदद से हम अपने-अपने हिस्से के दुःखो को झेलते हुए खडे रह सकेंगे। आत्मिक··· कितना बड़ा आयाम देता है जीवन को। अगर सुवर्णा मेरे जीवन मे न आती तो यह विराटता मेरे लिए खुलती· ·इसमे संशय है।

इस शहर में अब मन नही लगता···उस संस्कृति के बीच रहना जहां प्यार के नाम पर कुछ और ही पोसा जा रहा हो! दूसरे पर उत्सर्ग हो जाने के क्रम में प्यार हमारे अहं को खत्म कर दे, हममे ईमानदारी, नैतिकता जगाये ··इसकी जगह व्यावहारिक प्यार···ठण्डा, खूब सोचा-विचारा—कब···कैसा···किससे· कहाँ तक, वह जो मुझे देकर ही जाय, मेरा कुछ ले नही और यातना तो कभी दे नही, अपने को बचाये रखनेवाला यह सतर्क-सतर्क प्यार···यह चालाकी उभारता है और वही हमारे भीतर फैलाता है। मैं अब यहां नही रहूँगा। मेरी जरूरतें बहुत नही हैं इसलिए शहर छोड सकता हूँ। गांव में जाकर रहूँ। घर···? दूसरे के दुःख को अपनाने की जो बात घर की परिकल्पना मे है वही महत्त्वपूर्ण है तो इसके लिए गांव के हर परिवार के दुःख-सुख में हिस्सेदारी हो तो वही अपना घर बन जायेगा। काम के नाम पर और थोड़ा-बहुत अपनी जरूरतो को पूरा करने के लिए स्वतन्त्र पत्रकारिता की जा सकती है···एक इलाके की तरफ लोगों का ध्यान खीचना···या किसी के साथ खेतो में लग जाऊँगा। अगर सचित करने की तृष्णा न हो तो पेट भरने-भर के लिए तो कुछ भी किया जा सकता है।

होना ''थोड़ा, तुम्हीं से तो सीखा है ''इसलिए खड़ी भी हूँ, वर्ना तो कब की टूट गयी होती।''

''मैं नही जानता कि आखिर तुम्हारा निर्णय क्या होता है ''और पता नही आगे मौका मिले या नही, इसलिए अभी कह देता हूँ—तुम्हारे साथ जीवन बिताने को मिले तो मेरा एक सपना पूरा होगा सुवर्णा '''

''तुम मुझे कितना चाहते हो'' खूब समझती हूँ। सिर्फ मैं ही खुद को तुम्हारे लायक नही पाती। कुछ था जो मुझे इस तरह गढ गया अधूरा, थोडा गलत, असली की कीमत पर भी नकली से हिलगे रहनेवाला। कही धीरे-धीरे बँधती हूँ तो फिर सहसा अपने को अलग कर लेती हूँ। काश, जैसा तुम मुझमे डूबते हो, मैं भी डूब सकती ! जब तक ऐसा नही कर सकूँगी, मुझे कुछ कचोटता ही रहेगा, तुमसे हीनता तक महसूस होती है अक्सर। शायद मेरी शिक्षा' परवरिश ने जबर्दस्त गड़बड़ी की है कहीं। कभी-कभी तो लगता है मेरी 'कण्डीशनिंग' हुई है बहुत कुछ सुखा दिया गया।''

''मैं इन्तजार करूँ इससे तो नही रोकोगी मुझे ?''

''पता नहीं ''तुम्हारे साथ रहकर थोड़ा-थोड़ा समझने लगी हूँ पर फिलहाल तुमसे एक चीज चाहती हूँ—इन दिनों तुम मेरे लिए बहुत सुलभ न रहो ! मैं कमजोर नही होना चाहती। मुझे कमजोर करने के बजाय ताकत दो !''

''तुम जानती हो ''

''तो अब फिर नही आना, जब तक मैं इस सबसे निकल नही जाती ''इस पार या उस पार !''

अपनी आँखों में आँसुओ की चमक वह महसूस करती है। सामने अनन्त का चेहरा मुस्कुराता हुआ''अनन्त'' एक तुम्ही हो जो मेरे बारे में इतना परेशान होते हो, मुझे इतना समझते हो, सहते हो। तुम्हारा चेहरा जरा भी नहीं मुरझाया, उलटे चमक उठा है। मैं यही माँग रही थी—यह अलग होना नही है।

अनन्त जाने के लिए उठ खड़ा हुआ है। धीरे-धीरे सुवर्णा के पास आता है। अपने बालों पर वह अनन्त की हथेली महसूस करती है''गरम-गरम हथेली, अपने हाथो में उतार चूम लेती है ''उदास मत होना !''

अनन्त उसके दोनों हाथ थपथपाता है—''तुम अपना खयाल रखना''यह हमेशा सोचना कि तुम सिर्फ अपनी नहीं, दूसरो के लिए भी कुछ हो। इसलिए''''

सुवर्णा की पलकें खुलती हैं, बन्द होती हैं जल्दी-जल्दी, जैसे बार-बार वह किसी तस्वीर को पलको के भीतर समेटती, फिर मूँद लेती हो। गीली-गीली पलकें। उलझे हुए फूलो से हाथों मे बन्द हाथ।

''फोन करूँगी।''

दोनो हँस पड़ते हैं ''पहले अनन्त, पीछे-पीछे वह।

हरी-हरी घाटी से निकलकर बादलो का सफेद धुआँ अब ऊपर जा रहा है··· जैसे कोई प्रिय मेहमान वापस जा रहा हो। फिर धीरे-धीरे नीचे उभरती आती सूनी घाटी, लेकिन बादलो की नमी से धुली, नहायी हुई·· हरीतिमा उदास, पर निखरी हुई।

22 जून, 1980

सुवर्णा ने सदा मेरे भीतर का श्रेष्ठ उभारा, हमेशा मुझे तुच्छता···स्वार्थ लाँघ जाने की प्रेरणा दी। अपनी इसी शक्ति के लिए उसे कितने कष्टों में से गुजरना पड़ा ? उसकी परेशानी का एक कारण मैं भी हूँ मेरा प्रेम। प्रेम जो आदमीयत की पराकाष्ठा है !

जैसे मेरे भीतर वेदना बराबर बैठी थी, सुवर्णा के साथ ने केवल उसे आच्छादित कर रखा था···अब वह फिर सिर उठा रही है, पर आत्मीय भी लगती है। सुवर्णा के साथ की यात्रा समाप्त, उससे मिलना अब नही होगा यह टीस है, पर मेरा कोई अश मुझसे अलग खीच लिया गया है ऐसा नही लगता। सुवर्णा जैसे लगातार साथ है, रहेगी। एक रोशनी-सी भीतर लगातार जलती रहती है, हमारे सम्बन्ध का सत्व शायद यही है···आत्मिक। इस निर्मम और करीब-करीब जड होते जाते संसार में यह हम दोनो को ही अपने-अपने दायित्वो को निबाहने की ताकत देगा। इसकी मदद से हम अपने-अपने हिस्से के दु.खो को झेलने हुए खडे रह सकेंगे। आत्मिक··· कितना बड़ा आयाम देता है जीवन को। अगर सुवर्णा मेरे जीवन मे न आती तो यह विराटता मेरे लिए खुलती ··इसमें संशय है।

इस शहर मे अब मन नही लगता···उस सस्कृति के बीच रहना जहाँ प्यार के नाम पर कुछ और ही पोसा जा रहा हो ! दूसरे पर उत्सर्ग हो जाने के क्रम में प्यार हमारे अहं को खत्म कर दे, हममे ईमानदारी, नैतिकता जगाये···इसकी जगह व्यावहारिक प्यार···ठण्डा, खूब सोचा-विचारा—कब···कैसा···किससे·· कहाँ तक, वह जो मुझे देकर ही जाय, मेरा कुछ ले नही और यातना तो कभी दे नही, अपने को बचाये रखनेवाला यह सतर्क-सतर्क प्यार···यह चालाकी उभारता है और वही हमारे भीतर फैलाता है। मैं अब यहाँ नही रहूँगा। मेरी जरूरतें बहुत नही हैं इसलिए शहर छोड़ सकता हूँ। गाँव मे जाकर रहूँ। घर···? दूसरे के दु ख को अपनाने की जो बात घर की परिकल्पना में है वही महत्त्वपूर्ण है तो इसके लिए गाँव के हर परिवार के दु.ख-सुख मे हिस्सेदारी हो तो वही अपना घर बन जायेगा। काम के नाम पर और थोड़ा-बहुत अपनी जरूरतो को पूरा करने के लिए स्वतन्त्र पत्र-कारिता की जा सकती है···एक इलाके की तरफ लोगो का ध्यान खीचना···या किसी के साथ खेती में लग जाऊँगा। अगर सचित करने की तृष्णा न हो तो पेट भरने-भर के लिए तो कुछ भी किया जा सकता है।

मेरी बुद्धि कहती है कि यह आदर्शवाद है···सपना है, क्योंकि गाँव में भी तो चालाकी आ गयी है इस बीच। तो चलो, गाँव की छोटी इकाई में ही चालाकी की इस उमड़ती बाढ़ को थोड़ा-बहुत थामने की कोशिश करूँगा। उजाला, गरमाहट न दे सकूँगा तो हल्की सेंक ही सही।

मुझे अपना धर्म दिखायी दे रहा है। जो प्यार एक के लिए ही उमड़ता हो··· उसे सबमें बाँटूँ। मानव-जाति के प्रति आदर, सहानुभूति, करुणा···प्रेम सेवाभाव बन जाये। कैसा अद्भुत कि ये सारी सुन्दर चीजें प्रेम से ही निकलती हैं।

मैं इन बड़ी-बड़ी चीजों की ओर ताकता हूँ···उन तक कभी उठ सकूँगा? सुवि, तुम्हारा साथ चाहिए था। तुम्हारा जाना···ऐसा लगता है कि जीवन का बीतना अच्छी-अच्छी चीजों के एक-एक करके चले जाने के क्रम का ही नाम है। तुमसे दूर रहना कितना कठिन है" यातनामय, लेकिन यह यातना रोशनी भी है।

सुवर्णा और अनन्त" सटे-सटे बैठे एक विवाह को देख रहे हैं। कोई गाँव है···कच्चे घरों का छोटा-सा घेरा, बीच में छोटे मैदान-सी खुली जगह' तुलसीघर के पास फेरे लिये जा रहे हैं। लड़की हल्दी में रँगी धोती पहने है। लड़का आँखों में मोटा-मोटा काजल लगाये है, माथे पर भी काजल का एक धब्बा है। सुवर्णा देख-देखकर हँस रही है, अनन्त की बाँह और कन्धे में घुसी-घुसी जाती है···

"माथे पर जो यह है' इसे डिठूला कहते हैं ताकि नजर न लगे···" अनन्त बता रहा है।

[illegible] ···धूल"

[illegible] जाते

हैं। पैर निकालने के लिए वह अपने हाथ आसपास कहीं टिकाना चाहती है। कोई नहीं है, सिर्फ हवा···सुवर्णा घबड़ा रही है···

अब वह रास्ता छोटा, तंग···पैदलवाला रास्ता हो गया है' पेड़ों के बीच से जाता हुआ। धूल कहाँ···बादल हैं सुवर्णा को छू-छूकर जाते हुए। नमी से वह सिहर-सिहर उठती है। अनन्त की बाँह से अपना हाथ बाँधे वह चल रही है। वे ऊपर आ गये हैं। नीचे की तरफ देखते हैं तो धूल-भरे रास्ते के बीचों-बीच रमेश की जीप खड़ी है। रमेश है, वर्दी में···गाँववालों से श्याम मोहन के बारे में पूछताछ कर रहा है—श्याम फरार है, डाकू हो गया है। किस घर में छिपा बैठा है?

सुवर्णा और अनन्त ऊपर से रमेश के गुस्से को देखते हैं, फिर एक-दूसरे को। चेहरों पर कुछ नहीं है "बस देख रहे हैं। अनन्त पूछता है—'तुम दो बजे रात कहाँ से आयी थी?' सुवर्णा कहती है—'अरविन्द के यहाँ से।' अनन्त उसके चेहरे को हाथों में लेकर कहता है—'तुम्हारी आँखों में उदासी की छलछलाहट है"चेहरा

कितना दुबला हो गया है।' अनन्त उसे प्यार से देख रहा है, फिर उसे गोद में उठा लेता है। सुवर्णा बच्ची हो गयी है, फ्राक पहने हुए'''अनन्त की गोद मे दुबक जाती है'''

'सुवर्णा यहाँ है'''मेरे पास'''' अनन्त रमेश की तरफ चिल्लाता है, सुवर्णा को अपनी गोद में दिखाते हुए।

रमेश ने नीचे से उन्हें देख लिया है, तेजी से ऊपर चढ़ता हुआ वह उन तक पहुँचता है। सुवर्णा अनन्त से चिपकी खड़ी है। सुवर्णा को पाकर रमेश खुश है' सुवर्णा का हाथ पकड़ चल देता है, अनन्त को देखता तक नही। वे नीचे उतरते है, जा रहे हैं ''जीप की तरफ। सुवर्णा बार-बार मुड़कर अनन्त को देखती जाती है'

धूल ''बैलगाड़ियाँ गुजर रही हैं'' बारात है, बहू को लेकर लौट रही है। धूल की बड़ी चादर-सी तनती है 'उन्हें ढँक लेती है। कुछ नही दिखता।

"रमेश, अनन्त कहाँ गया''उसे ढूँढो रमेश''"

"अभी तो यही था'''क्या उसे साथ ले चलना है?" रमेश पूछता है।

"हाँ''"

रमेश सुवर्णा की तरफ देखता है फिर हँस देता है। दोनों अनन्त को ढूँढने के लिए धूल के बवण्डर में घुस जाते हैं, पर्तों को फाड़ते हुए टटोल रहे हैं '

एक बहुत पुराना वृक्ष ''मोटी-मोटी जड़ें जमीन के ऊपर उछली हुईं''दूर तक जाती हुईं। एक जड़ के पास कुछ लाल-लाल दिखता है—सुवर्णा उस तरफ दौड़ जाती है। बड़ा-सा दिया है''सुवर्णा हाथ मे उठा लेती है—'घर के मन्दिर में रखेंगे इसे' 'दिवाली में पहले इसे जलायेंगे, इससे दूसरे दियों को ''' वह कह रही है।

खुशी की लहरें 'सुवर्णा नींद में ही हिचकोले खा रही है झटके

वह जाग जाती है। खिड़की से पर्दा हटा देती है ''आसमान में चारो तरफ फैली हुई सुबह की उजास''सुनहरे बादल!

पहाड़ों पर बरसात'''

पहाड़ियो को लम्बी और मोटी फूँक मे बुहारती, घाटियों को भरती, दरख्तों के बीच घड़घड़ाती, सनसनाती बहती हवा ' ऊपर उठती भँवरों में जैसे बस्ती-की-बस्ती उठा ले जायेगी। थरथराहट पहाड़ियो पर इधर-से-उधर दौड़ती हुई'' आस-पास का सबकुछ बजता होता है इन दिनों। उड़ता है''जैसे सबकुछ ही उड़ जायेगा, पता नहीं किस दिशा की ओर। पानी भी आता है तो उड़ता हुआ ''नीला-नीला ताकतवर अन्धड़, कैसी जबर्दस्त कड़कड़ाहट के साथ'' जैसे जमीन पर जो दुनिया इस वक्त भीतर छिपी ' सजी-सँवरी बैठी है उसे बाहर घसीटकर, उखाड़कर''' तहस-नहस करके ही दम लेगा वह।

पानी थमा तो हर जगह लिसलिस ''गीलापन'''ऊपर से गीला, नीचे से गीला'''धूप दूर-दूर तक नहीं।

सुवर्णा देखती रहती है कभी बाहर से, कभी भीतर से। जैसे यह हवा का समुद्र नहीं समय का विराट फैलाव है जो सामने भरा हुआ है ''अथाह, बड़े-बड़े थपेड़ों से अपने होने का ऐलान करता हुआ।

कुछ भी बोलना बड़बोलापन लगता है। आसपास बोलते होते हैं लोग तो एक-एक शब्द सुवर्णा के सिर पर हथौड़े-सा बजता है, बोलो मत · बस देखो ''देखते रहो'''। नहाने-धोने के अलावा अगर कुछ भी रह गयी है जिन्दगी उसके लिए, तो बस बैठे रहना, सामने तकते रहना'''दिल-दिमाग अलसाये से करवटें लेते हुए। जो सामने है अगर उसी मे अपने को डुबा सके कोई ? एक समय, किसी स्थिति, व्यक्ति, चीज या विचार मे ही पूरा डूब जाना'''यह क्यों सयोग, विवाह या प्रेम नही ? बाकी जिन्दगी वियोग-ही-वियोग जो सयोग के वैसे क्षणो की तलाश मे बीतें। किसी के साथ —वह चाहे पति ही क्यो न हो —लम्बे सम्बन्ध की जगह छोटे-छोटे सयोग, बेशक थोड़ा खिंचे हुए। डूब जाने की बजाय यों डूबना-उतराना, फिर डूबना और हर बार अलग-अलग चीज मे —थोड़े-थोड़े समय के विवाह ! रमेश या कि कोई और ''उनका जितना मिला वही सुवर्णा का था। बाकी उसका था ही नही, इसलिए गया। जो अपना था ही नही, उसके लिए कैसा सोच ! अतीत में कहीं बिधकर ठहर जाने की बजाय, चलते रहना डूबते-उतराते नयी बातो में, नये लोगों मे'''

लेकिन यह तो वह है जो वह करती थी। कमल के पत्ते की तरह पानी मे अछूता रहा जाये तो जिया भी जा सकता है ऐसे। इतनी अछूती रह सकी क्या वह ? रमेश से खुद को अलग खींचने में ही कैसे खरोंचें-ही-खरोंचें उभर आयी हैं !

"बाल नहीं धोये, आज भी ?"

ममा पूछती हैं। वे हमेशा घेरा डालने के फिराक मे रहती हैं, ताकि घेरकर टोह सकें, सुवर्णा को धक्का दे सकें'''आगे की तरफ, जैसे शण्टिंग मे एक डिब्बा दूसरे को देता है। सुवर्णा नही चाहती पीछे का कुछ याद करना, पर ममा घूमते-फिरते कुछ-न-कुछ बोल देंगी, और नहीं तो रमेश का नाम ही इधर-उधर से ले डालेंगी।

रमेश-जैसे की खातिर उस तरह की कैद मे रहना ''रही ही आती वह, अगर उन कुछ घटनाओं ने रमेश के असली रूप को यों खोलकर सामने न रख दिया होता ''और तब सारी जिन्दगी ही कैसी बरबाद निकल गयी होती। लेकिन'''यह जो आदमी के भीतर से एक खास मौके पर लावा-सा फूट पड़ता है ''यही तो उसकी असलियत नही है, उसके भीतर हमेशा रहनेवाली चीज है क्या यह ? फिर रमेश के बारे मे वह कैसे सिर्फ उसी के आधार पर राय बना सकती है'''

"ऐसा कितने दिन चलेगा ?" ममा एकदम सामने आ गयी हैं।

"क्या कितने दिन चलेगा···" सुवर्णा को हल्का गुस्सा आ जाता है। जिन्दगी है ही कितनी बड़ी कि इस तरह का कोई सवाल उठाया जा सके।

"यही ··तेरा गन्दे बाल लिये घूमना···इनसे क्या नाराजी है। बाल न धोने से तो कोई हल निकलेगा नहीं ?"

"धो लूंगी ममा · नहीं धोये, क्योंकि मन नहीं किया· इसलिए नहीं कि· ·"

"तू कहती है ऐसा···" पकड़ लिया उन्होंने और अब जमकर बैठ गयी हैं· "मस्ट फाइट इट आउट माइ चाइल्ड !"

ममा अभी उन्हीं शब्दों पर अटकी हुई हैं जिन्हें वह बचपन में सुना करती थी, उन्हीं से। उन्हें नहीं मालूम कि सुवर्णा इस बीच कुछ दूसरा भी देख आयी है जो इतना 'आक्रामक' नहीं है, वैसी जरूरत भी नहीं समझता·· कुछ बहुत ही 'मैलो', मुलायम-मुलायम···

खिड़की के कांच पर धुन्ध चिपकी हुई है। बाहर चीड़ का बड़ा पेड़ धब्बों में बिखरा-बिखरा दिखता है। सुवर्णा एक कपड़ा लेकर कांच पोंछने बढ़ती है, खिड़की खोल देती है। एक बड़ा झोंका पेड़ की अटकी हुई बूंदों को झाड़ता हुआ गुजर जाता है, कुछ छींटे सुवर्णा के मुँह पर भी·· सुख में आँखें मुंद जाती हैं···

गिने-चुने झोंके, पर अनन्त में ले चले हैं उसे, नन्ही-सी कुछ बूंदें ठण्डक की विशालता में तनती जा रही हैं। कहाँ पहुँच रही है वह ··आकाश का नीलापन कितना गहरा और साफ ··रोशनी-ही-रोशनी। हल्की-फुल्की वह उड़ती हुई, पोर-पोर से फूटते हुए खुशी के झरने मिलकर एक बड़ी धार बनते हुए · धार अबाध बहती हुई आर-पार··वह मिठास की मूर्ति· ·अनन्त में समा जाना चाहती है···

अनन्त ! देखो · मैं कहाँ पहुंच गयी। रेंग-रेंगकर आखिर वहाँ पहुँच ही गयी जहाँ ··जहाँ तुम हो। हाँ···मेरे भीतर उग रहा है कुछ अब मैं महसूस कर सकती हूँ ··हाँ · वही, जिसमें तुम्हें डूबते देखती थी ·

तुम सही थे अनन्त। वह मुक्त होकर जीना हमेशा चौकस, चतुर··अक्ल के रास्ते ही चलना, हर चीज को अपने ढंग से चलाना कुछ नहीं है इस तरह भीग जाने के सामने। कैसा खोल देता है यह बंधना भी !

कपड़ा फेंककर आँचल से कांच पोंछने लगती है सुवर्णा।

"ममा तुम कहती थी ·अनन्त तुम्हें अच्छा लगा।" तुम्हारे पास होने को जी करता है, अनन्त। सामने बातें करते हुए तुम नहीं तो तुम्हारा जिक्र ही सही।

"बहुत अच्छा लगा।"

ममा का चेहरा पिघल आया है, सुवर्णा बगैर मुड़े देख सकती है। दो-तीन दिनों से ममा ने अनन्त का नाम फुसफुसाना शुरू किया था। जब देखा कि रमेश के नाम से सुवर्णा पर कोई प्रतिक्रिया नहीं जागती तो वे भीतर कहीं पक्का हो गयी होंगी

कि सुवर्णा अब रमेश के पास नही जायेगी · कैसे सोच लिया उन्होंने यह ? या क्या पता · अनन्त का नाम सिर्फ इसलिए लेना शुरू किया हो कि सुवर्णा इस तरह झूलती बैठी न रहे, कुछ तय करे।

सुवर्णा मुड़ी। ममा की आँखें माँग रही हैं कि सुवर्णा थोड़ी देर को ही सही, उनके पास बैठ जाये।

"इतनी थोड़ी-सी देर की बातचीत में ही; इतनी जल्दी अच्छा लग गया?" सुवर्णा चेहरे पर मीठी-सी हैरत लाकर पूछती है।

"कोई पसोपेश की गुंजाइश न हो तो सबकुछ साफ नहीं दिखेगा क्या ?"

"क्या अच्छा है उसमे ··ममा ?" सुवर्णा खोई-खोई-सी ··कोई तुम्हारे बारे मे बोले, कहे।

"यह तो सोचना होगा ··और ढेरो चीजें निकल आयेंगी, मसलन साफ है, दो-टूक बातें करता है। ऐसा आदमी झूठ नही बोलता होगा, बहुत 'सिन्सियर' होगा · "

सुवर्णा ममा के पास आकर बैठ जाती है। काँच एकदम साफ है अब ! खिड़की बन्द कर दी, फिर भी बाहर का पेड़ साबुत दिखता है धुला हुआ—खूबसूरत···!

"तू अनन्त को बहुत चाहती है ?"

सुवर्णा चौक उठती है ·ममा का प्रश्न और उनके स्वर की मिठास। समझ जाती है कि उन्होने धूप की तरह सरक-सरककर टोह लेते हुए, बात पर आने की बजाय झपट्टा मारा है सुवर्णा कही उठ न बैठे और बात फिर वैसी-की-वैसी लटकी रह जाय। वे उससे दो-टूक फैसला चाहती है···फौरन !

ममा उसकी चुप्पी पर अटकती है। सुवर्णा उनकी आँखो मे देखती चली जाती है·· दूर तक, खुश-खुश ··ममा ने जो अभी कहा, उसे जैसे बार-बार प्यार से सहलाते हुए। यह खयाल ही कि वह अनन्त को चाहती है, कितनी रोशनी भर देता है भीतर !

"सुवर्णा, तेरे इस तरह रहने का कोई तुक नही है —और तू रहे भी क्यों ! क्या नही है तुझमें—पढी-लिखी है, अब भी खूबसूरत है, खासी तनख्वाह घर लाती है। बेटी, हमे कोई ऐतराज नही होगा, तुम्हारे पापा को भी मैं समझा लूँगी।"

"ममा, तुम्हारी दिक्कत है कि तुम मुझे बहुत चाहती हो और बहुत सरल हो। मेरे और अनन्त के एक-दूसरे के चाहने की बात तो तुम्हारी समझ में इतनी जल्दी आ गयी पर क्या यह सोच सकती हो कि अनन्त नहीं चाहता कि मैं घर···रमेश को ही छोड़ूँ।"

"रियली ! इज ही अ कावर्ड ··या बच्चो की वजह से हिचकता है ?"

"दोनो मे से कुछ नही···कहता था कि वह मेरा इन्तजार करेगा।"

"ओ हाउ नाइस ! मैंने कहा न कि वह बहुत अच्छा लड़का है।"

ममा के बोल सुवर्णा के भीतर जाकर घुल गये, जैसे बाहर के थे ही नही। गेट

खोल देने से बांध की मोटी धार सरपट नीचे गिरती है 'अनन्त, मैं आ रही हूँ'''मैं आयी'''

नीचे बांध के बकैट मे तेजी से गिरती धार'' आगे बढ़ते हुए, फिर पलटकर लौटती है'''अब लहरो में चूर-चूर, आगे जाने और पीछे आनेवाली लहरो मे टक्कर, इधर जाती, उधर जाती लहरें, अपने ही थपेड़ों से चक्कर खाती ' कैसी मारा-मारी, खलल-वलल'''भँवरें बनती हैं, लहरियाँ गेट से गिरती धार पर ही लपलपाते हुए ऊपर चढ़ने की कोशिश करती हैं'' वापस फिर वहीं पहुँच जाने की छटपटाहट !

अनन्त, मैं तुम्हारे पास आना चाहती हूँ' पर सबकुछ तोडने, छोड़ देने का हौसला क्यो नही मिलता मुझे'''कहाँ से मिलेगा ? जैसे पीछे से कोई पकड़े होता है, वापस खीचता है'''मैं तुम तक दौड़ क्यो नही जाती'''क्यो डरती हूँ कि कहीं तुम भी रमेश हो गये तो ? मैं तुम्हे खोना नही चाहती !

मेरा घर'''बच्चे'''मैं नही छोड़ना चाहती अनन्त। पर फिर मैं उन्हें छोड़कर क्यों चली आयी, वापस जाना चाहती हूँ, पर पहुँच क्यो नही जाती'''क्यो तुम्हारी तरफ ही बढ़ी चली आ रही हूँ।

सुवर्णा सोफे में फड़फड़ा उठती है।

"बेटी ·" ममा का चेहरा खिच आया है।

"ममा, हिन्दुस्तान की औरतों मे कितनी ताकत होती है ! वे किसी भी तरह के पति के साथ निबाह सकती हैं, उनके लिए प्रेम महसूस किये बगैर, उसके साथ सारा जीवन बिता सकती हैं, खराब पति को सुधार सकती हैं, पति को छोड़कर अपने प्रेमी के साथ जा सकती हैं और प्रेमी से दूर भी रह सकती हैं'''मन मे प्रेम का दीप जलाये हुए। घर की चहारदीवारी में बन्द रहनेवाली एकाएक बाहर आ जाती हैं, काम करने लगती हैं और अपने अकेले दम पर बच्चो को बड़ा करती है'' ममा, मैं अकेले भी तो रह सकती हूँ'''"

"कहना आसान है। अगर तू अकेले रह भी सके तो लोग क्या रहने देंगे। आदमियो का यह समाज और एक खूबसूरत औरत—जैसे जगल में अकेला घूमता मेमना। किसी-न-किसी का साथ रहेगा ही। फिर एक दिन तू खूबसूरत नही रहेगी, बूढ़ी होगी। उस वक्त कोई नही होगा। तब जो अकेलापन आयेगा उसका अन्दाज अभी यहाँ से नही लगा सकती।"

"मेरे साथ अगर तब भी कोई हो तो?"

"ऐसा कोई नही होता।"

"है ममा'''अनन्त ''वह फर्क है'''"

सुवर्णा के सामने एक तस्वीर झूलने लगती है—

अनन्त और वह'''दोनों बूढ़े'' एक-दूसरे के हाथ-मे-हाथ डाले'''कभी इस फूल को टोहते, कभी सड़क पर किसी बच्चे की जिन्दगी मे शरीक होते हुए चले जा

रहे हैं···

उसकी आँखें गीली हो आती हैं। एक वक्त था रुलाई कितनी मुश्किल से छूटती थी, अब पल्ल से रोने को हो आती है वह। रोते अब भी किसी को दिखाना नहीं चाहती, ममा को भी नहीं। तभी भीतर कुछ मरोड़ खाने लगता है, बाहर कुछ निकला···अब निकला···

घबराकर वह उठ गयी। खिड़की को खोल उस पर झूल गयी और मुँह बाहर डाल दिया। आँसुओं से धुँधयायी आँखें ··रमेश, तुमने आदमी की इज्जत मुझे नहीं दी ·क्यों किया तुमने ऐसा ··इस हद तक का क्या हक था तुम्हारा कि मुझे···

घने दरख्तों से लदी गहरी घाटी· खामोश वीरान। एक आवाज ऊपर· नीचे दौड़ रही है चक्करों में। कोई बेचैन चीख एक पक्षी का आर्त्तनाद···दरख्तों से टकराता, गिरता, उठता···नीचे घाटी के तल तक जाता, फिर आसमान की ओर उठता हुआ···

ooo